|| श्रीः ||

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

12

बृहद्वास्तुमाला

सटिप्पणभाषाटीकासमन्विता

संग्राहको भाषाटीकाकारश्च

पं० रामनिहोरद्विवेदी

ज्यौतिषाचार्य-ज्यौतिषतीर्थ

भूतपूर्वप्रधानाध्यापकः

काशीस्थमारवाड़ीसंस्कृतमहाविद्यालयः

सम्पादकौ

डॉ० ब्रह्मानन्दत्रिपाठी

डॉ० रवि शर्मा

सम्पादकः ज्योतिषसमाट्-पञ्चाङ्गम् (जयपुर),

श्री मेवाड़विजय-पञ्चाङ्गम् (उदयपुर)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

बृहद्वास्तुमाला
पृष्ठ : 12+238

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 22100,
दूरभाष : +91 542-2335263
email : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

संस्करण 2016 ई०
मूल्य : ₹ 135.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11-23286537; 32996391
email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

भूमिका

श्रीविक्रमादित्यगुरोः पदाब्जे सम्पातसम्भावितशेखरोऽहम्।
ज्योतिर्विदामप्रसरस्य पादौ श्रीरामयत्नाख्यगुरोर्नमामि ॥१॥

गृहनिर्माण-सम्बन्धी बातों को जानने के लिये सर्वसाधारण को आवश्यकता है। प्राचीन ग्रन्थों में इसकी चर्चा और संक्षिप्त बातें मिलती हैं; किन्तु सबका संग्रह एकत्र मिल जाय, इस प्रकार की पुस्तक आज तक कोई देखने में नहीं आई; इसलिये मेरे अनेक मित्रों ने अनुरोध किया कि वास्तु-सम्बन्धी सब विषयों का संग्रह प्रमाणसहित एकत्र प्रकाशित हो जाय तो विद्वानों को बड़ी सुगमता होगी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये मैने बहुत ही परिश्रम से ऋषिप्रणीत अनेक ग्रन्थों को एकत्रित कर यह अद्वितीय ग्रन्थ तैयार किया है। इस पुस्तक को लिखते समय जहाँ-जहाँ विवादग्रस्त (मतभेद) बातें आ पड़ी हैं, उसके लिये काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् गुरुवर ज्यौ० पं० रामरत्न ओझाजी, प्रधान ज्यौतिषशास्त्राध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय तथा जगद्विख्यातकीर्ति गुरुवर ज्यौ० पं० हृषीकेशोपाध्याय जी, प्रधानगणितशास्त्राध्यापक गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज-बनारस, दोनों महानुभावों के निर्णय द्वारा लिखी गई है।

किस स्थान पर गृह बनाना चाहिये अर्थात् भूमिशोधन की सभी बातें—मकान के किस भाग में कितने दूर पर जलाशय आदि को रहना चाहिये, गजपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ आदि का लक्षण, पिण्ड-निर्माण, ऋषियों के मत से दकार्गल, वृक्षायुर्वेदाध्याय, मण्डलेश, सिद्धपिण्ड और पिण्डसारिणी, शिलान्यास आदि का मुहूर्त, चरणी-विचार, अनेक प्रकार के चक्र, देवमन्दिर-निर्माण का विचार—सभी बातें अनेक ग्रन्थों में सप्रमाण दी गयी हैं और सर्वसाधारण इस विषय को समझ सके, इसलिये सरल हिन्दी भाषा में समस्त श्लोकों का अनुवाद उदाहरण-सहित लिख दिया गया है तथा अन्त में शिलान्यास, वास्तुशान्ति-सम्बन्धी समस्त विधि स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० प्रभुदत्तजी अग्निहोत्री के पुत्र विख्यात कर्मकाण्डी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय धर्मविज्ञान विभाग के अध्यक्ष पं० श्रीविद्याधरजी की कृपा से प्राप्तकर उसका भी सन्निवेश कर दिया गया है। परिशिष्ट में पिण्डानयन की उपपत्तियाँ भी दे दी गई हैं; जिनकी उपपत्तियाँ नहीं दी गई हैं, वे उपपत्तियाँ इन्हीं उपपत्तियों से सिद्ध होती हैं। ग्रन्थ को सुन्दर बनाने में बहुत कुछ यत्न किया गया है, केवल जब पुस्तक यन्त्रस्थ हुई तो पूज्य पिताजी की बीमारी के बढ़ जाने से मुझे चञ्चल रहना पड़ा; इसलिये कहीं-कहीं की छपाई की भूल रह गई है। तथापि जो कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, उसे सहृदय पाठकगण प्रथमावृत्ति के लिये क्षमा

करें। मैंने केवल जनता के उपकारार्थ इसका सम्पादन किया है। यदि विद्वान् लोग एक बार भी इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़कर इसकी उपयोगिता समझेंगे तो मैं भी अपना परिश्रम सफल समझूँगा। इस पुस्तक के सम्पादन में जिन लोगों ने मुझे प्रोत्साहित किया है तथा यथासाध्य सहायता दी है, उन लोगों का मैं कृतज्ञ हूँ।

विनीत
रामनिहोर द्विवेदी

आश्विन कृ० सं० १९८७
मारवाड़ी संस्कृत कालेज काशी

द्वितीय संस्करण की भूमिका

वास्तु-विषयक अनेक ग्रन्थों का मनन कर एवं अपने विशेष अनुभूत योगों के ज्ञान के आधार पर प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्व० पिता जी ने 'बृहद्वास्तुमाला' नामक इस ग्रन्थरत्न का अवतरण कुछ समय पूर्व किया था। अधिक संख्या में ग्रन्थ की प्रतियाँ मुद्रित कराने पर छात्रवर्ग के अतिरिक्त सामान्य गृहस्थजन तथा पण्डितसमुदाय द्वारा ग्रन्थ का अत्यधिक क्रय किये जाने से उक्त ग्रन्थ कुछ वर्षों से अप्राप्य हो गया था। वास्तुविषय का ज्ञान कितना आवश्यक है, इससे सभी विज्ञजन परिचित हैं। एक ग्रन्थ में इस महत्त्वपूर्ण वास्तुज्ञान को सम्बद्ध कर पूज्य पिताजी ने हिन्दी भाषानुवाद द्वारा भी ग्रन्थ का आशय सुस्पष्ट कर दिया था। इससे वास्तुमर्म का परिज्ञान कराने में सरलता और सन्देहास्पद स्थिति का पूर्णतया निराकरण हो जाता है। इसीलिये भूतपूर्व वाराणसेय संस्कृत महाविद्यालय तथा वर्तमान संस्कृत विश्वविद्यालय एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की ज्यौतिष-विषयक शास्त्री एवं आचार्य की परीक्षा में बृहद्वास्तुमाला को स्थान दिया गया। ग्रन्थ की नित्य बढ़ती मांग को ध्यान मे रखकर ही मैंने मुद्रित त्रुटियों के सुधारपूर्वक 'बृहद्वास्तुमाला' को यथावत् पुनः प्रकाशित कराया है। तथापि—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।

के अनुसार सम्भवतः मुद्रण-सम्बन्धी दोष पुनरपि विद्यमान रह गये हों तो आशा है, विद्वज्जन उनको क्षमा कर भविष्य में सुधारने के लिये मुझे सूचित करेंगे।

निवेदक
रमाकान्त द्विवेदी

तृतीय संस्करण की भूमिका

यह विश्वविदित है कि प्राणिमात्र सुख तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने योग्य निवास की व्यवस्था करता है; उन सब में मानव बुद्धिप्रधान प्राणी है, जिसका जीवनक्रम वेदशास्त्रों के निर्देशानुसार अनुशासित है। ज्यौतिषशास्त्र का अन्यतम अंग वास्तुविद्या है; इसका ज्ञान बृहत्संहिता, मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, रत्नमाला, गृहभूषण, वास्तुमाला, वास्तुप्रबन्ध आदि ग्रन्थों में विकीर्ण है; इस दृष्टि से 'वास्तुमाला' में उन समस्त विषयों का सन्निवेश कर दिया गया है।

'गृह्णातीति गृहम्' जो दूरस्थ प्राणी को भी अपनी ओर आकृष्ट करे, उसे 'गृह' कहते हैं। इसमें भी तृण, मिट्टी, ईंट और पत्थर द्वारा निर्मित गृह उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने गये हैं। वास्तुशास्त्र की दो परम्परायें रही हैं, जिसमें उत्तरापथीय के प्रवर्तक विश्वकर्मा तथा दक्षिणापथीय के मय दानव थे।

इस विद्या का पश्चाद्वर्ती ज्यौतिषियों ने पल्लवन किया; अतः इनके कुछ-कुछ निर्देश भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, जिनकी मान्यता धर्मप्राण भारतवर्ष में चिरकाल से चली आ रही है। आज हम भारतीय पाश्चात्य भी विज्ञान के आलोक से इतने अधिक प्रभावित हो गये हैं कि हमको अपने शास्त्र तथा अपने पूर्वजों के उपदेश अच्छे नहीं लग रहे हैं; फलतः हम उनकी उपेक्षा करते जा रहे हैं; फिर भी कतिपय धर्मप्राण व्यक्ति आज भी हैं और रहेंगे, जिनकी आस्था अपने धर्मग्रन्थों, विज्ञान तथा पूर्वजों के उपदेशों के प्रति अडिग है। उन्हीं के सबल कन्धे धर्मधुर को धारण किये हैं। इस प्रकार की प्राचीन संस्कृति के संरक्षक भी वे ही हैं, जिनके कारण भारत वसुन्धरा आज भी गौरवान्वित है। उन्हीं के हितार्थ प्रस्तुत ग्रन्थ का पुनर्मुद्रण किया जा रहा है। विश्वास है, इस संशोधित संस्करण का विद्वत् समाज आदर करेगा।

ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

विषयानुक्रमः

॥ श्रीः ॥

बृहद्वास्तुमाला

सटिप्पणभाषाटीकासमन्विता

मङ्गलाचरणम्

मङ्गलं दिशतु नो विनायको मङ्गलं दिशतु नः समुद्रजा।
मङ्गलं दिशतु नो महेश्वरी मङ्गलं दिशतु नः सरस्वती ॥१॥
दग्धा येन समस्तलोककदनोद्भूतस्य रक्षः कुले
विक्रान्तस्य मदावलिप्तवपुषः प्रोल्लङ्घ्य वारांनिधिम्।
सीताशोकदवानलेन सहसा लङ्काकलङ्काशया
वन्दे वायुसुतं तमेव सततं कायेन वाचा हृदा ॥२॥
ध्यायं ध्यायं रामचन्द्रस्य पादं स्मारं स्मारं श्रीरमायाः पदाब्जम्।
बारम्बारं श्रीबृहद्वास्तुमालां दैवज्ञानां रञ्जनाय प्रवच्मि ॥३॥

वास्तुपुरुषस्वरूपम्

पुरा कृतयुगे ह्यासीन्महद्भूतं समुत्थितम्।
व्याप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः ॥१॥
तद्दृष्ट्वा विस्मयं देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः।
ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तमथासुरम् ॥२॥
विनिक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः।
तमेव वास्तुपुरुषं ब्रह्मा कल्पितवान् स्वयम् ॥३॥

संस्कृतभावार्थः—कृतयुगारम्भे सर्वान् लोकान् व्याप्य समुद्भूतं भूतं दृष्ट्वा इन्द्रादयो देवाः आश्चर्यचकिताः क्रुद्धाश्च सन्तः तदधोमुखं भूमौ निखाय स्वयञ्च तत्र स्थितवन्तः। ब्रह्मा तस्य भूतस्य वास्तुपुरुष इति नाम चकार॥१-३॥

वास्तुपुरुष का स्वरूप—सत्ययुग के आरम्भ में एक महान् प्राणी उत्पन्न हुआ, जो अपने विशाल शरीर से समस्त भुवनों में व्याप्त था, इसको देखकर देवराज इन्द्र सहित सभी देवता भयभीत एवं आश्चर्यचकित थे, तदनन्तर उन्होंने क्रुद्ध होकर उस असुर को पकड़कर उसका शिर नीचे करके भूमि में गाड़ दिया और स्वयं वहाँ खड़े रहे। इसी का नाम ब्रह्मा ने 'वास्तुपुरुष' रखा॥१-३॥

गृहनिर्माणे हेतुः

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः ॥४॥

संस्कृतभावार्थः—स्त्रीपुत्रादिभोगान् सुखं त्रिवर्गं च ददत् शीत-वायु-घर्मादिभ्यः रक्षत् गृहं विधिवत् निर्माय वापीमन्दिरादिनिर्माणपुण्यं लभते। अतः विश्वकर्मादिदेवशिल्पिभिः प्रथमं गृहनिर्माणाय निर्देशः कृतः।।४।।

गृहनिर्माण का उद्देश्य—स्त्री-पुत्र आदि के भोग, सुख, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला; प्राणियों के सुख का स्थान और सर्दी, वायु, गर्मी आदि कष्टों से रक्षा करने वाला 'गृह' ही है। विधिवत् गृहनिर्माणकर्ता को बावड़ी, देवालय आदि के निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है, अतएव विश्वकर्मा आदि देवशिल्पियों ने सर्वप्रथम गृहनिर्माण का निर्देश किया है।।४।।

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसङ्गुणम्।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे ॥५॥

संस्कृतभावार्थः—पर्णकुट्याः निर्माणे कोटिगुणिताधिकं, मृण्मयगृहस्य ततः दशगुणाधिकं इष्टिकाभिः शतकोटिगुणिताधिकं पाषाणैश्च गृहस्य निर्माणे अनन्तगुणं पुण्यं लभ्यते।।५।।

पर्णशाला बनाने से कोटि गुण, मिट्टी का घर बनाने से दस करोड़ गुण, ईंट का घर बनाने से सौ करोड़ गुण और पत्थरों द्वारा घर बनाने से अनन्त गुण पुण्य की प्राप्ति होती है।।५।।

वक्तव्य—तात्पर्य यह है कि तृण से मिट्टी, ईंट, पत्थर उत्तरोत्तर चिरस्थायी होते हैं, अतएव पुण्यवृद्धि का कारण दिखलाकर चिर-स्थिर गृहनिर्माण की ओर शास्त्रकार का संकेत है।

जीर्णोद्धारफलम्

वापी-कूप-तडागादि-प्रासाद-भवनानि च।
जीर्णान्युद्धरते यस्तु पुण्यमष्टगुणं लभेत् ॥६॥

संस्कृतभावार्थः—वापी-कूप-प्रासाद-देवमन्दिराणां जीर्णानाम् उद्धारं कृत्वा ततः अष्टगुणं फलं प्राप्नोति।।६।।

जीर्णोद्धार का फल—बावड़ी, कुआँ, प्रासाद (देव अथवा राजमहल) और जो घर का जीर्णोद्धार करते हैं, उनको अठगुना फल प्राप्त होता है।।६।।

परगृहनिवासफलम्

परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः।
निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते ॥७॥

संस्कृतभावार्थः—परगृहे विना शुल्कदानं कृताः सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः स्वस्य कृते निष्फलाः भवन्ति। तत्फलं च तद्गृहस्वामी प्राप्नोति।।७।।

परगृह-निवास का फल—दूसरे के घर में (बिना शुल्क दिये) रहकर किये गये श्रौत-स्मार्त आदि समस्त शुभ कार्य अपने लिये निष्फल हो जाते हैं, क्योंकि उनका फल भूस्वामी को प्राप्त होता है।।७।।

वक्तव्य—वास्तव में दूसरे के गृह में निवास स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान की दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है। इसकी निन्दा 'चाणक्य' के शब्दों में इस प्रकार है—'परसदन-निविष्टः को लघुत्वं न याति'।

गृहारम्भविधिः

द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं वृषचक्रतः।
निष्पञ्चके स्थिरे लग्ने द्व्यङ्गे वालयमारभेत् ॥८॥
त्यक्त्वा कुजार्कयोश्चांशं पृष्ठे चाग्रे स्थितं विधुम्।
बुधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद् गेहं शुभाप्तये ॥९॥

संस्कृतभावार्थः—प्रथमतः द्वारशुद्धिं विचार्य वृषचक्रानुसारं नक्षत्रशुद्धिं विज्ञाय पञ्चकं (कुम्भमीनस्थचन्द्रः) विहाय स्थिरे द्विस्वभावे लग्ने गृहारम्भं कुर्यात्। भौमसूर्यांशे, पृष्ठे अग्रे च विद्यमानं चन्द्रं मिथुनकन्याधनुर्मीनराशिषु स्थितं सूर्यञ्च त्यक्त्वा गृहम् आरभेत्।।८-९।।

गृहारम्भ की विधि—सर्वप्रथम द्वारशुद्धि का विचार कर वृषचक्र के अनुसार नक्षत्र-शुद्धि देखें, पञ्चक (धनिष्ठा से रेवती तक के नक्षत्रों) को छोड़कर स्थिर अथवा द्विस्वभाव लग्न में गृहारम्भ करे, मंगल और सूर्य का अंश, आगे तथा पीछे का चन्द्रमा एवं मिथुन, कन्या, धनु, मीन राशि के सूर्य को छोड़कर गृहारम्भ करे।।८-९।।

वास्तुरत्नावल्यां ग्रामवासे नराकारं शुभाशुभचक्रमाह

मस्तके पञ्चलाभाय मुखे त्रीणि धनक्षयः।
कुक्षौ पञ्च धनं धान्यं षट्पादे स्त्रीदरिद्रता ॥१०॥
पृष्ठे चैकं पादहानिर्नाभौ चत्वारि सम्पदः।
गुह्ये चैकं भयं पीडां हस्ते चैकन्तु क्रन्दनम् ॥११॥
वामे चैकं करे भेदो ग्रामचक्रं नराकृतिः।
गणयेज्जन्मनक्षत्रं ग्रामनक्षत्रतस्सदा ॥१२॥

संस्कृतभावार्थः—ग्रामनक्षत्रात् जन्मनक्षत्रपर्यन्तं नराकृतिचक्रं विचारयेत्। नक्षत्रगणना मस्तकादारभ्य कर्तव्या।।१०-१२।।

वास्तुरत्नावली के अनुसार ग्रामवास में नराकार शुभाशुभ चक्र—ग्राम के (नाम) नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक नराकृति चक्र का विचार करे। नक्षत्रों की गणना मस्तक से प्रारम्भ करे। शेष अर्थ चक्र द्वारा स्पष्ट है।।१०-१२।।

ग्रामवासचक्रम्

स्थान	मस्तक	मुख	कुक्षि	चरण	पृष्ठ	नाभि	गुद	द०कर	वामकर
नक्षत्र	५	३	५	६	१	४	१	१	१
फल	लाभ	धनक्षय	धनधान्य	स्त्रीहानि	पादहानि	सम्पत्ति	भय	क्रन्दन	भेद

ग्रामवासे शुभाशुभबोधनाय शिवाबलिः

(निशीथे निर्जने देशे भक्तं मांसादिसंयुतम्।
भूमौ निधाय विधिवद् दूरं गत्वा विचिन्तयेत्।।)

ईशाने मरणं प्रोक्तं चोत्तरे कुरु सर्वतः।
वासं वायव्यकोणेषु भयं किञ्चित्प्रजायते।।१३।।
पश्चिमे वासकरणादानन्दः परिकीर्तितः।
नैर्ऋत्ये हि शिवा रौति तदावासं न कारयेत्।।१४।।
दक्षिणे रौति कल्याणं वह्निकोणे भयं महा।
पूर्वेप्युच्चाटनं ज्ञेयं कलिर्वा रिपुभिस्सह।।१५।।
अष्टदिक्षु यदा रौति तदा वासं न कारयेत्।
निश्शब्दे सर्वलाभः स्यादिति गर्गादिभाषितम्।।१६।।

संस्कृतभावार्थः—निशीथसमये विजनदेशे मांससहितमोदनं निक्षिप्य दूरं व्रजित्वा तत्र शृगालीनां शृगालानां वा प्रतिक्रियां रुतेन विचारयेत्।।१३-१६।।

ग्रामवास में शुभाशुभ-बोधक शिवाबली—आधी रात को एकान्त स्थान में मांस आदि से युक्त भात को भूमि पर रखकर स्वयं कुछ दूर हटकर शिवा (शृगालिन) के शब्द का विचार करे। शेष अर्थ निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट हो जायेगा।।१३-१६।।

शुभाशुभफलबोधकचक्रम्

पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	अष्टादिक	नि:शब्द
उच्चाटन शत्रुकलह	महाभय	कल्याण	अशुभ	आनन्द	अल्पभय	शुभ	मरण	अशुभ	अतिशुभ

वर्गादिज्ञानम्

वर्गाष्टकस्य पतयो गरुडो विडालः
सिंहस्तथैव शुनकोरग-मूषकैणाः।
मेषः क्रमेण गदिताः खलु पूर्वतोऽपि
यः पंचमः स रिपुरेव बुधैर्विवर्ज्यः।।१७।।

संस्कृतभावार्थः—अ क च ट त प य श—इत्येषां अष्टानां वर्णानां क्रमेण गरुडः विडालः सिंहः श्वानः सर्पः मूषकः मृगः मेषश्च स्वामिनो भवन्ति। एते एव पूर्वादीनां दिशां क्रमादिशाश्च एते सर्वे स्वस्मात् पञ्चमे वैरभावं वहति।।१७।।

वर्गादिज्ञान—अ, क, च, ट, त, प, य, श—इन आठ वर्गों के क्रमशः गरुड़, विडाल, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, मृग, मेष स्वामी होते हैं और ये पूर्व आदि आठ दिशाओं के स्वामी भी हैं। उपर्युक्त वर्गों के स्वामी अपने से पाँचवें के शत्रु होते हैं। यथा—गरुड़ सर्प का शत्रु होता है।।१७।।

काकिणीविचारः

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत्।।१८।।

संस्कृतभावार्थः—स्वकीयं वर्गं द्विगुणितं कृत्वा शत्रुवर्गेण च तस्य योजनं कुर्यात्। ततश्च अष्टभिः तत्र भागकरणे यत् शिष्यते तत् काकिणी इत्युच्यते। इदानीं वर्गद्वयस्य मध्ये यस्य काकिणी अधिका स ऋणी भवेत्।।१८।।

काकिणी-विचार—अपने-अपने वर्ग को दुगुना करके दूसरे की वर्गसंख्या को जोड़कर उसमें आठ का भाग देने पर जो शेष रहे, उसको काकिणी कहते हैं। दोनों की काकिणियों में जिसकी संख्या अधिक हो, वह ऋणी (दूसरे को लाभदायक) होता है।।१८।।

रामदैवज्ञमते राशिभेदाद् ग्रामवासविचारः

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्व-ककुभोऽलिक्षषाङ्गनाश्च।
कर्को धनुस्तुलभमेधघटाश्च तद्व-
द्वर्गाः स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्र्याः।।१९।।

संस्कृतभावार्थः—वृषमिथुनसिंहमकरराशियुक्तानां ग्राममध्ये वृश्चिकराशियुक्तानां पूर्वस्मिन् मीनराशीनां आग्नेये, कन्याराशीनां दक्षिणस्यां, कर्कराशीनां नैर्ऋत्ये, धनुराशीनां पश्चिमदिशि, तुलाराशीनां वायव्ये कोणे, मेषराशीनां उत्तरदिशि कुम्भराशीनां ईशाने निवासाय न शुभाय भवति। अकारादिवर्गाः पूर्वादिदिक्षु क्रमेण बलवन्तो भवन्ति।।१९।।

रामदैवज्ञ के मत से राशिभेदानुसार ग्रामवास का विचार—वृष, मिथुन, सिंह, मकर राशि वालों को ग्राम के मध्य में तथा पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान से क्रमशः वृश्चिक, मीन, कन्या, कर्क, धनु, तुला, मेष, कुम्भ राशि वालों को निवास नहीं करना चाहिये। अकारादि वर्ग उपर्युक्त पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः बलवान होते हैं। यथा—अवर्गयुक्त नाम वाले व्यक्तियों को पश्चिम दिशा में द्वार या निवास करना चाहिये।।१९।।

ग्रामवासविचारचक्रम्

दिशा	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
निषिद्ध राशि	वृ.मि. सिं.म.	वृश्चिक	मीन	कन्या	कर्क	धनु	तुला	मेष	कुम्भ
वर्ग	—	अ	क	च	ट	त	प	य	श

नारायणभट्टमते नामराशितः ग्रामवासफलम्

नामर्क्षाद्द्विसुताङ्कदिग्भवगतो ग्रामः शुभो नान्यथा।

मतान्तरे

स्वनामराशेर्यद्राशिर्द्विशराङ्केशदिग्मितः ।
स ग्रामः शुभदः प्रोक्तस्त्वशुभः स्यात्ततोऽन्यथा ॥२०॥

संस्कृतभावार्थः—स्वनामराशेः द्वितीय-पञ्चम-नवम-दशम-एकादशान्यतमराशियुक्ते ग्रामे निवासः कार्यः। तदन्यराशिषु ग्रामेषु निवासो नोचितः। पद्यस्यैष एवाशयः।।२०।।

मतान्तर से—अपने नाम की राशि से दूसरी, पाँचवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं राशि-वाले ग्राम में निवास शुभ होता है। अन्य राशि वाले ग्राम में निवास न करे। उक्त दूसरे पद्य का भी यही आशय है।।२०।।

अष्टोत्तरीया दिग्दशा

गजशरर्त्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता मघवादिदिशि क्रमात्।
गृहपतेरभिधापुरदिङ्मिता नवहृता भवनस्य दशा भवेत् ॥२१॥
अथाष्टवर्गाः क्रमतोऽष्टवाण तर्काब्धिसप्तेन्दुगुणाश्विभिश्च।
नृग्रामदिग्वर्णमिताङ्कयोगे सूर्यादिशेशाः नवभिर्विभक्तात् ॥२२॥
सूर्येन्दुभौमास्त्वगुजीवमन्दसौम्याश्च केतुर्भृगुजः क्रमेण।
षड्दिङ्नगाधृत्यवनीश्वरांकचन्द्राघनास्सप्तनखास्तदब्दाः॥२३॥
स्वेष्वेषु वर्षप्रमितेषु तेषां दशाफलं तत्र निवासिनां च।
तदुत्तरादुत्तरतो दशेशफलं विकल्प्यं च दशाक्रमेण ॥२४॥

दिग्वर्गाङ्कचक्रम्

दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
वर्ग	अ	क	च	ट	त	प	य	श
अंक	८	५	६	४	७	१	३	२

संस्कृतभावार्थः—उपर्युक्ततालिकानुसारं ग्रामदिशानिवासकर्तृवर्गाङ्कानां योगानन्तरं नवसंख्या भाजने या संख्या अवशिष्यते तत्र सूर्य-चन्द्र-कुज-राहु-गुरु-शनि-बुध-केतु-शुक्रदशाः क्रमेण षड्-दश-सप्त-अष्टादश-षोडश-एकोनविंशति-सप्तदश-सप्तविंशति-वर्षव्यापिन्यः भवन्ति। तत्तद्ग्रामनिवासिनां तत्तदवधिपर्यन्तं शुभग्रहाः शुभफलं अशुभग्रहाः अशुभफलं च ददति।।२१-२४।।

अष्टोत्तरीया दिग्दशा—उपर्युक्त तालिका के अनुसार ग्राम, दिशा और निवासकर्ता के वर्गों के अंकों को जोड़कर ९ का भाग देने पर जो संख्या शेष बचेगी, उसकी दशा सू., चं., भौ, रा, बृ., श., बु., के. के अनुसार होगी। उक्त ग्रहों के दशावर्ष इस प्रकार हैं—सूर्य ६, चन्द्र १०, भौम ७, राहु १८, जीव १६, शनि १९, बुध १७, केतु ७, शुक्र २०। उन-उन ग्रामों में निवास करने वालों को उक्त ग्रह अपनी अवधिपर्यन्त शुभ ग्रह शुभ फल और अशुभ ग्रह अशुभ फल देते हैं।।२१-२४।।

उदाहरण—सारनाथ में प्रभुनारायण सिंह के लिये पूर्व दिशा में मकान बनाने के लिये दशा देखनी है तो ग्राम के आदि अक्षर 'स' के अनुसार ग्राम का अंक २, मकान के स्वामी के नाम का अंक १ और दिशा का अंक ८ (अंकों के लिये के लिये उक्त तालिका को देखें) इनका योग = २+१+८=११ इसमें ९ का भाग दिया तो शेष २ बचा। इसलिये गृहारम्भ से पहले ६ वर्ष सूर्य की दशा रही। वर्त्तमान दशा चन्द्रमा की १० वर्ष शुभ है। इसी क्रम से आगे भी समझें।

दिग्दशाफलम्

उद्विग्नचित्तः परिपूर्णवित्तो वह्न्याभिभूतो ज्वरपीडिताङ्गः।
सौख्यान्वितो रोगयुतः सुखाढ्यो दुःखान्वितः सर्वसुखान्वितश्च ॥२५॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यदशायां मनसः उद्वेगः, चन्द्रदशायां धनलाभः, कुजदशायां अग्निपीडा, राहुदशायां स्वास्थ्यहानिः पीडा च, गुरुदशायां सुखं, शनिदशायां रोगः, बुधदशायां सुखं, केतुदशायां दुःखं, शुक्रदशायां च आनन्दः लभ्यते।।२५।।

दिग्दशाफल का फल—सूर्य की दशा में मानसिक उद्विग्नता, चन्द्र की दशा में धन की प्राप्ति, मङ्गल की दशा में अग्नि से नुकसान की सम्भावना, राहु की दशा में स्वास्थ्यहानि व पीड़ा, बृहस्पति की दशा में सुख, शनि की दशा में रोग, बुध की

दशा में सुख, केतु की दशा में दुःख, शुक्र की दशा में आनन्द की प्राप्ति होती है।।२५।।

दशा	सूर्य	चन्द्र	भौम	राहु	वृहस्पति	शनि	बुध	केतु	शुक्र
फल	उद्वेग	धनयुक्त	अग्नि भय	ज्वर पीड़ा	सुख	रोग	सुख	दुःख	आनन्द

वास्तुराजवल्लभोक्तदिग्दशाज्ञानम्

नृग्रामदिग्वर्गमिताङ्कयोगे सूर्य्यादिशेशा नवभिर्विभक्तात्।
आचंकुराजीशबुकेशुपूर्वा दशा ग्रहाणां कथिता मुनीन्द्रैः ॥२६॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्वामिनः नामदिशाग्रामवर्गयोगे नवसंख्यया भाजिते अवशिष्यमाणसंख्यया पूर्वोक्तक्रमेण फलादेशः कर्त्तव्यः।।२६।।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार दिग्दशा का ज्ञान—गृहपति के नामवर्ग, ग्रामवर्ग, दिशावर्ग के योग में ९ का भाग देने से जो शेष बचे तदनुसार ऊपर निर्दिष्ट क्रम के अनुसार दशा तथा उसका फल समझें।।२६।।

वर्णपरत्वेन भूमिलक्षणानि

शुभस्य शुभदा ज्ञेया दशा पापस्य चाधमा।
शुक्ला मृत्स्ना च या भूमिर्ब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता ॥२७॥
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च हरिद्वैश्या उदाहृता।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता ॥२८॥

संस्कृतभावार्थः—शुभ्रमृत्तिका भूमिः ब्राह्मणी, रक्तमृत्स्ना क्षत्रिया, हरिद्वर्णमृत्तिका वैश्या, कृष्णमृत्स्ना च सा शूद्रेति उच्यते।।२७-२८।।

वर्ण के अनुसार भूमिलक्षण—सफेद वर्ण की मिट्टी वाली भूमि ब्राह्मणी, लाल वर्ण की क्षत्रिया, हरित वर्ण की वैश्या और काले वर्ण वाली शूद्रा कही जाती है।।२७-२८।।

प्रकारान्तरेण भूमिलक्षणानि

ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला ॥२९॥

संस्कृतभावार्थः—कुशयुता भूमिः ब्राह्मणी, शरवणवती क्षत्रिया, सकुशकाशा वैश्या, सर्वतृणमयी च भूमिः शूद्रेत्युत्यते।।२९।।

अन्य प्रकार से भूमि के लक्षण—कुशयुक्त भूमि ब्राह्मणी, शर (मूँज) वाली क्षत्रिया, कुश-काशमिश्रित वैश्या और सब प्रकार के तृणों से युक्त भूमि को शूद्रा कहा गया है।।२९।।

कल्पद्रुमोक्तभूमिलक्षणानि

सुगन्धा ब्राह्मणी भूमी रक्तगन्धा तु क्षत्रिया।
मधुगन्धा भवेद्वैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिका ॥३०॥
अम्ला भूमिर्भवेद्वैश्या तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता।
मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया मता ॥३१॥

संस्कृतभावार्थः—सुगन्धि भूमिः ब्राह्मणी, रक्तगन्धा क्षत्रिया, मधुगन्धा वैश्या, मैरेयगन्धा च शूद्रभूमिरिति कथ्यते। अम्लरसयुता भूमिः वैश्या, तिक्तरसयुता भूमिः शूद्रा, मधुररसयुता भूमिः ब्राह्मणी, कषायरसयुता च क्षत्रियवर्णा भूमिः कथ्यते।।३०-३१।।

कल्पद्रुम के अनुसार भूमिलक्षण—सुगन्धयुक्त ब्राह्मणी, रक्त गन्ध वाली क्षत्रिया, मधु (सस्य) गन्धा, वैश्या और मद्य गन्धसम्पन्न भूमि शूद्रा कही जाती है। और अम्लरसयुक्त वैश्या, तिक्त रस युक्त शूद्रा, मधुर रसयुक्त ब्राह्मणी और कषाय रसयुक्त क्षत्रिया भूमि होती है।।३०-३१।।

तासां फलानि

ब्राह्मणी सर्वसुखदा क्षत्रिया राज्यदा भवेत्।
धनधान्यकरी वैश्या शूद्रा तु निन्दिता स्मृता ॥३२॥

संस्कृतभावार्थः—ब्राह्मणी भूमिः सर्वसुखकारिणी, क्षत्रिया राज्यसुखप्रदा, वैश्या धन-धान्य-सम्पत्करी, शूद्रा च त्याज्या भवति।।३२।।

वर्ण के अनुसार भूमि के फल—ब्राह्मणी भूमि सुखद, क्षत्रिया राज्यप्रद, वैश्या धनधान्य देने वाली और शूद्रा भूमि त्याज्य होती है।।।३२।।

वसिष्ठोक्तभूमि-लक्षणानि

श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम्।
विशां पीता च शूद्राणां कृष्णान्येषां विमिश्रिता ॥३३॥

संस्कृतभावार्थः—ब्राह्मणस्य शुभ्रा, क्षत्रियस्य लोहिता, विशां पीता, शूद्रस्य कृष्णा, अन्यस्य वैश्यस्य च विमिश्रिता भूमिः शुभाः भवति।।३३।।

वसिष्ठ के अनुसार भूमि के लक्षण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों को क्रमशः सफेद, लाल, पीली, काली एवं अन्य वर्णों के लिये मिश्रित वर्ण की भूमि शुभ होता है।।।३३।।

नारदमते भूमिलक्षणानि

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्च शुभावहः ।
घृतासृगन्नमद्यानां गन्धश्च क्रमशो भवेत् ॥३४॥

संस्कृतभावार्थः—ब्राह्मणादीनां चतुर्णां वर्णानां कृते क्रमेण घृतरक्तान्नमद्यगन्धवती भूमिः शुभाः भवति।।३४।।

नारद के मत से भूमिलक्षण—ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के लिये क्रम से घृत, रक्त, अन्न और मद्य गन्ध वाली भूमि सुखद होती है।।३४।।

भूमेरष्टदिक्प्लवत्वफलम्

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम् ।
प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च ॥३५॥
विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही ।
मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवतत्परा ॥३६॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वदिक्प्रवणा भूः धनलाभं, आग्नेयकोणप्रवणा अग्निभयं, दक्षिणासन्नता मृत्युभीतिं, नैर्ऋत्यप्रवणा धनहानिं, पश्चिमनमना पुत्रहानिं, वायव्यसन्नता प्रवासं, उत्तरप्रणता धनलाभं, ईशानप्रवणा च विद्यालाभं करोति। मध्यप्लवा च भूमिः कष्टदा भवति।।३५-३६।।

भूमि का दिशाओं में ढलान का फल—पूर्व दिशा की ओर भूमि ढालदार हो तो धन-प्राप्ति, अग्निकोण में दाह, दक्षिण में मृत्यु, नैर्ऋत्य में धननाश, पश्चिम में पुत्र-हानि, वायव्य में परदेश में निवास, उत्तर में धनागम, ईशान में विद्यालाभ होता है। बीच में गड्ढा वाली भूमि कष्टदायक होती है।।३५-३६।।

मतान्तरम्

शम्भुकोणे प्लवा भूमिः कर्तुः श्रीसुखदायिनी ।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी धनदा तूत्तरप्लवा ॥३७॥
मृत्युशोकप्रदा नित्यमाग्नेयी दक्षिणप्लवा ।
गृहक्षयकरी सा च भूमिर्यानिर्ऋतिप्लवा ॥३८॥
धनहानिकरी चैव कीर्तिदा वरुणप्लवा ।
वायुप्लवा तथा भूमिर्नित्यमुद्वेगकारिणी ॥३९॥

संस्कृतभावार्थः—ईशानकोणप्लवा भूमिः स्वामिनः धनवृद्धिः सुखातिरेकश्च, पूर्वप्लवा वृद्धिं, उत्तरप्लवा धनलाभं, अग्निकोणगा मृत्युशोकं, दक्षिणप्लवा गृहनाशं, नैर्ऋत्यप्लवा धनहानिं, पश्चिमप्रवणा मानहानिं, वायव्यप्लवा मनोव्यथां च कुर्वन्ति।।३७-३९।।

अन्य मत से ढ़लानयुक्त भूमि का फल—ईशान कोण में भूमि ढालदार हो तो गृहपति को धन, सुख; पूर्व में वृद्धि, उत्तर में धनलाभ, अग्निकोण में मृत्यु तथा शोक-दक्षिण गृहनाश, नैर्ऋत्य में धन-हानि, पश्चिम में अपयश, वायव्य में मानसिक उद्वेग करती है।।३७-३९।।

नारायणभट्टमते

सौम्यादिप्लवभूतले विरचयेद्विप्रादिकोऽग्र्योऽखिले ।
नान्येषां नियमोऽथ यत्र निखिला कुर्युर्गृहं हृत्स्थिरम् ॥४०॥

संस्कृतभावार्थः—ब्राह्मणानां उत्तरप्रवणा, क्षत्रियाणां पूर्वप्लवा, वैश्यानां दक्षिणप्लवा, शूद्राणां च पश्चिमप्लवा भूमिः शुभा भवति। मतान्तरेण विप्राणां सर्वविधाधिपः भूः शुभैव भवति, अन्ये वर्णाः नियममुक्ता भवति।।४०।।

नारायण भट्ट के मत से प्लव का फल—ब्राह्मण को उत्तर, क्षत्रिय को पूर्व, वैश्य को दक्षिण और शूद्र को पश्चिम की ओर ढालयुक्त भूमि शुभ है। अथवा ब्राह्मण के लिये सभी प्रकार की ढालवाली भूमि शुभ होती है। शेष वर्णों के लिये कोई नियम नहीं है।।४०।।

वास्तुविद्यायां भूमिप्लवनादिफलम्

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता ।
अर्थक्षयकरीं विद्यात् पश्चिमप्लवना ततः ॥४१॥
दक्षिणप्लवना पृथ्वी नराणां मृतिदा भवेत् ।
वारुणोच्चसमायुक्ता नीचमाहेन्द्रसंयुता ॥४२॥
सा गोवीथिरिति ज्ञेया ऐन्द्रोच्चा नीचवारुणा ।
जलवीथिरिति प्रोक्ता वास्तुज्ञानविशारदैः ॥४३॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वप्लवा भूमिः धनधान्यवर्धिनी, पश्चिमप्लवा धनहानिकरी, दक्षिणप्रवणा गृहस्वामिनः क्षयकरी च भवति। पश्चिमोच्चा पूर्वनीचा च भूः गोवीथीत्युच्यते। पूर्वोच्चा पश्चिमनीचा च भूमिः पूर्वोक्तविपरीता जलवीथीत्युच्यते।।४१-४३।।

वास्तुविद्या के अनुसार भूमिप्लवत्व का फल एवं प्लव के अनुसार संज्ञायें—पूर्व की ओर ढालवाली भूमि धन-धान्य की वृद्धि करनेवाली, पश्चिम की ओर ढालवाली भूमि अर्थनाशकारक, और दक्षिण की ओर ढालवाली भूमि गृहपति के मृत्यु का कारण होती है।

जो भूमि पश्चिम में ऊँची और पूर्व में नीची हो, उसको 'यमवीथी' कहते हैं, जो भूमि पूर्व में ऊँची और पश्चिम में नीची हो उसको 'जलवीथी' कहते हैं।।४१-४३।।

सोमोच्चयमनीचा च यमवीथीति कथ्यते।
यमोच्चसोमनीचा च गजवीथीति कथ्यते ॥४४॥

संस्कृतभावार्थः—उत्तरोच्चा दक्षिणनीचा भूमिः यमवीथी इति कथ्यते। दक्षिणोच्चा उत्तरनीचा सा गजवीथी भवति।।४४।।

यमवीथी व गजवीथी भूमि के लक्षण व फल—उत्तर की ओर ऊँची एवं दक्षिण की ओर नीची (ढालयुक्त) भूमि को यमवीथी और दक्षिण की ओर ऊँची तथा उत्तर की ओर नीची भूमि को गजवीथी कहते हैं।।४४।।

ईशोच्चं निर्ऋतौ नीचं भूतलं भूतवीथिकम्।
आग्नेयोच्चं वायुनीचं नागवीथी प्रशस्यते ॥४५॥

संस्कृतभावार्थः—ईशानकोणे उद्गता नैर्ऋत्ये च प्लववती भूतवीथी कथ्यते। अग्निकोणोच्चा वायव्यप्रवणा नागवीथी कथ्यते।।४५।।

भूतवीथी व नागवीथी भूमि के लक्षण व फल—ईशान कोण की ओर ऊँची एवं नैर्ऋत्य की ओर नीची भूमि को भूतवीथी, अग्निकोण की ओर ऊँची तथा वायव्य कोण की ओर नीची भूमि को नागवीथी कहते हैं।।४५।।

वायूच्चमग्निनीचं यद् वीथिं वैश्वानरीं विदुः।
निर्ऋत्युच्चमीशनीचं धनवीथीत्युदाहृता ॥४६॥
इन्द्राग्न्यन्तरमुच्चस्यान्नीचं वरुणवातयोः।
वास्तु पैतामहं विद्यान्नराणां कुरुते शुभम् ॥४७॥

संस्कृतभावार्थः—वायव्योच्चा आग्नेयनीचा भूमिः वैश्वानरी इत्युच्यते। नैर्ऋत्योच्चा ईशानप्लवा सा धनवीथी इति भण्यते। आग्नेयमध्योच्चा पश्चिमवायव्यमध्यनीचा भूमिश्चेत् तत्र पैतामह वास्तु इति व्यवहारः, पैतामहवास्तुभूमौ निवासः शुभावहः।।४६-४७।।

धनवीथी व पितामह भूमि के लक्षण व फल—और वायव्य कोण की ओर ऊँची तथा अग्निकोण की ओर नीची भूमि को वैश्वानरी कहते हैं। नैर्ऋत्य कोण की ओर नीची, ईशान कोण की ओर ऊँची भूमि को धनवीथी, अग्निकोण के मध्य में ऊँची और पश्चिम तथा वायुकोण के मध्य में नीची भूमि को पितामह वास्तु कहते हैं। ऐसी भूमि में निवास सुखद होता है।।४६-४७।।

याम्याग्न्यन्तरमुच्चं स्यान्नीचं मारुतसोमयोः।
सुपथं नाम तद्वास्तु प्रशस्तं सर्वकर्मणि ॥४८॥

संस्कृतभावार्थः—अग्निकोणपश्चिममध्योच्चा वायव्योत्तरमध्यनीचा भूमिः चेत्तत्र सुपथवास्तु इति व्यवहारः। यत्र निवासः शुभाय भवति।।४८।।

सुपथ भूमि के लक्षण व फल—अग्निकोण और पश्चिम के बीच में ऊँची तथा वायव्यकोण एवं उत्तर के बीच में नीची भूमि को सुपथ वास्तु कहते हैं। यह भूमि सभी कर्मों के योग्य होती है।।४८।।

सोमेशानन्तरं नीचमुच्चं निर्ऋतिकालयोः।
दीर्घायुर्नाम तद्वास्तु प्रशस्तं कुलवर्धनम् ॥४९॥
ईशानेन्द्रान्तरं नीचमुच्चं वरुणरक्षसोः।
पुण्यकं नाम तद्वास्तु द्विजानां च शुभावहम् ॥५०॥

संस्कृतभावार्थः—उत्तरैशानमध्यनीचा नैर्ऋत्यदक्षिणमध्योच्चा भूमिः दीर्घायुर्वास्तुव्यपदेशती सती वासार्थमुत्तमा वंशवृद्धिकारिणी च भवति। ऐशानपूर्वमध्यनीचा नैर्ऋत्यपश्चिममध्योच्चा भूमिः पुण्यकवास्तु इति व्यवह्रियते। इयं चातुर्वर्ण्यस्यापि निवासयोग्या सुखदा च भवति।।४९-५०।।

दीर्घायु व पुण्यक भूमि के लक्षण फल—उत्तर और ईशान कोण के बीच में नीची, नैर्ऋत्य और दक्षिण दिशा के बीच में ऊँची भूमि को दीर्घायुवास्तु कहते हैं। यह भूमि उत्तम तथा वंशवृद्धिकारक होती है। ईशान कोण और पूर्व के बीच में नीची तथा नैर्ऋत्य और पश्चिम के बीच में ऊँची भूमि को पुण्यकवास्तु कहते हैं। यह भूमि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिये सुखद होती है।।४९-५०।।

इन्द्राग्न्योरन्तरं नीचमुच्चं वायुजलेशयोः।
अपथं नाम तद्वास्तु वैराय कलहाय च ॥५१॥
कालाग्न्योरन्तरं नीचमुच्चं स्याद्वायुसोमयोः।
रोगकृन्नाम तद्वास्तु नराणां रोगवृद्धिकृत् ॥५२॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वाग्निकोणमध्यनीचा वायव्यपश्चिममध्योच्चा भूमिः अपथवास्तु भवति। इयञ्च वैरं कलहं च आवहति। अग्निकोणदक्षिणमध्यनीचा वायव्योत्तरमध्योच्चा भूमिः रोगकृद्वास्तु इति व्यपदेश्या निवासे च रोगकरी भवति।।५१-५२।।

अपथ व रोगकृत भूमि के लक्षण व फल—पूर्व और अग्निकोण के बीच में नीची तथा वायव्य कोण और पश्चिम के बीच में ऊँची भूमि को अपथवास्तु कहते हैं। यह भूमि लड़ाई-झगड़ा कराने वाली होती है। अग्निकोण और दक्षिण के बीच में नीची तथा वायव्य कोण और उत्तर के मध्य में ऊँची भूमि को रोगकर वास्तु कहते हैं। यह भूमि रोगकारक होती है।।५१-५२।।

निर्ऋत्यन्तकयोर्नीचमुच्चं सोमशिवान्तरम्।
अर्गलं नाम तद्वास्तु ब्रह्महत्यादिनाशकृत् ॥५३॥
रुद्रेन्द्रान्तरमुच्चस्यान्नीचं वरुणरक्षसोः।
श्मशानं नाम तद्वास्तु केवलं कुलनाशनम् ॥५४॥

संस्कृतभावार्थः—निर्ऋतियमकोणमध्यनीचा ईशकुबेरदिङ्मध्योच्चा भूमिश्चेदर्गलवास्तु इति व्यवहारः। इयं भूमिः ब्रह्महत्यादिदोषान् अपि शमयति। ईशानकोणपूर्वदिङ्मध्योच्चा नैर्ऋत्यपश्चिममध्यनीचा भूमिः श्मशानवास्तु भवति, इयं भूमिः पुण्यनाशकरी भवति।

अर्गला व श्मशान भूमि के लक्षण व फल—नैर्ऋत्य कोण, दक्षिण के बीच में नीची और ईशान कोण, उत्तर के बीच में ऊँची भूमि को अर्गलवास्तु कहते हैं। यह भूमि ब्रह्महत्या आदि महापापों का विनाश करती है। ईशान कोण और पूर्व के बीच में ऊँची तथा पश्चिम और नैर्ऋत्य कोण में नीची भूमि को श्मशानवास्तु कहते हैं। यह भूमि कुलनाशक होती है।।५३-५४।।

नीचमग्नौभवेदुच्चं निर्ऋतीशानवायुषु।
श्येनकं नाम तद्वास्तु नाशाय मरणाय च ।।५५।।
रुद्राग्निवरुणेषूच्चं नीचं स्यान्निर्ऋतौ तथा।
श्वमुखं नाम तद्वास्तु दारिद्र्यं कारयेत्फलम् ।।५६।।

संस्कृतभावार्थः—अग्निकोणनीचा नैर्ऋत्यैशानवायव्यकोणोच्चा भूमिः शोकवास्तु (श्येनकवास्तु) इति व्यपदिश्यते। इयं भूमिः सम्पत्तिनाशकरी मरणभयावहा च भवति। ऐशानाग्नेयपश्चिमोच्चा नैर्ऋत्यनीचा भूमिः श्वमुखवास्तु इत्यभिधीयते। इयं भूमिः निवासकर्तुः दारिद्र्यमावहति।।५५-५६।।

शोक व श्वमुख भूमि के लक्षण व फल—अग्निकोण में नीची, निर्ऋति, ईशान तथा वायव्यकोण में ऊँची भूमि को शोकवास्तु कहते हैं। यह भूमि सम्पत्तिनाशक एवं मृत्युकारक होती है। ईशानकोण, अग्निकोण तथा पश्चिम में ऊँची और नैर्ऋत्य कोण में नीची भूमि को श्वमुखवास्तु कहते हैं। यह भूमि निवासकर्ता को दरिद्र बना देती है।।५५-५६।।

नैर्ऋत्यान्निशिवेषूच्चं नीचं वह्नीन्द्रयोस्तथा।
ब्रह्मघ्नं नाम तद्वास्तु नेष्टं प्राणभृतां सदा ।।५७।।
अग्नौ यदि भवेदुच्चं नीचं निर्ऋतिरुद्रयोः।
वातनिम्नं च तद्वास्तु स्थावरं नाम शोभनम् ।।५८।।

संस्कृतभावार्थः—नैर्ऋत्याग्नेशानकोणोच्चा पूर्ववायव्यकोणयोश्च नीचा भूमिः ब्रह्मघ्नवास्तु इत्युच्यते। इयं भूमिः न वासयोग्या भवति, अत्र कृषिः कर्तुं शक्यते। आग्नेयोच्चा नैर्ऋत्यैशानवायव्यनीचा चेद्भूमिः तत्र स्थावरवास्तु इति व्यवहारः। इयं भूमिः सर्वप्रकारेण उपयोग्या।।५७-५८।।

ब्रह्मघ्न व स्थावर भूमि के लक्षण व फल—नैर्ऋत्य, आग्नेय और ईशानकोण में ऊँची तथा पूर्व, वायव्यकोण में नीची भूमि को ब्रह्मघ्न वास्तु कहते हैं। यह भूमि प्राणियों के निवासयोग्य नहीं होती, ऐसी भूमि पर खेती आदि करनी चाहिये। अग्निकोण में ऊँची और नैर्ऋत्य, ईशान, वायव्यकोण में नीची भूमि को स्थावरवास्तु कहते हैं। यह भूमि सब भाँति शुभ होती है।।५७-५८।।

उच्चं निर्ऋतिभागे स्यान्नीचं ज्वलनवातयोः।
रुद्रनिम्नं च तद्वास्तु स्थण्डिलं नाम शोभनम् ।।५९।।
रुद्रोच्चं यदि निम्नं स्याद्वह्नौ निर्ऋतिवातयोः।
शाण्डुलं नाम तद्वास्तु प्रापयत्यशुभं सदा ।।६०।।

संस्कृतभावार्थः—नैर्ऋत्यकोणोच्चा आग्नेयवायव्यैशाननीचा भूः स्थण्डिलवास्तु भवति या च स्थिरतां करोति। ऐशानोच्चा आग्नेयनैर्ऋत्यवायव्यनीचा भूः शाण्डुलवास्तु इति कथ्यते। इयं च कस्मिंश्चिदपि कार्ये अनुपयोगिनी अशुभावहा भवति।।५९-६०।।

स्थण्डिल व शाण्डुल भूमि के लक्षण व फल—नैर्ऋत्य कोण में ऊँची तथा आग्नेय, वायव्य, ईशानकोण में नीची भूमि को स्थण्डिल वास्तु कहते हैं। यह स्थिरता प्रदान करने के कारण शुभ है। ईशान कोण में ऊँची और आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्यकोण में नीची भूमि को शाण्डुल वास्तु कहते हैं। यह भूमि सर्वथा निवास के अयोग्य है।।५९-६०।।

नैर्ऋत्याग्निशिवेषूच्चं नीचं चन्द्रमसंप्रति।
द्विजेन्द्राणान्तु सुस्थानमवनी समुदाहृता ।।६१।।
नीचमिन्द्रे भवेदुच्चं निर्ऋत्यां पश्चिमानिले।
सुतलं नाम तद्वास्तु राजराष्ट्रविवर्धनम् ।।६२।।

संस्कृतभावार्थः—आग्नेयनैर्ऋत्यैशानकोणोच्चा वायव्यनीचा भूमिः सुस्थानवास्तु भवति। विप्राणामियं सुखदा। पूर्वप्रवणा नैर्ऋत्यवायव्यपश्चिमोच्चा सा सुतलवास्तु भवति। इयं भूमिः क्षत्रियाणां सुखदा।।६१-६२।।

सुस्थान व सुतल भूमि के लक्षण फल—आग्नेय, नैर्ऋत्य, ईशानकोण में ऊँची तथा वायव्यकोण में नीची भूमि को सुस्थानवास्तु कहते हैं। यह भूमि ब्राह्मणों के लिये सुखद होती है। पूर्व में नीची और नैर्ऋत्य, वायव्यकोण एवं पश्चिम में ऊँची भूमि को सुतलवास्तु कहते हैं। यह भूमि क्षत्रियों के लिये हितकर होती है।।६१-६२।।

सौम्येशपवनेषूच्चं नीचं भवति चेद्यमे।
नाम्ना वास्तु चरं यत्स्याद्वैश्यानां तदभीष्टदम् ।।६३।।
नीचं वारुणमुच्चं चेदीशानेन्द्राग्निषु क्रमात्।
श्वमुखं नाम तद्वास्तु शूद्राणां तदभीष्टदम् ।।६४।।

संस्कृतभावार्थः—उत्तरैशानवायव्यकोणोच्चा दक्षिणनीचा भूः चरवास्तु इत्युच्यते।

इयं भूः वैश्यानां शुभा। पश्चिमनीचा, ऐशानपूर्वाग्नेयोच्चा भूः श्वमुखवास्तु भवति शूद्राणां विशेषतः शुभावहा च भवति।।६३-६४।।

चर व श्वमुख भूमि लक्षण फल—उत्तर, ईशान कोण, वायव्य कोण में ऊँची तथा दक्षिण में नीची भूमि को चरवास्तु कहते हैं। यह भूमि वैश्यों के लिये विशेष लाभदायक होती है। पश्चिम में नीची ईशानकोण, पूर्व, आग्नेय कोण में ऊँची भूमि को श्वमुखवास्तु कहते हैं। यह भूमि शूद्रों के निवास योग्य होती है।।६३-६४।।

या तु सौम्यप्लवा चैव कुशदर्भैरलङ्कृता।
आज्यगन्धा च सा भूमिर्ब्राह्मणानां प्रशस्यते ॥६५॥
पूर्वप्लवा च रक्ता च कुशदर्भैरलङ्कृता।
रक्तगन्धा च या भूमिः क्षत्रियाणां प्रशस्यते ॥६६॥

संस्कृतभावार्थः—उत्तरप्लवा कुशवती घृतगन्धा च या भूर्भवति सा ब्राह्मणानां शुभा भवति। पूर्वप्लवा रक्तमृत्स्ना कुशयुक्ता रक्तगन्धा च सा क्षत्रियाणां हितकरी भवति।

ब्राह्मण व क्षत्रियों के लिये शुभ भूमि के लक्षण व फल—जिस भूमि पर उत्तर की ओर जल बहता हो, कुश उगे हों और घी की सी गन्ध प्रतीत होती हो वह भूमि ब्राह्मणों के योग्य होती है। जिस पर पूर्व की ओर जल बहता हो, मिट्टी का रंग लाल हो, कुश उगे हों तथा रक्त की सी गन्ध आती हो वह भूमि क्षत्रियों के लिये लाभदायक होती है।।६५-६६।।

दक्षिणप्लवनोपेता कुशदर्भैरलङ्कृता।
अन्नगन्धा च या भूमिः सा वैश्यानां प्रशस्यते ॥६७॥
पश्चिमप्लवनोपेता दूर्वाभिश्च समन्विता।
सुरागन्धा च या भूमिः शूद्राणां समुदाहृता ॥६८॥

संस्कृतभावार्थः—दक्षिणप्लवा कुशवती धान्यगन्धा भूः वैश्यानां शुभावहा भवति। पश्चिमप्रवणा दूर्वारोहवती मद्यगन्धा भूः शूद्राणां शुभावहा भवति।।६७-६८।।

वैश्य व शूद्र लिये शुभ भूमि के लक्षण व फल—जिस भूमि पर दक्षिण की ओर पानी बहता हो, कुश उगे हों, अन्नों की सी गन्ध प्रतीत होती हो, वह भूमि वैश्यों के लिये उत्तम होती है। जिस भूमि पर पश्चिम की ओर पानी बहता हो, दूब उगी हो, मद्य की सी गन्ध आ रही हो, वह भूमि शूद्रों के लिये हितकर होती है।।६७-६८।।

इन्द्रोन्नतं पुत्रनाशं बह्न्युन्नतमथार्थदम्।
अग्निनीचोऽर्थनाशः स्याद् याम्योन्नतमरोगकृत ॥६९॥
निर्ऋत्युच्चे श्रियो लाभ पुत्रद वरुणोन्नतम्।
वायून्नतं द्रव्यनाशं सोम्योन्नतमथागदम् ॥७०॥

ईशानोच्चं महाक्लेशं वास्तुविद्यादितिक्रमात्।

संस्कृतभावार्थः—पूर्वोच्चा भूमिः पुत्रनाशकरी, अग्निकोणोच्चा धनदा, आग्नेयनीचा धनहानिकरी, दक्षिणोच्चा स्वास्थ्यप्रदा, नैर्ऋत्योच्चा लक्ष्मीप्रदा, पश्चिमोच्चा पुत्रदा, वायव्योच्चा द्रव्यहानिकरी, उत्तरोच्चा भूमिः स्वास्थ्यप्रदा, ईशानोच्चा महाक्लेशकरी भवति।।६९-७०।।

विभिन्न दिशाओं में ऊँचाई के अनुसार भूमि के लक्षण व फल—पूर्व दिशा में ऊँची भूमि पुत्रनाशकारक होती है, अग्नि कोण में ऊँची भूमि धन देती है। अग्निकोण में नीची भूमि धननाश करती है। दक्षिण दिशा में ऊँची भूमि स्वास्थ्यप्रद होती है। नैर्ऋत्य कोण में ऊँची भूमि लक्ष्मी (धन-धान्य) दायक होती है। पश्चिम में ऊँची भूमि पुत्रप्रद होती है, वायव्यकोण में ऊँची भूमि द्रव्यहानि, उत्तरदिशा में आरोग्य लाभ, और ईशानकोण में महाक्लेशकारक होती है, यह वास्तु का मत है।

अश्वत्थः पूर्वतो धन्यो दक्षिणस्यामुदुम्बरः।
न्यग्रोधः पश्चिमे श्रेष्ठः प्लक्षोऽप्युत्तरतः शुभः ॥७१॥
न्यग्रोधः पूर्वतो वर्ज्यो दक्षिणे प्लक्ष एव च।
अश्वत्थः पश्चिमे भागे ह्युत्तरे चाप्युदुम्बरः ॥७२॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वदिशि अश्वत्थः, दक्षिणायाम् उदुम्बरः, पश्चिमायां वटः उत्तरस्यां प्लक्षः च शुभो भवति। एतद्विपरीततया पूर्वस्यां वटः, दक्षिणायां प्लक्षः, पश्चिमायां अश्वत्थः उत्तरस्याम् उदुम्बरः च वर्जनीयः।।७१-७२।।

दिशाओं में वृक्षों का शुभाशुभ फल—पूर्व में पीपल का वृक्ष, दक्षिण में गूलर, पश्चिम में बरगद और उत्तर में पर्कटी (पाकड) का वृक्ष उत्तम होता है। इसके विपरीत पूर्व में बरगद, दक्षिण में पाकड़, पश्चिम में पीपल और उत्तर में गूलर का वृक्ष वर्जित है।।७१-७२।।

अश्वत्थोऽग्निभयं कुर्यात् प्लक्षः कुर्यात् प्रमादकम्।
न्यग्रोधः शस्त्रसम्पातं कुक्षिरोगमुदुम्बरः ॥७३॥

संस्कृतभावार्थः—अश्वत्थस्य निषिद्धदिशि अवस्थानम् अग्निभयाय भवति। प्लक्षस्य प्रमादाय, वटस्य शस्त्रभयाय, उदुम्बरस्य उदररोगाय च भवति।।७३।।

निषिद्ध दिशाओं में स्थित वृक्षों का फल इस प्रकार है—पीपल अग्निभय, पाकड़ प्रमाद, बरगद शस्त्रभय, और गूलर उदररोगकारक होता है।।७३।।

काष्ठेष्टकातुषाङ्गारपाषाणास्थिसरीसृपान।
हलाग्रेणोद्धृतान् दृष्ट्वा तत्र विद्यादिदं फलम् ॥७४॥
काष्ठेष्वग्निभयं विद्यादिष्टकासु धनागमम्।
अङ्गारेषु तथारोगं तुषेष्वेव धनक्षयम् ॥७५॥

पाषाणेष्वपि कल्याणं कुलनाशं तथास्थिषु।
सरीसृपेषु सर्वेषु तादृग्भ्यो भयमादिशेत् ॥७६॥

संस्कृतभावार्थः—हलाग्रेण भूमौ कृष्टायां काष्ठलाभे अग्निभयम्, इष्टकालाभे धनलाभः, तुषावाप्तौ धनहानिः, अङ्गारलब्धौ रोगः, पाषाणलब्धौ कल्याणम्, अस्थिलब्धौ कुलनाशः, सरीसृपदर्शने भयं च भवति।।७४-७६।।

भूमि खोदने पर प्राप्त वस्तुओं का फल—हल के फाल से भूमि को खोदने पर यदि लकड़ी, ईंट, भूसा, कोयला, पत्थर, हड्डी, साँप, विच्छू आदि में से कोई दिखायी दे तो उनका फल क्रमशः इस प्रकार है—काष्ठनाभ में अग्निभय, ईंटलाभ में धनप्राप्ति, भूसा प्राप्त होने पर धनक्षय, कोयला-प्राप्ति में रोग, पत्थर होने पर कल्याण, हड्डी से कुलनाश और साँप आदि से इन्हीं द्वारा भय समझें।।७४-७६।।

अनूषरा स्निग्धवती प्रशस्ता च बहूदका।
तृणापलान्विता या सा मान्या वास्तुविधौ धरा ॥७७॥

संस्कृतभावार्थः—उर्वरा स्निग्धमृत्स्ना बहुजला तृणपाषाणवती भूर्वासाय शुभा।

शुभ भूमि के लक्षण—उपजाऊ, चिकनी मिट्टी वाली, पानी वाली, घास तथा पत्थरों वाली भूमि निवास योग्य होती है, ऐसा वास्तुशास्त्रियों का कथन है।।७७।।

वराहमिहिरमते प्रशस्ता भूमिः

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समानसुखदा च मही नराणाम्।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥७८॥

संस्कृतभावार्थः—उत्तमौषधियुता, वृक्ष-लतावती, मधुरा, स्निग्धमृत्स्ना, सुगन्धा, समतला, परिश्रमहरा भूः गृहस्वामिनः धनं सुखं शान्तिं च ददाति।।७८।।

वराहमिहिर के मत से उत्तम भूमि—उत्तम ओषधि, वृक्ष, लता वाली मधुर, चिकनी, सुगन्धित, समतल, परिश्रम को दूर करने के प्रभाव वाली भूमि गृहपति को धन, सुख, शान्ति देती है।।७८।।

वास्तुप्रदीपोक्तभूमिदोषाः

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकाऽऽरोहिणी तथा।
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा ॥७९॥

संस्कृतभावार्थः—स्फोटवती, शल्ययुक्ता, वल्मीकव्याप्ता, उच्चावचा भूः त्याज्या भवति। एतादृशी भूमिः धनम् आयुश्च नाशयति।।७९।।

वास्तुप्रदीप के अनुसार वास्तु के दोष—फटी हुई, शल्ययुक्त, दीमकों से व्याप्त और ऊँची-नीची भूमि को भवन-निर्माता दूर से छोड़ दे, ऐसी भूमि आयु एवं धन का नाश कराती है।।७९।।

विशेषफलम्

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी।
सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी ॥८०॥
चैत्ये भयं गृहकृतो वल्मीके स्वकुले विपत्।
गर्तायांतु विनाशः स्यात् कूर्माकारे धनक्षयः ॥८१॥

संस्कृतभावार्थः—जातस्फोटा मृत्युं, ऊषरा धननाशं, अस्थिवती नित्यक्लेशं, उच्चावचा शत्रुवृद्धिं, श्मशानतुल्या भयं, सवल्मीका सङ्कटं, सगर्ता विनाशं, कूर्माकारा च भूः धनहानिं करोति।।८०-८१।।

विशेष फल—फटी भूमि से मरण, ऊषर से धननाश, शल्ययुक्त से सदा क्लेश, ऊँची-नीची से शत्रुवृद्धि, श्मशान-जैसी भूमि से भय, दीमक-व्याप्त से विपत्ति, गड्ढों वाली से विनाश और कूर्माकार (बीच में उठी) से धननाश होता है।।८०-८१।।

गजपृष्ठभूमिलक्षणम्

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋत्ये वायुकोणके।
एभिरुच्चा यदा भूमिर्गजपृष्ठाऽभिधीयते ॥८२॥
गजपृष्ठे भवेद्वासः स लक्ष्मीधनपूरितः।
आयुवृद्धिकरो नित्यं जायते नात्र संशयः ॥८३॥

संस्कृतभावार्थः—दक्षिणपश्चिमनैर्ऋत्यवायव्यकोणोच्चा भूः गजपृष्ठा उच्यते। इयं लक्ष्मीं धनं आयुश्च वर्धयति।।८२-८३।।

गजपृष्ठ भूमि का लक्षण एवं फल—दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य एवं वायव्यकोण में ऊँचे आकार की भूमि को गजपृष्ठ कहते हैं।

गजपृष्ठसंज्ञक भूमि पर निवास करने से लक्ष्मी, धन तथा आयु की वृद्धि होती है।।८२-८३।।

कूर्मपृष्ठभूमिलक्षणम्

मध्येऽत्युच्च भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम्।
कूर्मपृष्ठा भवेद् भूमिस्तत्र वासौ विधीयते ॥८४॥
कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः।
धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम् ॥८५॥

संस्कृतभावार्थः—मध्योच्चा, चतसृषु दिक्षु नीचा भूमिः कूर्मपृष्ठा उच्यते। एतादृशभूमौ निवासेन उत्साहं धनधान्यम् आयुश्च निरन्तरं वर्धते।।८४-८५।।

कूर्मपृष्ठ भूमि का लक्षण एवं फल—मध्यभाग में विशेष ऊँची और चारों दिशाओं में नीची भूमि को कूर्मपृष्ठ कहते हैं। ऐसी भूमि निवासयोग्य होती है।

कूर्मपृष्ठ लक्षणयुक्त भूमि पर निवास प्रतिदिन उत्साह एवं धन-धान्य की वृद्धि करता है।।८४-८५।।

दैत्यपृष्ठभूमिलक्षणम्

पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु उन्नतिश्च यदा भवेत्।
पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोऽभिधीयते ॥८६॥
दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे।
धनपुत्रपशूनां च हानिरेव न संशयः ॥८७॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वैशानाग्नेयोच्चा पश्चिमनीचा भूमिः दैत्यपृष्ठा उच्यते। अस्यां निवासेन कदापि लक्ष्म्यनुग्रहः न भवति, धन-सुत-पशुनाशश्च भवति। अत्र न सन्देहोऽस्ति।

दैत्यपृष्ठ भूमि का लक्षण एवं फल—पूर्व, ईशान तथा आग्नेय कोण में ऊँची और पश्चिम में नीची भूमि को दैत्यपृष्ठ कहते हैं।

दैत्यपृष्ठ लक्षण वाली भूमि पर भवन निर्माण करे तो उस गृह में लक्ष्मी कभी प्रवेश नहीं करती और धन, पुत्र, पशुओं का भी विनाश होता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।।८६-८७।।

नागपृष्ठभूमिलक्षणम्

पूर्वपश्चिमयोर्दीर्घो दक्षिणोत्तर उच्चकः।
नागपृष्ठं विजानीयात् कर्तुरुच्चाटनं भवेत् ॥८८॥
नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः।
पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे ॥८९॥

संस्कृतभावार्थः—पश्चिमदीर्घा, दक्षिणपश्चिमोच्चा भूः नागपृष्ठा भवति। अस्यां निवासेन वासकर्ता उच्चाटनं लभेत्। अत्र च गृहस्वामिनः मृत्युः, स्त्रीहानिः, पुत्रनाशः सर्वदा शत्रुभयश्च भवति।।८८-८९।।

नागपृष्ठ भूमि का लक्षणं एवं फल—पश्चिम की ओर लम्बी, दक्षिण तथा पश्चिम में ऊँची भूमि को नागपृष्ठ कहते हैं। ऐसी भूमि निवासकर्ता के मन का उच्चाटन कर देती है। अर्थात् मन को कभी शान्ति नहीं मिलती।

पूर्वोक्त नागपृष्ठ के लक्षणों से युक्त भूमि पर निवास करने से निःसन्देह गृहपति

की मृत्यु, स्त्री हानि, पुत्र नाश और कदम-कदम पर शत्रुओं का भय बना रहता है।।८८-८९।।

प्रकारान्तरेण भूमेर्लक्षणम्

आयते सिद्धयस्सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः।
वृत्ते तु बुद्धिवृद्धिः स्याद्भद्रं भद्रासने भवेत् ॥९०॥
चक्रे दारिद्र्यमित्याहुर्विषमे शोकलक्षणम्।
राजभीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे तु धनक्षयः ॥९१॥
दण्डे पशुक्षयं प्राहुः शूर्पे वासे गवां क्षयः।
गोव्याघ्रबन्धने पीडा धनुः क्षेत्रे भयं महत् ॥९२॥

संस्कृतभावार्थः—आयताकारा भूः सर्वसिद्धिदा, चतुरस्रा धनकरी, गोलाकारा बुद्धि-वर्द्धिनी, भद्रासनभूः भद्रावहा, चक्राकारा दारिद्र्यकरी च भवति। विषमायां भूमौ निवासेन शोकः त्रिकोणाकारायां राजभयं, शकटाकारायां धनहानिः, दण्डाकारायां पशुनाशः सूपाकृतौ गोनाशः, गोष्ठीने हस्तिबन्धने च पीडा, धनुराकृतौ सङ्कटश्च भवति।।९०-९२।।

अन्य प्रकार से भूमि के लक्षण—आयत (जिस भूमि के दोनों भुज बराबर हों और चारों कोण सम हों) आकार वाली भूमि पर निवास सर्वसिद्धिदायक, चतुरस्र (जिसकी लम्बाई चौड़ाई समान हो) भूमि पर धन का लाभ, वृत्त (गोलाई) आकार वाली बुद्धि की वृद्धि, भद्रासन पर सब प्रकार का कल्याण, चक्राकार दरिद्रता, विषम (ऊँची-नीची) भूमि शोक, त्रिकोण आकार वाली राजभय, शकट (गाड़ी) आकार वाली धननाशक, दण्डाकार पशुनाशक, सूप के आकार वाली गायों का नाश, गाय, हाथी बाँधने वाली भूमि पर पीड़ा और धनुषाकार भूमि पर निवास करने से महान् भय होता है।।।९०-९२।।

वासयोग्यभूमिः

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम् ॥९३॥

संस्कृतभावार्थः—या भूमिः दर्शनमात्रेण मनोनयनानन्ददा तस्यां वासः मङ्गलकरा भवतीति गर्गाद्यृषीणां मतम्।।९३।।

गर्गादि ऋषियों के अनुसार वासयोग्य भूमि—जिस भूमि पर पहुँचते ही मन और आँखें प्रसन्न हों, उस पर घर बनाकर निवास करना चाहिये। यह गर्ग आदि ऋषियों का मत है।।९३।।

जागृतादि-भूमिज्ञानम्

कर्ता ग्रामदिशश्चैव स्वरयुक्तं तु कारयेत्।
वह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषाङ्के फलमादिशेत् ॥९४॥

एके जागर्ति भूमिश्च द्वितीये समतागतिः।
तृतीये राक्षसी चैव मृत्युरेतन्न संशयः ॥९५॥

संस्कृतभावार्थः—गृहनिर्माता ग्रामदिशः स्वरस्य च संख्यां योजयित्वा ततः त्रिभिः भाजयेत्। तत्र या संख्या शिष्यते तदनुसारेण फलं ब्रूयात्। एका संख्या शिष्यते चेत् जाग्रत्संज्ञका, द्विसंख्याशेषे समानगतिनाम्नी, त्रिसंख्याशेषे राक्षसीनामिका भूः भवति। एतासु निवासेन नियतमेव मृत्युर्भविता।।९४-९५।।

जागृत/समानगति/राक्षस भूमि का लक्षण एवं फल—गृहनिर्माण करने वाला व्यक्ति गाँव की दिशा, संख्या तथा स्वर संख्या (श्लोक २४ के नीचे दिये हुये चक्र के अनुसार) का योग करके तीन का भाग दे, जो शेष आये उसका फल निम्नोक्त प्रकार से कहे। १ शेष में भूमि जागती है, २ में समान गति, ३ में राक्षसी भूमि। इसमें निवास करने से निःसन्देह मृत्यु होती है।।९४-९५।।

तडागादिखननयोगाः

प्रद्योतनात्पञ्चनगाङ्कसूर्य-नवेन्दुषड्विंशमितेषु भेषु।
शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापीखननं न शस्तम् ॥९६॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यनक्षत्रात् ५-७-९-१२-१९-२६तमनक्षत्रेषु पृथिवी शयनं करोति; अतः एतेषु नक्षत्रेषु तड़ाग-कूप-वाप्यादि निर्माणं न कार्यम्। एतदतिरिक्तनक्षत्रेषु तन्निर्माणे शुभं भवेत्।।९६।।

तालाब/कुआँ/बावड़ी खुदवाने का समय—सूर्य के नक्षत्र से ५, ७, ९, १२, १९, २६ नक्षत्रों में पृथ्वी शयन करती है, अतः इन नक्षत्रों में तालाब, कुआँ, बावड़ी आदि खुदवाना निषिद्ध है। इनके अतिरिक्त शुभ है।।९६।।

जीवितादिभूमिज्ञानं तत्फलञ्च

व्यामविस्तारयोरैक्यं ग्रामाक्षरसमन्वितम्।
चतुर्गुणं नामयुक्तं शिवनेत्रेण भाजितम् ॥९७॥
एकेन भूमेर्जीवः स्याद् द्वाभ्यां च समता भवेत्।
शून्यशेषे तु शून्यं स्यादित्युक्तं रुद्रयामले ॥९८॥

संस्कृतभावार्थः—भूमेः व्यामविस्तारौ योजयित्वा तत्र ग्रामनामाक्षराणि च योजयित्वा चतुःसंख्या गुणनं कृत्वा पुनः स्वनामाक्षराणि योजयित्वा त्रिसंख्या भाजनं कुर्यात्। एकशेषे जीविता, द्विशेषे समता, त्रिशेषे च शून्यता च भूमे ज्ञेया।।९७-९८।।

रुद्रयामलतन्त्र के अनुसार जीवित/समता/शून्य भूमि का लक्षण—भूमि के दीर्घ-विस्तार का योग कर उसमें ग्राम के अक्षरों को जोड़कर ४ से गुणा करें, उस संख्या में अपने नाम के अक्षर जोड़कर ३ का भाग दें। १ शेष में जीवित भूमि, २ में समता, ३ में शून्य—यह रुद्रयामलतन्त्र में लिखा है।।९७-९८।।

प्रश्नाज्जीवितादिभूमिज्ञानम्

भूम्यक्षरं चतुर्गुण्यं तिथिवारं च मिश्रितम्।
त्रिभिर्भागः प्रदातव्यः शेषेण फलमादिशेत् ॥९९॥
एकेन जीविता भूमिर्द्विशेषे भूःसमानता।
त्रिशेषे मृतभूमिः स्यादित्युक्तं चादियामले ॥१००॥

संस्कृतभावार्थः—भूमेः नामाक्षराणि चतुर्गुणानि कृत्वा तिथिवारसंख्यायोगेन सह त्रिभिः भागे कृते यदि एकं शिष्यते तर्हि जीविता द्विशेषे समा त्रिशेषे मृता च भूमिर्भवति। मृतावासः अशुभाय भवति।।९९-१००।।

अन्य प्रकार से प्रश्न के द्वारा जीवितादि भूमि का ज्ञान—भूमि के नामाक्षर संख्या को८ से गुण करके तिथि और वार की संख्या को उसमें जोड़कर ३ का भाग देने से १ शेष हो तो जीवित, २ शेष हो तो सम और ३ शेष हो तो मृत भूमि समझें। मृत भूमि पर मकान बनाना अशुभ होता है।।९९-१००।।

प्रकारान्तरेण

यत्र वृक्षाः प्ररोहन्ति सस्यं हर्षात्प्रवर्द्धते।
सा भूमिर्जीविता वाच्या मृता चातोऽन्यथा भवेत् ॥१०१॥

संस्कृतभावार्थः—वृक्षारोहवती सस्यसम्पन्ना च भूमिः जीविता, एतल्लक्षणहीना च मृता भवति।।१०१।।

अन्य प्रकार से भूमि लक्षण—जिस भूमि पर वृक्ष उगे हों, फसल दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हो, उस भूमि को जीवित कहते हैं। इसके अतिरिक्त मृत भूमि होती है।।१०१।।

भूमेः खननाधिकारः

स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण वा।
हस्तमात्रं खनेद् भूमिं नृणां प्रोक्तं पुरातनैः ॥१०२॥
जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा।
क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत् ॥१०३॥

संस्कृतभावार्थः—स्वामिहस्तप्रमाणेन पत्नीहस्तमानेन जलान्तं प्रस्तरान्तं पुरुषान्तं वा भूमिं निखाय शल्योद्धारादिना शोधनं कृत्वा तत्र निर्माणमारब्धव्यम्।।१०२-१०३।।

भूमि के खनन का अधिकार—स्वामी के हाथ से अथवा प्रधानपत्नी के हाथ से एक हाथ गहरी भूमि को खोदकर परीक्षा करे या जल निकलने तक, या पत्थर निकलने तक या एक पुरुष के प्रमाण की गहराई तक भूमि को खोदकर उसका शोधन कर शल्य निकालकर गृह निर्माण प्रारम्भ करे।।१०२-१०३।।

रामदैवज्ञमते खातविधिः

देवालये गेहविधौ जलाशये
राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः ।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते
मुखात् पृष्ठविदिक् शुभाभवेत् ॥१०४॥

संस्कृतभावार्थः—देवालयनिर्माणे मीने-मेषे-वृषे वा स्थिते सूर्ये ऐशानकोणभागे मिथुने कर्के सिंहे वा स्थिते सूर्ये वायव्यकोणे, कन्यायां तुलायां वृश्चिके वा स्थिते सूर्ये, नैर्ऋत्यकोणे धनुषि मकरे कुम्भे वा स्थिते सूर्ये अग्निकोणे राहोः मुखं भवति।

गृहनिर्माणविधौ सिंह-कन्या-तुलान्यतमस्थे रवौ ईशानदिग्भागे वृश्चिकधनुर्मकरान्यतमकोणस्थे तस्मिन् वायव्ये कुम्भमीनमेषान्यतमस्थे सूर्ये नैर्ऋत्ये वृष-मिथुन-कर्कस्थे च तस्मिन् अग्निकोण राहुमुखं भवति।

जलाशयनिर्माणविधौ मकर-कुम्भ-मीनान्यतमस्थे अर्के ईशानकोणे मेष-वृष-मिथुनान्यतमस्थे तस्मिन् वायव्ये कर्क-सिंह-कन्यान्यतमस्थे सूर्ये नैर्ऋत्ये तुला-वृश्चिक-धनुरन्यतमस्थे तस्मिन् अग्निकोणे राहुमुखं भवति।

राहुमुखात् पृष्ठभागे भुमिं विशोध्य खननं कर्तव्यम्। यथा ऐशाने राहुमुखस्य सत्त्वे आग्नेये खननं कर्तव्यम्। इदानींतनीचयमेव परिपाटी लोकप्रसिद्धा।।१०४।।

रामदैवज्ञ के मत से खात (खड्डा खोदना) की विधि—देवमन्दिर के निर्माण में मीन से ३ राशि के सूर्य हों तो ईशान कोण में, मिथुन से ३ राशि में वायव्य कोण में, कन्या से ३ राशि में नैर्ऋत्य कोण में और धनु से ३ राशि में अग्निकोण में राहु का मुख रहता है।

गृहनिर्माण में सिंह से ३ राशि में ईशान-कोण में, वृश्चिक से ३ राशि में वायव्य कोण में, कुम्भ से ३ राशि में नैर्ऋत्य कोण में और वृष से ३ राशि में अग्नि कोण में राहुमुख रहता है।

जलाशय-निर्माण में मकर से ३ राशि में, ईशान कोण में मेष से ३ राशि में, वायव्य कोण में कर्क से ३ राशि में नैर्ऋत्य कोण में और तुला से ३ राशि में अग्निकोण में राहु का मुख रहता है। अतः मुख से पिछले कोण में खात (भूमि शोधन के लिये गड्ढा) शुभ होता है।।१०४।।

वृषार्कादित्रिकं वेद्यां सिंहादिं गणयेद् गृहे ।
देवालये च मीनादिं तडागे मकरादिकम् ॥१०५॥

संस्कृतभावार्थः—गर्गाचार्यमतेन वेद्यां वृषार्कतः त्रिषु राशिषु, गृहे सिंहार्कात् देवालये मीनार्कात् त्रिषु, जलाशये च मकरार्कात् त्रिषु राशिषु राहुमुखं भवति।।१०५।।

गर्गाचार्य के मत से राहुमुख का ज्ञान—गर्गाचार्य के मत से वेदी में वृषार्क से ३ राशि, गृह में सिंह के सूर्य से ३ राशि, देवालय में मीन के सूर्य से ३ राशि, तडाग आदि में मकर के सूर्य से ३ राशियों में राहु का मुख होता है।।१०५।।

विश्वकर्मप्रकाशे भूमिसंशोधनप्रकारः

खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा,
हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजोवर्द्धने ।
तत्कृत्वा जलपूर्णमाऽऽशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुनः
पादोनाऽर्द्धविहीनकेऽथनिभृते मध्याधमेष्टाम्बुभिः ॥१०६॥
निखनेद्धस्तमात्रेण पुनस्तेनैव पूरयेत् ।
पांशुनाधिकमध्योनश्रेष्ठमध्याधमाः क्रमात् ॥१०७॥

संस्कृतभावार्थः—भूमिपरीक्षणाय भूस्वामी तत्पत्नी वा स्वहस्तप्रमाणेन एकव्यामविस्तारगम्भीरं गर्तं निखाय तत्र जलं पूरयेत्। ततः शतं पदानि दूरं गत्वा पुनस्तत्रैव प्रत्यावृत्य दर्शने यदि गर्तः पूर्णं चेत् उत्तमफलं, किञ्चिन्यूनं मध्यमफलं, अर्धांशान्यूने तु अशुभफलं भवेदिति ज्ञातव्यम् अथवा तयैव खाताय मृदापि स गर्तः पूरयितुं शक्यः। तदा पुनः गर्तपूरणे मृत् यदि शिष्यते तदा उत्तमं, न शिष्यते चेत् मध्यमं पूरणे मृत् न्यूना भवति चेत् अशुभं फलं भवति।।१०६-१०७।।

विश्वकर्मप्रकाश के अनुसार भूमिसंशोधनप्रकार—भूमि-परीक्षण के समय भूस्वामी या उसकी प्रधानपत्नी के हाथ से एक-एक हाथ लम्बा, चौड़ा, गहरा गड्ढा खोदकर उसको पानी से भर दें। तत्पश्चात् उससे १०० कदम दूर जाकर उस भूमि के पास लौट आयें फिर परीक्षा करें यदि गर्त भरा हो तो उत्तम, चौथाई जल सूख जाय तो मध्यम, आधे से भी कम रहे तो अधम समझें।।१०६।।

अथवा उसी मिट्टी से उस गड्ढे को भरे। यदि मिट्टी बच जाय तो उत्तम, बराबर हो तो मध्यम, घट जाय तो अधम समझें।।१०७।।

वास्तुरत्ने भूमिसंशोधनप्रकारः

कर्तुश्च हस्तप्रमितं खनित्वा
खातं पयोभिः परिपूरितं चेत् ।
वसेत्सुतार्थी परिपूरितंस्याच्छुष्के
भवेत् तत्क्षणमेव नाशः ॥१०८॥
स्थिरे जले वै स्थिरता गृहस्य
स्याद्दक्षिणावर्त्तजलेन सौख्यम् ।
क्षिप्रं जलं शोषयतीह खातो
मृत्युर्हि वामेन जलेन कर्तुः ॥१०९॥

अथवा सर्वधान्यानि वापयेच्च समन्ततः ।
यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥११०॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्वामिनः हस्तप्रमाणेन निखाते गते जलं प्रपूर्य दर्शने यदि गर्तः पूर्णः दृश्यते तदा शुभं सद्यः शोषे अशुभं जलपूरणे स्थिरतायां गृहस्यापि स्थैर्यं फलं भवति। जलं दक्षिणतः आवृत्ते सुखं, वामतः मृत्युं च करोति। यत्र च निवासेच्छा भवति तस्यां भूमौ सर्वधान्यानि एकत्रैव रोपणीयानि। अंकुरानुत्पत्तौ सा भूः त्याज्या भवति।।१०८-११०।।

वास्तुरत्न के अनुसार भूमिसंशोधन प्रकार—गृहपति के हाथ भर गहरी खोदी गयी भूमि को जल से भरें यदि जल भरा रह जाय तो शुभ, तत्काल सूख जाय तो अशुभ और जल भरते समय स्थिर रहे तो गृह की स्थिरता। पानी दक्षिण की ओर घूमे तो सुख, बायीं ओर घूमे तो मृत्युदायक होता है। अथवा जिस भूमि पर निवास करने की इच्छा हो उस पर सभी अन्नों को एक साथ बोयें, जहाँ अंकुर न उगें तो उस स्थान को निवास योग्य न समझे, अतः उसे छोड़ दे।।१०८-११०।।

नारायणभट्टमते विचारः

श्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत् ।
प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यं त्वसत्स्फाटितम् ॥१११॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यास्तवेलायां एकहस्तप्रमाणेन समव्यामविस्तारगम्भीरं गर्तं खात्वा जलं प्रपूर्य प्रातः दर्शने जलशेषे उत्तमं, जलहीनं मध्यमं, स्फोटे च दृष्टे अशुभं फलं भवति।।१११।।

नारायण भट्ट के मत से भूमिपरीक्षा—सूर्यास्त के समय १ हाथ लम्बा-चौड़ा, गहरा गड्ढा खोदकर उसको पानी से भर दें यदि प्रातःकाल तक उसमें जल रह जाय तो शुभ, नहीं रहे तो मध्यम, दरारें पड़ी हों तो अशुभ होता है।।१११।।

खातमध्ये पाषाणादिप्राप्तिफलम्

खन्यमाने यदा भूमौ पाषाणं प्राप्यते तदा ।
धनायुश्चिरता वै स्यादिष्टकासु धनागमः ॥११२॥
कपालाङ्गारकेशादौ व्याधिना पीडितो भवेत् ।

संस्कृतभावार्थः—भूखनने पाषाणलाभे धनम् आयुः वर्धते, इष्टकालाभे धनलाभः भवति। कपालास्थिकेशाङ्गारलाभे रोगः पीडा वा भवति।।११२।।

खात के समय पाषाण आदि प्राप्ति का फल—भूमि खोदने पर यदि वहाँ पत्थर मिल जाय तो धन एवं आयु की वृद्धि होती है, यदि ईंट मिले तो धनागम, कपाल, हड्डी, कोयला, केश आदि से रोग-पीड़ा होती है।।११२।।

खाते यदाश्मा लभते हिरण्यं
तथेष्टकायां च समृद्धिरत्र ।
द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते
ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ॥११३॥

संस्कृतभावार्थः—तस्मिन् गर्ते पाषाणप्राप्तौ स्वर्णलाभः, इष्टकालाभे समृद्धिः, ताम्रादिधातुप्राप्तौ सर्वविधं सुखं च भवति।।११३।।

यदि गड्ढे में से पत्थर मिले तो सुवर्ण लाभ, ईंट से समृद्धि, द्रव्य से सुख और ताम्रादि धातु से सब प्रकार की वृद्धि होती है।।११३।।

पिपीलिकाषोडशपक्षनिद्रा
भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता ।
तुषास्थिचीराणि तथैव भस्मा-
न्यण्डानि सर्पा मरणप्रदाः स्युः ॥११४॥
वराटिका दुःखकलिप्रदात्री
कार्पास एवाति ददाति दुःखम् ।
काष्ठं प्रदग्धं त्वतिरोगभीतिर्भ-
वेत्कलिः खर्परदर्शनेन ॥११५॥
लोहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं
विचार्य वास्तु प्रदिशन्ति धीराः ।

संस्कृतभावार्थः—भूखनने वल्मीकाजगिलादिदर्शने तत्र भूमौ निवासो न कार्यः वस्त्रास्थितुषभस्माण्डसरीसृपेषु दृष्टेषु स्वामी मृत्युं प्राप्नुयात्। वराटिकादर्शने दुःखं कलहश्च भवेत्, कार्पासं च कष्टदं भवति। दग्धकाष्ठदर्शने रोगः, कपालदृष्टौ कलहः, लोहदृष्टौ स्वामिमृत्युश्च भवति। अतः दुष्प्रभावपरिहाराय सर्वे इमे विषयाः द्रष्टव्याः।

भूमि खोदने पर चींटी (दीमक), अजगर निकलें तो उस भूमि पर निवास न करे, भूसा, हड्डी, वस्त्र, भस्म, अण्डे, साँप निकलें तो गृहकर्ता की मृत्यु हो, कौड़ी निकले तो दुःख और झगड़ा होता है, रुई विशेष दुःख देती है, जली हुई लकड़ी निकले तो रोगकारक होती है, खप्पर से कलह, लोहे से गृहपति की मृत्यु होती है। अतः गृह निर्माण के पूर्व इन सबका भली भाँति विचार कर लेना चाहिये।।११४-११५।।

वास्तुराजवल्लभे भूमिपूजाविधिः

परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं समर्चयेच्चण्डिकया समेतम् ॥११६॥
क्षेत्राधिपं चाष्टदिगीशदेवान् पुष्पैश्च धूपैर्बलिभिः सुखाय ।

संस्कृतभावार्थः—उक्तप्रकारेण भूमिं परीक्ष्य गणेशम् अम्बिकां क्षेत्रपालम् अष्टदिक्पालान् पुष्पधूपबलिभिः पूजयेत्।।११६।।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार भूमि की पूजनविधि—उक्त प्रकार से भूमि की परीक्षा करके श्रीगणेश तथा भगवती दुर्गा की पूजा करके क्षेत्रपाल तथा आठों दिक्पालों की फल, धूप, बलि आदि से पूजा करनी चाहिये।।११६।।

पिण्डाद् बहिरन्तर्वा भित्तिः कर्तव्येति विचारः

पाषाणे सर्वतो बाह्यमिष्टकायां तदर्द्धकम् ॥११७॥
मृत्तिकायां पिण्डमात्रमित्युक्तं रुद्रयामले।
पाषाणीभित्तिका ग्राह्या सर्वदा कारिकामते ॥११८॥

संस्कृतभावार्थः—सर्वदा पाषाणभित्तिः प्रशंसनीयं भवति। पाषाणस्य स्थिरता इष्टिका-मृत्तिकाभित्तिर्वा अपेक्षया दीर्घकालिकं भवति।।११७-११८।।

पिण्ड के भीतर व बाहर दीवार बनाने का विधान—पत्थर की दीवाल हो तो पिण्ड से बाहर, ईंट की हो तो पिण्ड से आधी दीवाल भीतर आधी बाहर, मिट्टी की हो तो सम्पूर्ण दीवाल पिण्ड से भीतर हो। कारिका के मत से पत्थर की दीवाल ही सर्वश्रेष्ठ (चिर-स्थिर) होती है।।११७-११८।।

नारायणभट्टमते भित्तिविचारः

ज्ञात्वैवं निखनेद् गृहाधिकभुवं नत्वा जलान्तस्तरो-
र्यावद्वापुरुषस्ततः कपिशिरस्तुल्याश्मभिः पूरयेत् ॥११

संस्कृतभावार्थः—उक्तप्रकारेण शुभां भूमिं निर्णीय तां प्रणम्य आपिण्डलि समीपस्थवृक्षदहनं पुरुषान्तं वा खातं कृत्वा तत्र अल्पैः अश्मभिः पूरणं कुर्यात्।।११९।।

नारायण भट्ट के मत से भित्ति का विचार—उक्त प्रकार से शुभ भूमि का निर्णय करके भूमि को प्रणाम करके पिण्ड से बाहर जल पर्यन्त या समीप में स्थित वृक्ष के बराबर अथवा एक पुरुष गहरी पृथ्वी खोदकर उसको छोटे-छोटे पत्थरों से भर दे।।११९।।

गृहनिर्माणार्थमिष्टकाविचारः

विजया मङ्गला चैव निर्मला सुखदेति च।
चतुर्द्धा चेष्टकाः प्रोक्ता गृहे च वरुणालये ॥१२०॥
तिथ्यङ्गुलानि विजया मङ्गला सप्तचन्द्रकैः।
पक्षेन्दुभिर्निर्मलास्यात् सुखदा रामपक्षभिः ॥१२१॥
प्रमाणमिष्टकायाश्च गर्गाद्यैर्मुनिभिः स्मृतः।

संस्कृतभावार्थः—विजया मङ्गला निर्मला सुखदा च चतुर्विधापि इष्टका गृहजलाशय-निर्माणे शुभावहा भवति। तत्र पञ्चदशाङ्गुलमिता विजया, १७ अङ्गुलमिता मङ्गला, १२ अङ्गुलमिता निर्मला, २३ अङ्गुलमिता सुखदा च भवतीति गर्गादिमुनीनां मतम्।

गृहनिर्माण में ईंटों का विचार—विजया, मङ्गला, निर्मला, सुखदा ये चार प्रकार की ईंटें गृह तथा जलाशय के लिये कही गयी हैं। अब इनके प्रमाण कहे जाते हैं—१५ अंगुल विजया, १७ अंगुल मंगला, १२ अंगुल निर्मला, २३ अंगुल सुखदा का प्रमाण गर्गादि मुनियों के मत से है।।१२०-१२१।।

इष्टकाचक्रम्

पञ्चत्रीणि त्रिकं पञ्च सप्त पञ्चावनीयभात्।
सौख्यं मृत्यु क्रमेणैव इष्टकारम्भकर्मसु ॥१२२॥

संस्कृतभावार्थः—मङ्गलनक्षत्रात् इष्टकान्यासाहनक्षत्रपर्यन्तं क्रमेण सौख्यं मृत्युश्च फलं भवति।

मङ्गल के नक्षत्र से गणना करने पर इष्टिकाचक्र—मंगल के नक्षत्र से ईंट रखने के दिननक्षत्र तक का फल निम्न प्रकार है—

मंगल के नक्षत्र से गणना फल	५	३	३	५	७	५
	सौख्य	मृत्यु	मृत्यु	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु

इष्टकोपरि वह्निदीपनचक्रम्

सप्तपञ्चमुनिवेदपञ्चभिः शोकलाभरुजभीतिभीसुखम्।
भौमभाच्च गणयेत्सुधीः सदा इष्टकोपरि सुवह्निदीपनम् ॥१२३॥

संस्कृतभावार्थः—मङ्गलनक्षत्रादग्निदीपननक्षत्रपर्यन्तं विचार्य चक्रानुसारं फलमादिशेत्।

ईंट के ऊपर अग्निदीपक रखने का चक्र—मंगल के नक्षत्र से अग्निदीपन नक्षत्र तक का विचार चक्र में देखें—

मंगल के नक्षत्र से गणना फल	७	५	७	४	५
	शोक	लाभ	रोग	भय	सुख

शिलान्यासविधिः

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमम्।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भांश्चैव प्रतिस्थाप्याः ॥१२४॥

संस्कृतभावार्थः—पूजितकोणं विधिवत् प्रपूज्य आग्नेयकोणे शिलां न्यस्य प्रदक्षिण-क्रमेण शेषं स्थापयेत्।।१२४।।

शिलान्यास की विधि—कोण की विधिवत् पूजा करके पूर्व दक्षिण के कोण (अग्निकोण) में प्रथम शिलान्यास करके शेष प्रदक्षिणक्रम से स्थापना करे।।१२४।।

शार्ङ्गधरमते स्तम्भस्थापनम्

प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा ।
आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भं स्थापयेत्तद्विधानतः ॥१२५॥

संस्कृतभावार्थः—प्रसाद-हर्म्य-सामान्यगृहेषु सदा अग्निकोणे एव विधिवत् स्तम्भस्थापनं भवेत्।।१२५।।

शार्ङ्गधर के मत से स्थम्भस्थापन—प्रासाद (राजमहल), धनिकों के गृह (हर्म्य) तथा सामान्य गृहों में भी सदैव अग्नि कोण में ही विधिपूर्वक स्तम्भ का स्थापन करना चाहिये।।१२५।।

सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तम्भस्यारोपणं तथा ।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः ॥१२६॥

संस्कृतभावार्थः—कश्यपमतेन सूत्रभित्तिः शिलान्यासः प्रथमस्तम्भस्थापनं च आग्नेये भवेत्।।१२६।।

कश्यप के मत से स्थम्भ स्थापन—महर्षि कश्यप के मत से सूत्रभिति, शिलान्यास तथा प्रथम स्तम्भ स्थापन पूर्व-दक्षिण के मध्य (अग्निकोण) में ही करना चाहिये।।१२६।।

स्तम्भोच्छ्रायविधिः

छत्रस्रगम्बरयुतः कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः ।
स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन ॥१२७॥

संस्कृतभावार्थः—छत्रमालावस्त्रधूपादिभिः विधिना प्रपूज्य स्तम्भः उत्थापनीयः। इत्थमेव शुभद्रव्यैः विधिवत् प्रपूज्य द्वारस्थापना कार्या।।१२७।।

स्तम्भ को उठाने की विधि—छत्र, माला, वस्त्र, धूप आदि से पूजन कर स्तम्भ को उठाना चाहिये, इसी प्रकार धूप-दीप आदि से पूजा करके द्वार की भी स्थापना करे।।१२७।।

नूतनगृहे निषिद्धकाष्ठानि

अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मित् प्रयोजयेत् ।
न तत्र निवसेत्कर्ता वसन्नपि न जीवति ॥१२८॥

संस्कृतभावार्थः—परगृहकाष्ठस्य नवीनगृहे उपयोगः स्वामिनः मृत्युकरः अतः परकाष्ठं वर्जयेत्।।१२८।।

नूतन घर में निषिद्ध काष्ठ (लकड़ियां)—दूसरे के घर में लगे हुए काष्ठ को नवीन घर में नहीं लगाना चाहिये, यदि लगाया भी जाय तो उसमें निवास न करे; क्योंकि निवास करने से गृहपति की मृत्यु होती है।।१२८।।

इष्टका-लोष्ठ-पाषाण-मृत्तिका जीर्णमायसम् ।
तृणं पत्रं बुधैः प्रोक्तं दारु नूत्नं गृहाय वै ॥१२९॥

संस्कृतभावार्थः—समराङ्गणानुसारं इष्टका-मृत-पाषाण-लोहादिप्राचीनवस्तूनि नूतन-गृहनिर्माणे न प्रयोक्तव्यानि।।१२९।।

समराङ्गण के अनुसार पुराने उपकरणों का नूतन गृह में निषेध—समराङ्गण के अनुसार ईंट, मिट्टी, पत्थर, लोहा आदि पुराने उपकरण नवीन मकान के लिये उपयोग में नहीं लाने चाहिये।।१२९।।

वास्तुशास्त्रे ग्राह्यकाष्ठानि

श्रीपर्णी रोहिणी शाकः सर्जश्च सरलाः शुभाः ।
पतङ्गलोध्रशालाख्यास्तालार्जुनकशिंशपाः ॥१३०॥
चन्दनाशोकबदरीमधूकाश्च कदम्बकाः ।
प्रशस्ताश्च शमी निम्बो विल्ववर्ज्यं गृहान्तिके ॥१३१॥
गृहे दारुगुणैर्युक्ते गृहकर्माणि युज्यते ।
गृहे काष्ठं समं श्रेष्ठमलिन्दे विषमं शुभम् ॥१३२॥

संस्कृतभावार्थः—श्रीपर्णी, रोहिणी, शाकः, सर्जः, सरलः, पतङ्गः, लोधः, शालः, तालः, अर्जुनः, शिंशपा, चन्दनः, अशोकः, बदरी, मधूकः, कदम्बः इत्येते वृक्षाः गृहनिर्माणाय शुभाः। गृहस्य समीपे शिंशपा, निम्बः, बदरीवृक्षाः न स्थापयितव्याः। गुणवत्काष्ठमेव उपयुञ्जीत। गृहे समं अलिन्दद्वारयोः विषमं काष्ठं शुभं भवति।

वास्तुशास्त्र में ग्राह्य काष्ठ—गम्भार, कुटकी, शागौन, सर्ज—इनके सीधे वृक्ष तथा पतंग, लोध, शाल, ताल, अर्जुन (कोह) शीशम, चन्दन, अशोक, बेर, महुआ और कदम्ब—इनके काष्ठ गृहनिर्माण के लिये शुभ होते हैं। घर के समीप में शमी, नीम और बेल के वृक्षों को न लगायें। गुणयुक्त काष्ठ गृह निर्माण योग्य होता है। गृह में सम और अलिन्द (दरवाजे के चौक) में विषम धरनें शुभ होती हैं।।१३०-१३२।।

नारदमते त्याज्यकाष्ठानि

प्लक्षोदुम्बरचूताख्या निम्बस्नुहिबिभीतकाः ।
दग्धाः कण्टकिनो वृक्षा वटाश्वत्थकपित्थकाः ॥१३३॥
अगस्तशिग्रुतालाख्यास्तिन्तिडीकाश्च निन्दिताः ।
अन्ये च गृहनिर्माणे योजनीयाः समाः द्रुमाः ॥१३४॥

संस्कृतभावार्थः—प्लक्षोदुम्बराम्रनिम्बस्नुहिबिभीतकवटाश्वत्थकपित्थागस्त्यशिग्रुताल-तिन्त्रिणीवृक्षोद्भवाः दग्धाः सकण्टकाः च काष्ठविशेषाः गृहनिर्माणे त्याज्याः। अन्ये च विहिताः समसंख्यातः उपयोक्तव्याः।।१३३-१३४।।

नारद के मत से त्याज्य काष्ठ—पाकर, गूलर, आम, नीम, सेहुड़, बहेड़ा, जले हुए काष्ठ, काँटे वाले वृक्ष, बरगद, पीपल, कैथ, अगस्त, सहजन, ताड़ और इमली इन वृक्षों का काष्ठ गृहनिर्माण में निन्दनीय है। इनके अतिरिक्त सम संख्या वाले काष्ठ (धरनें) गृहनिर्माण के योग्य होते हैं।।१३३-१३४।।

पितृवनमार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः ।
चैत्यसरित्संगमसंभवाश्च घटतोयसिक्ताश्च ॥१३५॥
कुब्जानुजातवल्ली निपीडिता वज्रमारुतोपहताः ।
श्वपतिहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः ॥१३६॥
तरवो वर्जयितव्याः शुभदाःस्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः ।
सुरदारुचन्दनसमामधूकतरवः शुभाद्विजातीनाम् ॥१३७॥
क्षत्रस्यारिष्टास्त्वश्वत्थखदिरविल्वादिवृद्धिकराः ।
वैश्यानां जीवकखदिरसिन्दुकस्यन्दनाश्च शुभफलदाः ॥१३८॥
तिन्दुककेसरसर्जार्जुनोत्थशालाश्च शूद्राणाम् ।
सर्वेषां वा शस्ताः सर्वे वृक्षाश्च निन्दिता ये न ॥१३९॥

संस्कृतभावार्थः—वराहमिहिरमतेन श्मशानमार्गमन्दिरवल्मीकवत् उद्यानस्थातापसाश्रमस्थचैत्यनदीसङ्गमोद्भवघटजलसिक्तवन्यलतावेष्टितविधुत्वात्याहतस्वयंपतितहस्तिपातितशुष्कदग्धमधुच्छत्रवत् वृक्षाणां काष्ठोपयोगः वर्जनीयः। चिक्कणपत्रपुष्पवन्तं वृक्षं गृहे रोपयेत्। विप्राणां देवदारुः, चन्दनः, मधूकः; क्षत्राणां निम्बः अश्वत्थः खादिरः बदरी च; विशां विजयसारः, खादिरः, सिन्दुकः, स्यन्दनः; शूद्राणां च तिन्दुक-नागकेसर-सर्ज-अर्जुनवृक्षाः शुभावहाः।।१३५-१३९।।

वराहमिहिर के अनुसार शुभ एवं अशुभ वृक्ष—वराहमिहिर के अनुसार श्मशान, रास्ता, देवमन्दिर, दीमक वाला स्थान, बगीचे के वृक्ष, तपस्वियों के आश्रम के वृक्ष, डीह, नदी-संगम पर उत्पन्न, घड़े के जल से सींचे हुए, जंगली लताओं से लपेटे हुए, बिजली और आँधी से आहत, स्वयं गिरे हुए, हाथी से गिराये हुए, सूखे, जले, मधुमक्खियों के छाते से युक्त वृक्षों के काष्ठ को घर में न लगायें। चिकने पत्तों और फूलों वाले वृक्ष घर में लगायें; ब्राह्मणों को देवदारु, चन्दन और महुआ; क्षत्रियों को नीम, पीपल, खैर और बेल; वैश्यों को विजयसार, खैर, मेवड़ी, तिनिस वृक्षों की लकड़ियाँ शुभ होती हैं। शूद्रों के लिये तिन्दुक नागकेसर, सर्ज और अर्जुन वृक्ष घर में लगाना शुभ है। अथवा ऊपर कहे गये शुभ वृक्ष सभी वर्णों के लिये शुभ और अशुभ वृक्ष सब के लिये अशुभ होते हैं।।१३५-१३९।।

वृक्षच्छेदनमुहूर्ताः

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रेवतीरोहिणीयुते ।
यदा तदा गुरौ लग्ने गृहार्थं तु हरेद्द्रुमान् ॥१४०॥

शुक्रे लग्ने गुरौ केन्द्रेष्वगेराशौ गृहोपरि ।
तृणादिभिः समाच्छाद्यो न चैवाग्निभयं भवेत् ॥१४१॥

संस्कृतभावार्थः—कृष्णचतुर्दशी रोहिण्यां रेवत्यां वा गुरुलग्नयुता चेत् तत्समये गृहाय द्रुमः हर्तव्यः। शुक्रलग्ने गुरौ केन्द्रगे स्थिरराशिस्थे च सति एकत्रिताः तृणकाष्ठादयः गृहाच्छादनायोपयुज्यन्ते चेत् अग्निभयं न स्यात्।।१४०-१४१।।

वृक्षछेदन का मुहूर्त—कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि, रोहिणी तथा रेवती नक्षत्र में जब गुरु लग्न में हो उसी समय गृह निर्माण के लिये पेड़ काटना चाहिये। अथवा शुक्र लग्न में और गुरु केन्द्र में होकर स्थिर राशि में स्थित हो इस अवसर पर इकट्ठा किये हुए काष्ठ आदि से गृहाच्छादन करने पर अग्नि भय नहीं होता है।

वृक्षच्छेदने भूतादिप्रार्थना

यानीह भूतानि वसन्ति तानि
बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु
क्षमन्तु ते चाद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥१४२॥

संस्कृतभावार्थः—'यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्। अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु ते चाद्य नमोऽस्तु तेभ्यः।' इत्युच्चार्य वृक्षं हरेत्।।१४२।।

वृक्ष काटने के पहले प्रार्थना—जो प्राणी इस वृक्ष में निवास करते हैं, वे मेरे द्वारा दी गयी बलि को ग्रहण कर अन्यत्र निवास करें, उनके लिये नमस्कार है। वे मुझे क्षमा करें, मैं इस वृक्ष को काट रहा हूँ।।१४२।।

खाते निक्षेपवस्तूनि

मृदिष्टका-स्वर्ण-रत्न-धान्य-शैवालसंयुतम ।
ताम्रपात्रस्थितं सर्वं खातमध्ये नियोजयेत् ॥१४३॥

संस्कृतभावार्थः—ताम्रपात्रे कलशे वा मृदं स्वर्णं इष्टकां पञ्चरत्नं, सप्तधान्यं, शैवालं च खातमध्ये नियोज्य ततश्च मृण्मयं पाषाणमयं वा स्तम्भं कल्पयेत्।।१४३।।

खात अथवा खड्डे में डालने योग्य वस्तुयें—ताँबे के बर्तन में मिट्टी, सोना, ईंट, पञ्चरत्न, सप्तधान्य, सेवार रखकर नींव में रखे। फिर जिस (मिट्टी, ईंट, पत्थर) की दीवाल बनानी हो उसको ऊपर रखें।।१४३।।

वास्तुकृत्यम्

ध्रुवं दृष्ट्वाथवा स्मृत्वा कर्तव्यं वास्तुरोपणम् ।
सूर्यारवर्ज्यदिवस रात्रौ त्यक्त्वा महानिशाम् ॥१४४॥

मध्याह्ने तु कृतं यत्तु वास्तुकर्तुर्विनाशदम्।
निशीथे वाऽथवा सन्ध्योर्वास्तु वा नैव कारयेत्॥१४५॥

संस्कृतभावार्थः—ध्रुवनक्षत्रं सूर्यं वा दृष्ट्वा स्मृत्वा वा वास्तुरोपणं कार्यम्। रविदिने, मङ्गलवासरे महारात्रौ मध्याह्ने च वास्तुरोपः न कार्यः। मध्याह्ने कृतः कर्तारं नाशयेत्। मध्यरात्रौ सन्ध्यायाञ्चापि न कार्यः।।१४४-१४५।।

वास्तु का समय—ध्रुव तारा को देखकर या स्मरण करके नींव रखें, रविवार, मंगलवार, महानिशा, मध्याह्न इन समयों को छोड़ दें। मध्याह्न में नींव रखने से कर्ता का नाश होता है। मध्यरात्रि और सन्ध्याकाल में भी नींव न रखें।।१४४-१४५।।

वराहमिहिरमते स्तम्भादिनामानि

समचतुरस्रो रुचको वज्रोऽष्टाभिर्द्विवज्रको द्विगुणः।
द्वात्रिंशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्तः॥१४६॥

संस्कृतभावार्थः—चतुरस्रकोणः स्तम्भः रुचकस्तम्भः अष्टकोणः वज्रस्तम्भ, षोडशकोणः द्विवज्रः, द्वाविंशतिकोणः प्रलीनकः वृत्ताकारश्च वृत्तस्तम्भः इति उच्यते।

वराहमिहिर के मत से स्तम्भों के नाम—जिस स्तम्भ के चार कोण समान हों उसे 'रुचक, जिसके आठ कोण समान हों उसे 'वज्र', जिसके सोलह कोण सामान हों उसे 'द्विवज्र', जिसके बत्तीस कोण समान हों उसे 'प्रलीनक' और जिसके मध्य में वृत्ताकार हो उसे 'वृत्त' कहते हैं।।१४६।।

वराहमिहिरमते गृहोच्चतामानम्

विस्तारषोडशांशः स चतुर्हस्तो भवेद् गृहोच्छ्रायः।
द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समन्तानाम्॥१४७॥

संस्कृतभावार्थः—विस्तारषोडशांशः चतुर्हस्तयुक्तः गृहोच्छ्रायः भवेत्। तत च प्रथमखण्डतः द्वादशांशं न्यूनीकृत्य द्वितीयखण्डं निर्मातव्यम्।।१४७।।

वरामिहिर के मत से गृह की ऊँचाई का प्रमाण—विस्तार के १६ वें अंश में ४ हाथ मिलाकर पहले खण्ड की ऊँचाई पहले खण्ड की ऊँचाई में से १२ वाँ हिस्सा घटाकर बनाना चाहिये, इसके ऊपर क्रमशः इसी प्रकार बनायें। यह क्रम दो मंजिल आदि के लिये है।।१४७।।

व्यासात् षोडशभागः सर्वेषां सद्मनां भवति भित्तिः।
पक्वेष्टकाकृतानां दारुकृतानान्तु न विकल्पः॥१४८॥

संस्कृतभावार्थः—पक्वेष्टकाभिर्निर्माणे षोडशांशमिता भित्तिः कल्पनीया। दारवगृहे नैतादृशो विकल्पः।।१४८।।

पक्की ईंट के घर में दीवार का प्रमाण—पक्के ईंट का घर बनाना हो तो विस्तार के सोलहवें भाग के बराबर उसकी दीवार करनी चाहिये। यह विचार लकड़ी के घर में नहीं होता।।१४८।।

पूर्वादिदिक्षु गृहोच्चनीचत्वफलम्

स्यादुन्नतिः पूर्वनते नराणां वास्तौ धनं दक्षिणभागतुङ्गे।
क्षयोधनानां विनते प्रतीच्यामुच्चैर्विनाशो ध्रुवमुत्तरे तु॥१४९॥
प्रागुत्तरोन्नते धनसुतक्षयः सुतवधश्च दुर्गन्धे।

संस्कृतभावार्थः—पूर्वप्रवणं गृहं उन्नतिदं, दक्षिणोच्चं धनदं, पश्चिमनतं धननाशकरं, उत्तरोच्चं गृहस्वामिनाशकं च भवति। बृहत्संहितामतेन पूर्वोत्तरोच्चं दुर्गन्धि च पुत्रनाशकरं भवति। अतः परितः गृहशुद्धिः भवेत्।।१४९।।

पूर्वादि दिशाओं में गृह के उच्च-नीच का फल—पूर्व दिशा की ओर झुका गृह उन्नतिदायक, दक्षिण भाग में ऊँचा गृह धन देता है, पश्चिम की ओर झुका हुआ धननाश करता है और उतर की ओर ऊँचा हो तो गृहपति का नाश करता है।

बृहत्संहिताकार के मत में—पूर्व, उत्तर में ऊँचा गृह पुत्रनाशक होता है। दुर्गन्ध-युक्त गृह पुत्रनाशक होता है। अतः चारो ओर समान गृह का निर्माण करावे।।१४९।।

दिक्परत्वेन गृहविभागाः

पूर्वस्यां श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां स्यान्महानसम्॥१५०॥
शयनं दक्षिणस्यां च नैर्ऋत्यामायुधाश्रयम्।
भोजनं पश्चिमायां च वायव्यां धनसञ्चयम्॥१५१॥
उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम्।
इन्द्राग्न्योर्मथनं मध्ये यमाग्न्योर्घृतमन्दिरम्॥१५२॥
यमराक्षसयोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम्।
राक्षसजलयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मन्दिरम्॥१५३॥
तोयेशानिलयोर्मध्ये रोदनस्य च मन्दिरम्।
कामोपभोगशमनं वायव्योत्तरयोर्गृहम्॥१५४॥
कौबेरेशानयोर्मध्ये चिकित्सामन्दिरं सदा।
पुरन्दरेशयोर्मध्ये सर्ववस्तुषु संग्रहम्॥१५५॥
सदनं कारयेदेवं क्रमादुक्तानि षोडश।

संस्कृतभावार्थः—पूर्वदिशि श्रीवासः आग्नेये महानसम्, दक्षिणभागे शयनगृहं, नैर्ऋत्ये शस्त्रागारः, पश्चिमे भोजनस्थानम्, वायव्ये धनम्, उत्तरे द्रव्यं, ईशानकोणे मन्दिरम्, पूर्वाग्नेयमध्ये घृतस्थानम्, दक्षिणनैर्ऋत्यमध्ये शौचस्थानम्, नैर्ऋत्यपश्चिममध्ये स्वाध्याय-

स्थानम्, पश्चिमे-वायव्यमध्ये कोपभवनम्, वायव्योत्तरमध्ये रतिगृहं, उत्तरैशानकोणमध्ये औषधिगृहं, ईशानकोणपूर्वमध्ये संग्रहं च कर्त्तव्यम्, एतत् क्रमात् षोडशगृहस्य विधानमासीत्।

दिशाओं के अनुसार घर के विभाग—पूर्व दिशा में लक्ष्मी का गृह, आग्नेयकोण में रसोईगृह, दक्षिण में शयनगृह, नैर्ऋत्यकोण में शस्त्रागार, पश्चिम में पाकशाला, वायव्यकोण में धनागार, उत्तर में द्रव्य स्थान, ईशानकोण में देवतागृह, पूर्व और अग्निकोण के बीच में दही मथने का गृह, दक्षिण और आग्नेयकोण में घी रखने का स्थान, दक्षिण और नैर्ऋत्यकोण के बीच में शौचालय, नैर्ऋत्यकोण और पश्चिम के बीच में स्वाध्यायगृह, पश्चिम और वायव्यकोण के बीच में कोपभवन, वायव्यकोण और उत्तर के बीच में रतिगृह, उत्तर और ईशानकोण के बीच में औषधगृह, ईशानकोण और पूर्व के बीच में समस्त वस्तुओं का संग्रह (भण्डार) गृह, इस प्रकार सोलह गृहों का विधान है।।१५०-१५५।।

विश्वकर्मप्रकाशे विशेषः

नैर्ऋत्यां सूतिकागेहं नृपाणो भूतिमिच्छताम् ॥१५६॥
आसन्नप्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषतः ।
तद्वत्प्रसवकाले स्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥१५७॥
मासे तु नवमे प्राप्ते पूर्वपक्षे शुभे दिने ।
प्रसूतिसम्भवे काले गृहारम्भणमिष्यते ॥१५८॥

संस्कृतभावार्थः—भूतिमिच्छता नैर्ऋत्यकोणे सूतिकागृहं प्रकल्पनीयम्। आसन्ने प्रसवे सूतिकागृहप्रकल्पनं सर्वत्र शास्त्रेषु दृश्यते। नवमे मासि शुक्लपक्षे शुभदिनं सूतिकागृहं व्यस्थापयेत्।।१५६-१५८।।

विश्वकर्मप्रकाश के अनुसार सूतिकागृह का निर्माण—ऐश्वर्य के इच्छुक राजा को चाहिये कि वह नैर्ऋत्यकोण में सूतिकागृह बनायें। जब प्रसवकाल समीप हो तदनुसार शास्त्रों में सूतिकागृह के निर्माण का विचार किया गया है। ९वें मास के आने पर शुक्ल पक्ष में शुभ दिन में सूतिकागृह का निर्माण कराना चाहिये।।१५६-१५८।।

भूमिशोधनाय सूत्रनिर्णयः

विप्रस्य दर्भजं सूत्रं मौञ्जन्तु क्षत्रियस्य च ।
कार्पासं च भवेद्वैश्ये शूद्रस्य स्वर्णकल्पितम् ॥१५९॥

संस्कृतभावार्थः—भूमिशोधने विप्राणां दर्भमयं सूत्रं, क्षत्रियाणां मौञ्जं, विशां कार्पासं, शूद्राणाञ्च सौवर्णं सूत्रं भवेत्।।१५९।।

भूमिशोधन में जातिविशेष का सूत्र—भूमि शोधन में ब्राह्मण के लिये कुशा का, क्षत्रिय के लिये मूंज का, वैश्य के लिये कपास का और शूद्र के लिये सोने का सूत्र बनाना चाहिये।।१५९।।

विश्वकर्मप्रकाशे सूत्रनिर्णयः

अथापरमपि ज्ञानङ्कथयामि समासतः ।
षड्गुणीकृतसूत्रेण शोधयेन्द्धरणीतले ॥१६०॥
सुधृते समये तस्मिन्सूत्रङ्केनापि लङ्घितम् ।
तदस्थि तत्र जानीयात्पुरुषस्य प्रमाणतः ॥१६१॥
अभ्यक्तो दृश्यते यस्यां दिशि शल्यं समादिशेत् ।
तस्यामेव तदस्थीनि सप्तत्यङ्गुलमानतः ॥१६२॥
सूत्रिते समये यत्र श्वा सूत्रोपरि संस्थितः ।
तदास्थि तत्र जानीयात् षष्ठ्यङ्गुलमितक्षितौ ॥१६३॥
उन्मादे चागते तस्मिन् समये यत्र संस्थितः ।
तदास्थि तत्र जानीयाद्धस्तद्वयमितक्षितौ ॥१६४॥
सूत्रे विसूत्रिते तस्मिन् भिन्ने कुम्भेऽथवा यदि ।
आदिशेन्निधनं तत्र दम्पत्योः क्रमशस्तदा ॥१६५॥

संस्कृतभावार्थः—इदानीं विषयस्य सम्बन्धे अन्यविचारस्य ज्ञानं करिष्यते। षडङ्गुलसूत्रेण भूमिः शोध्या। शोधनकाले सूत्रलंघने जाते तत्र नीचैः पुरुषप्रमाणतः अस्थिः भवेत्। अभ्यक्तदर्शने तद्दिशि सप्तत्यङ्गुलनीचतः शल्यं भवेत्। सूत्रोपरि श्वागमे षष्ठ्यङ्गुलतः नीचैः शल्यं भवेत्। मत्तागमे हस्तद्वयात् अधः शल्यं भवति। सूत्रत्रोटे घटस्फोटे वा स्त्रीपुरुषयोः मृत्युः स्यात्।।१६०-१६५।।

विश्वकर्मप्रकाश के अनुसार सूत्रनिर्णय—अब इस सम्बन्ध में अन्य प्रकार का विचार करते हैं, छः गुना सूत्र से भूमि संशोधन करना चाहिये। संशोधन के समय कोई उस सूत्र को लाँघ जाय तो वहाँ पर एक पुरुष प्रमाण नीचे शल्य समझें, अथवा उस समय उबटन जिस दिशा में दिखाई दे उस दिशा में शल्य सत्तर अंगुल नीचे समझे। अथवा उस समय सूत्र के ऊपर कुत्ता आ जाय तो ६० अंगुल गहरा शल्य समझे। यदि कोई पागल आदमी आ जाय तो दो हाथ गहरा शल्य उसी स्थान पर समझे। यदि उस समय सूत्र टूट जाय अथवा घड़ा फूट जाय तो स्त्री-पुरुष दोनों की मृत्यु होती है।।१६०-१६५।।

महाज्योतिर्निबन्धे शल्यनिष्कासनविधिः

स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नवचनस्याद्यमक्षरम् ।
गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ॥१६६॥

संस्कृतभावार्थः—इष्टदेवतां स्मृत्वा प्रश्नकर्तुः प्रश्नस्य आधारेण भूमिस्थानशल्यं विचारयेत्। तत्रादौ शल्यान्वेषणसमये ब्राह्मणत्रयद्वारा 'ओं धरिणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा, मन्त्रस्य सहस्रत्रयवारं जपं कृत्वा तत्पश्चात् गृहकर्तृहस्ताद्भूमिं स्पृष्ट्वा

गृहभूमिशुभाशुभज्ञानजं प्रश्नं वदेत्। तत्रादौ ब्राह्मणाद्याः वर्णाः पुष्पनदीदेवफलमिति ब्रुवन्ति। यत्र पुष्पाद्यक्षरं भवति तत्र शल्यं वदेत्। खननकाले नवधा भूमिं विभजेत्। यदि व-क-च-त-ण-ह-स-य-ज—एतान्यक्षराणि मुखादुद्गतानि तदा पूर्वादिदिक्षु शल्यमादिशेत्।

महाज्योतिर्निबन्ध के अनुसार शल्यनिष्कासन विधि—इष्टदेवता का स्मरण करके प्रश्नकर्ता के प्रश्न का पहला अक्षर लेकर भूमि में शल्य है या नहीं, इसका विचार करें।

शल्य निकालने की विधि—शल्य निकालते समय तीन ब्राह्मणों द्वारा 'ॐ धरणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा' इस मन्त्र से ३०००० = ३ – ९०००० जप कराये। इसके अन्त में गृहकर्ता द्वारा भूमि स्पर्श कराकर तब ब्राह्मण से किसी 'पुष्प', क्षत्रिय से किसी 'नदी', वैश्य से किसी देवता और शूद्र से किसी 'फल' का नाम लेने को कहें। इनके द्वारा कहे गये पुष्प आदि के आदि अक्षर व, क, च, त, ण, ह, स, य, ज के अनुसार फल का निर्देश करें।।१६६।।

व प्रश्ने पूर्वस्यां दिशि मनुजशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे मनुजमरणं कथयति।
क प्रश्ने आग्नेय्यां खरशल्यं कटिमात्रे नृपदण्डं वा गोमरणं कथयति॥
च प्रश्ने दक्षिणस्यां वानरशल्यं कटिमात्रे गृहाधीशस्य मृत्युं जनयति।
त प्रश्ने नैर्ऋत्यामश्वशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे दुःखप्रदर्शनं कथयति।
ण प्रश्ने प्रतीच्यां नरशल्यं पुरुषमात्रे धनापहरणं कथयति।
ह प्रश्ने वायव्यां द्विजशल्यं कटिमात्रे निर्धनं जनयति॥
स प्रश्ने उत्तरदिशि कटिमात्रे गोशल्यं गृहपतिमरणं कथयति।
य प्रश्ने चैशान्यां सार्द्धहस्तमात्रे ऋक्षशल्यं गोधननाशं जनयति॥
ज प्रश्ने मध्यभागे नरकपालं भस्मादिकं वा हृन्मात्रे कुलनाशं कथयति।
गृहे शल्याभावे शुभमिति वदेद् वास्तुकुशलः॥

संस्कृतभावार्थः—आद्यक्षरे वकारे पूर्वदिशि सार्द्धहस्तमात्रे मनुजशल्यं मनुजमरणं सूचयति। ककारे आग्नेयदिशि कटिमात्रे नृपदण्डं गोमरणं सूचयति। चकारे दक्षिणदिशि वानरशल्यं कटिमात्रे गृहस्वामिमृत्युं सूचयति। तकारे नैर्ऋत्याम् अश्वशल्यं सार्धहस्तमात्रे दुःखदर्शनं सूचयति। णकारे प्रतीच्यां नरशल्यं पुरुषमात्रे धनहरणं कथयति। हकारे वायव्यां द्विजशल्यं कटिमात्रे निर्धनं सूचयति। सकारे उत्तरस्यां कटिमात्रे गोशल्यं गृहपतिमरणं सूचयति। यकारे ऐशान्यां सार्धहस्तमात्रे ऋक्षशल्यं गोधननाशं सूचयति। जकारे मध्यभागे नरकपालं भस्मं वा हृन्मात्रे कुलनाशं कथयति। गृहे शल्याभावे शुभमिति वास्तुविद् ब्रूयात्।

प्रश्न के प्रथमाक्षर के अनुसार शल्यविचार—यदि प्रश्न का पहला अक्षर 'व' हो तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य की हड्डी होगी, इसका फल मृत्यु है। 'क' हो तो आग्नेय कोण में गधे की हड्डी कमर तक की गहराई में होगी, फल

राजभय, पशुनाश। 'च' हो तो दक्षिण में बानर की हड्डी कमर तक की गहराई में होगी, फल—गृहपति की मृत्यु। 'त' हो तो नैर्ऋत्य में डेढ़ हाथ नीचे घोड़े की हड्डी होगी, फल—दुःख। 'ण' हो तो पश्चिम में पुरुष भर नीचे मनुष्य की हड्डी होगी, फल—धननाश। 'ह' हो तो वायव्य कोण में ब्राह्मण की हड्डी कटिमात्र नीचे होगी, फल—निर्धनता। 'स' हो तो उत्तर में कटि मात्र नीचे गाय की हड्डी होगी, फल—गृहपति की मृत्यु। 'य' हो तो ईशानकोण में डेढ़ हाथ नीचे भालू की हड्डी होगी, फल—गोधननाश। 'ज' हो तो मध्यभाग में नरकपाल भस्म आदि छाती तक की गहराई में होगा, फल—कुलनाश। शल्य के अभाव में शुभ होता है। अतः शल्य को निकालकर ही गृह का निर्माण करे।

वास्तुराजवल्लभोक्तशल्यानयनप्रकारः

प्रश्नत्रयं वापि गृहाधिपेन देवस्य वृक्षस्य फलस्य चापि।
वाच्यं हि कोष्ठाक्षरसंस्थितेन शल्यं विलोक्यं भवनेषु सृष्ट्या ॥१६७॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्वामी देवतायाः वृक्षस्य वा नामोच्चाराय कथितः यं शब्दं वदेत् तस्य चाद्यक्षरं यस्मिन् कोष्ठके भवेत् तत्रैव दिशि शल्यं भवति।।१६७।।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार शल्य जानने की विधि—गृहस्वामी से देवता, पुष्प तथा वृक्ष का नाम लेने को कहें, उनके द्वारा कहे गये शब्दों के प्रथमाक्षर जिस कोष्ठ में हो उस दिशा में शल्य होगा, यह कहें।।१६७।।

आ का चा टा ए त शा पा य वर्गाः
प्राच्यादिस्थे कोष्ठके शल्यमुक्तम्।
केशाङ्गाराः काष्ठलौहास्थिकाद्यं
तस्मात्कार्यं शोधनं भूमिकायाः ॥१६८॥

संस्कृतभावार्थः—अ-क-च-ट-ए-त-श-प-यवर्गाः क्रमेण पूर्वादिदिक्षु भवन्ति। प्रश्नाक्षरं यत्र कोष्ठे भवति तत्रैव दिशि शल्यकेशाङ्गारकाष्ठलोहादि भवति। एषु स्थितेषु गृहारम्भ न कार्यः। दुष्प्रभावपरिहरणाय: भूमिशोधनं परमावश्यकं भवति।।१६८।।

अ क च ट ए त श प य वर्ग पूर्व आदि दिशा में समझें, प्रश्न का अक्षर जिस कोष्ठ में हो उस दिशा में शल्य, केश, कोयला, लकड़ी, लोहा आदि होता है। इनके रहते गृहनिर्माण न करे। अतः भूमिशोधन परमावश्यक है।।१६८।।

विशेष—मुहूर्तमार्तण्डकार का वचन—सद्यप्रश्नकृतो मुखात् प्रथमतो वर्गादि-वर्णोद्गमश्चेतद्दिग्गतमादिशेत्तदुपयैः शल्यं सुधीर्मध्यत इति।

दिग्बोधनचक्रम्

प फ ब भ म ईशान	अ ई उ ऋ ऌ पूर्व	क ख ग घ ङ आग्नेय
श ष स ह उत्तर	य र ल व मध्य	च छ ज झ ञ दक्षिण
त थ द ध न वायव्य	ए ऐ ओ औ पश्चिम	ट ठ ड ढ ण नैर्ऋत्य

अथास्य फलम्

शल्ये गवां भूपभयं हयानां रुजः शुनां वै कलहप्रणाशौ।
खरोष्ट्रयोर्हानिरपत्यनाशं नृणामजस्याग्निभयं तनोति ॥१६९॥

संस्कृतभावार्थः—गोशल्यं राजभयं, अश्वशल्यं रोगं, श्वशल्यं कलहं विनाशञ्च, गर्दभशल्यमुष्ट्रशल्यं च हानिं, मनुष्यशल्यं सन्ततिनाशं, अजशल्यं अग्निभयञ्च करोति।

शल्यादि का फल—गाय का शल्य राजभय, घोड़े का रोग, कुत्ते का कलह तथा विनाश, गधा एवं ऊँट का हानि, मनुष्य का संततिनाश और बकरे का अग्निभय करता है।

मुहूर्तमार्तण्डकार का मत है कि—अ, क, च, ट त, श इन वर्गों के वर्णों के उच्चारण से पूर्वादि दिशाओं में और ह, प, य से मध्य में शल्य समझें।।१६९।।

ज्योतिर्निबन्धोक्तशल्यानयनप्रकारः

अ क च ट त व य श हपया वर्णाः पूर्वादिमध्यान्ताः।
शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे निवसतां नाशः ॥१७०॥
पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत्।
सार्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुषमृत्युकृत् ॥१७१॥
आग्नेय्यां दिशि कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये।
राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते ॥१७२॥
याम्यायां दिशि चः प्रश्ने कुर्यादाकटिसंस्थितम्।
नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगतः ॥१७३॥
नैर्ऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्धहस्तादधस्तले।
शुनोऽस्थि जायते तच्च बालानां जनयेन्मृतिम् ॥१७४॥
तः प्रश्ने पश्चिमायान्तु शिशोः शल्यं प्रजायते।
सार्धहस्ते गृहस्वामी न तिष्ठति सदा गृहे ॥१७५॥
वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषाङ्गाराश्चतुष्करे।
कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नं दर्शनं सदा ॥१७६॥

उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः।
तच्छीघ्रं निर्धनत्वाय कुबेरसदृशस्य हि ॥१७७॥
ऐशान्यां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः।
तद्गोधनस्य नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥१७८॥
हपया मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेदधः।
नृकपाल कचां भस्म लोहं तत्कुलनाशकृत् ॥१७९॥

संस्कृतभावार्थः—प्रश्नकर्तुः प्रश्नस्य प्रथमाक्षरानुसारमेव पूर्वादिदिक्षु मध्ये च शल्यं निर्णीयते। शल्ययुते गृहे निवासेन मृत्युः भवति। प्रथमोच्चारिते अकारो पूर्वस्यां सार्धहस्तमिते मनुष्यशल्यं मृत्युकरं भवति। कवर्गे च आग्नेय्यां हस्तद्वयमिते गर्दभास्थि राजदण्डं सूचयति। चवर्गे दक्षिणस्यां कोष्ठमिते मानवास्थि सन्तानहानिं वदेत्। तवर्गे पश्चिमायां सार्धहस्तमिते बालास्थि गृहस्वामिनः प्रवासं सूचयति। पवर्गे वायव्यां चतुर्हस्तमिते तुषाङ्गारश्च मित्रनाशं दुःस्वप्नञ्च सूचयति। यवर्गे उत्तरस्यां कोष्ठमिते ब्राह्मणास्थि गोनाशं सूचयति। ह-प-यवर्गेषु मध्ये हृदयमिते मानवकपालबालास्थिभस्मलोहानि कुटुम्बहानिं सूचयति।

ज्योतिर्निबन्ध के अनुसार शल्य जानने की विधि—प्रश्नकर्ता के प्रश्न का जो प्रथम अक्षर हो उसी के अनुसार पूर्व आदि दिशा से लेकर मध्य तक शल्य का निर्णय किया जाता है। शल्ययुक्त घर में निवास करने से नाश होता है। 'अ' वर्ग के उच्चारण से पूर्वदिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य का शल्य, फल—मनुष्य की मृत्यु। 'क' वर्ग से अग्निकोण में दो हाथ नीचे गधे का शल्य, फल—राजदण्ड। 'च' वर्ग से दक्षिण में कटि तुल्य नीचे मनुष्य शल्य, फल—सन्तानहानि। 'त' वर्ग से पश्चिम में डेढ़ हाथ नीचे बालक की हड्डी, फल—गृहपति सदैव परदेश में रहेगा। 'प' वर्ग से वायव्यकोण में चार हाथ नीचे भूसा और कोयला, फल—मित्रनाश दुःस्वप्न। 'य' वर्ग से उत्तर में कटितुल्य नीचे ब्राह्मण की हड्डी, फल—गोधन का विनाश। ह प य में मध्य में छाती भर नीचे मनुष्य की खोपड़ी, बाल, भस्म, लोहा, फल—कुल-नाश।।१७०-१७९।।

इति शल्याधिकारः

अहिबलचक्रम्

अहिचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम्।
द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं येन जानन्ति साधकाः ॥१८०॥
निधिर्निवर्तनैकस्थः सम्भ्रान्तो यत्र भूतले।
तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं स्थानद्वारमुखस्थितम्[१] ॥१८१॥

१. भाद्रत्रये शिरः प्राच्यां मार्गत्रये शिरः।
फाल्गुनत्रितये पश्चादुत्तरे च ततः परम्।।१।।

संस्कृतभावार्थः—साधकः येन द्रव्यशल्यशून्यज्ञानवान् भवेत् तादृशं शङ्करप्रोक्तम् अहिबलचक्रं वर्ण्यते। निर्वतनप्रमाणेन (२००×२०० हस्तैः) नीचैः भूमौ निधिभ्रमे तत्रैव इदम् अहिबलचक्रं स्थापनीयम्।।१८०-१८१।।

अहिबल चक्र—साधक जिसके सहयोग से द्रव्य, शल्य अथवा शून्य स्थान का ज्ञान करते हैं, महादेवजी द्वारा कथित उस 'अहिबलचक्र' का मैं वर्णन करता हूँ। एक निवर्तन (२०० × २००) हाथ प्रमाण भूमि को भास्कराचार्य ने एक निवर्तन माना है। उस के भीतर जिस भूमि पर खजाना भूल गया हो, उस स्थान द्वार पर इस चक्र को स्थापित करें।।१८०-१८१।।

अहिबलचक्र-निर्माणविधिः

ऊर्ध्वं रेखाष्टकं लेख्यं तिर्यक्पञ्च तथैव च।
अहिचक्रं भवत्येवमष्टविंशतिकोष्ठकम् ॥१८२॥

संस्कृतभावार्थः—ऊर्ध्वम् अष्टरेखाः तिर्यक् पञ्चरेखाश्च विलिख्य अष्टाविंशतिः कोष्ठकानि निर्मातव्यानि। तत्र च यथोक्तक्रमम् अभिजिदादिनक्षत्राणि विलेखनीयानि।

अहिबलचक्र की निर्माण-विधि—आठ खड़ी रेखायें आर पाँच पड़ी रेखायें खींचे, इस प्रकार २८ कोष्ठक बनेंगे; इनमें अभिजित् सहित नक्षत्रों को निम्नलिखित प्रकार से लिखें।।१८२।।

तत्र पौष्णाश्वियाम्यर्क्षं कृत्तिकापितृभाग्यकम्।
उत्तराफाल्गुनी लेख्य पूर्वपङ्क्त्यां भसप्तकम् ॥१८३॥
अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं शतभं ब्राह्मसार्पभम्।
पुष्यं हस्तं समालेख्यं द्वितीयां पङ्क्तिमास्थितम् ॥१८४॥
विधिविष्णुर्धनिष्ठाख्यं सौम्यं रौद्रं पुनर्वसुः।
चित्राभं च तृतीयायां पङ्क्तौ धिष्ण्यस्य सप्तकम् ॥१८५॥

यत्र सपशिरस्तत्र स्थानद्वारं विनिर्दिशेत्।
तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं चेद् बहिर्भागगो निधिः।।२।।
गृहे यदि भवेद् द्रव्यं गृहद्वारे तदा न्यसेत्।
मुख्योऽयं गदितः पक्षे हरिवंशकवीश्वरैः।।३।।

स्थान द्वार का निर्णय निम्नप्रकार से समझें—भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक में पूर्व दिशा में शिर, मार्गशीर्ष, पौष, माघ में दक्षिण दिशा में शिर, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख में पश्चिम दिशा में शिर और ज्येष्ठ, आषाढ़ श्रावण में उत्तर दिशा में शिर होता है। जिस-जिस मास में जहाँ-जहाँ सर्प शिर कहा है, उसी को स्थान द्वार समझें। यदि खजाना बाहर की ओर हो तो उसी स्थान द्वार पर इस चक्र की स्थापना करें।

विश्वर्क्षं तोयभं मूल ज्येष्ठां मैत्रविशाखके।
स्वातीं पङ्क्तौ चतुर्थ्यां च कृत्वा चक्रं विलोकयेत् ॥१८६॥

अर्थ चक्र द्वारा स्पष्ट है—

अहिबलचक्रम्



एवं प्रवर्तिते चक्रे प्रस्तारः पन्नगाकृतिः।
द्वारशाखे मघायाम्ये द्वारस्था कृत्तिका मता ॥१८७॥
अश्वीशपूर्वाषाढादित्रिकं पञ्चचतुष्टयम्।
रेवतीपूर्वभाद्रेन्दोर्भानि शेषाणि भास्वतः ॥१८८॥
उदयादिगता नाड्यो भघ्नाः षष्ट्याप्तशेषके।
दिनेन्दुभुक्तयुक्तेऽसौ भवेत्तत्कालचन्द्रमाः ॥१८९॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वोक्तक्रमेण चक्रे निर्मिते तत्र प्रस्तारः सर्पाकारः भवेत्। अस्य द्वारस्य दक्षिणशाखायां मघा द्वारे च कृत्तिका विधातव्या। अत्र अश्विनेः त्रीणि, आर्द्रायाः पञ्च, पूर्वाषाढ़ायाः चत्वारि, पूर्वाभाद्रपदा रेवतीश्च चतुर्दश नक्षत्राणि चन्द्रस्य ततः शिष्टानि चतुर्दश सूर्यस्येति ज्ञेयानि। प्रश्नकाले नक्षत्रस्य उदयकालघटीं सप्तविंशत्यां गुणयित्वा षष्ट्या भाजने लब्धिरूपेण यत् नक्षत्रं घटी पलञ्च आगच्छति तस्य पञ्चाङ्गस्थाश्विनीनक्षत्रादि गतसंख्यायोगे तात्कालिकश्चन्द्रः स्पष्टो भवति।।१८७-१८९।।

पूर्वोक्त प्रकार से चक्र के बना लेने पर उसका फैलाव साँप की आकृति का होगा, इसके द्वार की दक्षिण शाखा में मघा नक्षत्र और द्वार में कृत्तिका नक्षत्र को रखें। इसमें अश्विनी से तीन (अ., भ., कृ.) आर्द्रा से पाँच (आ., पुन., पुष्य, आश्ले., म.), पूर्वाषाढा से चार (पू. षा., उ. षा., अभि., श्र.), पूर्वाभाद्रपदा, रेवती ये १४ नक्षत्र चन्द्रमा के और शेष १४ नक्षत्र (रो.; मृ., पू. फा., उ. फा., ह, चि., स्वा., वि., अनु., ज्ये., मू., ध., श., उ. भा.) सूर्य के हैं। प्रश्नकाल में नक्षत्र की उदयकाल की घटी (भयात) को २७ से गुणा करके ६० का भाग देने पर जो लब्धि के रूप

में नक्षत्र, घटी, पल मिले, उसमें पञ्चाङ्ग में स्थित अश्विनी आदि गत नक्षत्र संख्या को जोड़ देने से नक्षत्रादि तात्कालिक स्पष्ट चन्द्रमा होता है।।१८७-१८९।।

षष्टिघ्नं तं निशानाथं शरवेदाप्तकं पुनः।
त्रिभिर्भक्त्वा युगैः शेषं प्रागादिचक्रवक्त्रगम्॥१९०॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रस्पष्टस्य षष्टीसंख्यया गुणने पञ्चचत्वारिंशता भाजने पुनश्च त्रिभिः भाजने आगतायां लब्धेः चतुर्भिः भाजने यदवशिष्यते तदनुसारं पूर्वादिदिक्षु स्थानद्वारं भवति। यथा एकशेषे पूर्वस्यां, द्विशेषे दक्षिणस्यां, त्रिशेषे पश्चिमायां, चतुश्शेषे उत्तरस्याञ्च द्वारं भवति।।१९०।।

चन्द्रस्पष्ट द्वारा द्वारनिर्णय की विधि—चन्द्रस्पष्ट को ६० से गुणा करके ४५ का भाग देकर फिर ३ से भाग देकर जो लब्धि आये उसमें ४ का भाग देने से जो शेष बचे उसी के अनुसार पूर्व आदि दिशाओं में स्थान द्वार होता है। जैसे १ शेष में पूर्व दिशा में, २ में दक्षिण में, ३ में पश्चिम में और ४ में उत्तर में।।१९०।।

चन्द्रवत् साधयेत् सूर्यमृक्षस्थं चेष्टकालिकम्।
पश्चाद् विलोकयेत्तौ च स्वर्क्षे वा चान्यभे स्थितौ॥१९१॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रवत् सूर्यस्पष्टं विज्ञाय सूर्यचन्द्रौ स्वनक्षत्रस्थौ अन्यनक्षत्रस्थौ वेति ज्ञातव्यम्।।१९१।।

जैसे चन्द्रमा का स्पष्ट निकाला गया है, वैसे ही सूर्य का भी स्पष्ट निकालें फिर यह देखें कि सूर्य तथा चन्द्र अपने-अपने नक्षत्र में हैं या एक-दूसरे के नक्षत्र में हैं।।१९१।।

चन्द्रस्यर्क्षे यदाऽर्केन्दू तदास्ति निश्चितं निधिः।
भानो ऋक्षे स्थितौ नोचेत् तदा शल्यं न चान्यथा॥१९२॥

संस्कृतभावार्थः—यदि चन्द्रनक्षत्रे सूर्यः सूर्यभे च चन्द्रः भवति तदा नियतं धनप्राप्तिः भवति सूर्यचन्द्रौ उभौ सूर्यनक्षत्रे भवतश्चेत् शल्यं भवेत्। उभौ उभयोः नक्षत्रयोर्न भवतश्चेत् धनं शल्यं वा न किमपि भवति।।१९२।।

भूमि में धनप्राप्ति के योग—यदि चन्द्रमा के नक्षत्र में सूर्य-चन्द्रमा हों तो निश्चित रूप से निधि समझें और यदि सूर्य-चन्द्र दोनों सूर्य के नक्षत्र में हो तो शल्य समझें। यदि दोनों किसी नक्षत्र में न हों तो निधि अथवा शल्य नहीं है समझें।।१९२।।

स्वस्वभे द्वितये ज्ञेयं नास्यि किञ्चिद् विपर्यये।
स्थितं न लभते वित्तं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते॥१९३॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यचन्द्रौ स्वस्वभविपर्यये स्थितौ चेत् धनलाभो न भवति। चन्द्रमसो नक्षत्रे सूर्येन्दू उभौ भवतश्चेत् अपि चन्द्रस्य क्रूरत्वे फलं न लभ्यते।।१९३।।

दोनों (सूर्य-चन्द्र) यदि अपने नक्षत्र से विपरीत स्थिति में हों तो द्रव्य लाभ नहीं होगा और यदि चन्द्रमा के नक्षत्र में (श्लोक १९२ के अनुसार) सूर्य-चन्द्रमा एक नक्षत्र में हों, फिर भी यदि चन्द्रमा क्रूर ग्रहों से युक्त हो तो स्थित द्रव्य का भी लाभ नहीं होता है।।१९३।।

शुभक्षेत्रगते चन्द्रे द्रव्यलाभो न संशयः।
पापक्षेत्रे न लाभः स्याज्ज्ञातव्यं दैवविद्वरैः॥१९४॥

संस्कृतभावार्थः—शुभग्रहगृहे चन्द्रोऽस्ति चेत् अवश्यं द्रव्यलाभो भवति। पापक्षेत्रे स्थितश्चेत् न धनलाभो भवति इति ज्योतिर्विदां मतम्।।१९४।।

शुभ ग्रह के घर में चन्द्रमा हो तो अवश्य द्रव्य लाभ होता है और पापक्षेत्र में चन्द्रमा हो तो किसी भी स्थिति में द्रव्य लाभ नहीं होता, ऐसा ज्योतिर्विदों को जानना चाहिये।।१९४।।

पुष्टे चन्द्रे भवेन्मुद्रा क्षीणे चन्द्रेऽल्पको निधिः।
ग्रहदृष्टिवशात् सोऽपि विज्ञेयो नवधा बुधैः॥१९५॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रे बलिनि अधिकम् अबले च न्यूनं द्रव्यं लभ्यते। ग्रहाणां दृष्टिभेदेन द्रव्यभेदोऽपि नवविधो भवति।।१९५।।

यदि चन्द्रमा बलवान् हो तो अधिक द्रव्य तथा बलहीन हो तो थोड़ा द्रव्य प्राप्त होता है। ग्रह की दृष्टि-भेद से नौ प्रकार से द्रव्य-भेद भी होता है।।१९५।।

हेमं तारं तु ताम्रारं रत्नं कास्यायसं त्रपु।
नागं चन्द्रे विजानीयाद् भास्करादिग्रहेक्षिते॥१९६॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रमसि सूर्येण दृष्टे स्वर्णं स्वेन मुक्ता, कुजेन ताम्रं, बुधेन पित्तलं, गुरुणा रत्नं, शुक्रेण कांस्यं, शनिना अयः, राहुणा त्रपु, केतुना च दृष्टे नागं द्रव्यं लभ्यत्वेन विजानीयात्।।१९६।।

चन्द्रमा पर ग्रहों की दृष्टि के अनुसार द्रव्यप्राप्ति के योग—चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो 'सुवर्ण', चन्द्रमा की दृष्टि हो तो 'मोती', मंगल की दृष्टि हो तो 'ताँबा', बुध की दृष्टि हो तो पीतल, बृहस्पति की दृष्टि हो तो रत्न, शुक्र की दृष्टि हो तो 'काँसा', शनि की दृष्टि हो तो 'लोहा', राहु की दृष्टि हो तो 'राँगा' और केतु की दृष्टि हो तो 'शीशा' समझें।।१९६।।

मिश्रैर्मिश्रं भवेद् द्रव्यं शून्यं दृष्टिविवर्जिते।
सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे निर्दिष्टोऽसौ महानिधिः॥१९७॥

संस्कृतभावार्थः—यद्यनेकग्रहैः दृष्टश्चन्द्रस्तदा मिश्रफलं भवति। केनाप्यदृष्टश्चेत् द्रव्यप्राप्तिर्न भवति सर्वैर्दृष्टश्चेत् प्रभूतं धनं लभ्यते।।१९७।।

यदि अनेक ग्रहों की दृष्टि हो तो उन सब ग्रहों का मिला-जुला द्रव्य होता है। यदि कोई ग्रह न देखता हो तो द्रव्य की प्राप्ति नहीं होगी और यदि सभी ग्रह चन्द्रमा को देखते हों तो पर्याप्त द्रव्य का लाभ होता है।।१९७।।

हेमं रूप्यं च ताम्रारं पाषाणं मृण्मयायसम्।
आदित्यादिगृहे चन्द्रे द्रव्यभाण्डं प्रजायते ॥१९८॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रमसि सूर्यस्य राशौ स्थिते सौवर्णे पात्रे, स्वस्यैव राशौ स्थिते राजते, कुजस्य राशौ ताम्रमये, बुधराशौ पित्तलमये, गुरुराशौ पाषाणमये, शुक्रराशौ मृण्मये, शनिराशौ आयसे च निक्षिप्तं द्रव्यं लभ्यते।।१९८।।

द्रव्य के पात्र जानने की विधि—चन्द्रमा सूर्य की राशि में स्थित हो तो सोने के पात्र में, अपनी ही राशि में हो तो चाँदी के पात्र में, मंगल की राशि में हो तो ताँबे के पात्र में, बुध की राशि में हो तो पीतल के पात्र में, गुरु की राशि में हो तो पत्थर के पात्र में, शुक्र की राशि में हो तो मिट्टी के पात्र में और शनि की राशि में हो तो लोहे के पात्र में द्रव्य रखा हुआ मिलेगा।।१९८।।

भुक्तराश्यंशमानेन भूमानं कामिकैः करैः।
नीचेद्विघ्नं परे नीचे जलस्थोऽसौ भवेन्निधिः ॥१९९॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रेण राशेः यावन्तः अंशाः भुक्ताः गृहस्वामिनः हस्तमितं तावदेव अधः धनं भवेत्। चन्द्रो यदि वृश्चिकस्थस्तदा ततोऽपि द्विगुणितमधिकं नीचैः द्रव्यं लभ्यते।।१९९।।

द्रव्य की गहराई जानने की विधि—वर्तमान चन्द्रमा की राशि के जितने अंश बीत गये हों, कामिक (गृहपति) के हाथ से उतने हाथ नीचे द्रव्य होगा। चन्द्रमा यदि नीच राशि (८) का हो तो उस से दूने हाथ नीचे द्रव्य होगा।।१९९।।

स्वोच्चस्थे तूर्ध्वगं द्रव्यं नवमांशक्रमेण च।
परमोच्चे स्थिते चन्द्रे भित्तिस्थमृक्षसङ्क्रमे ॥२००॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रमसि वृषगे भुक्तांशमिते गम्भीरे स्थाने स्थाने द्रव्यं लभ्यते, चन्द्रे परमोच्चे सति भित्तौ द्रव्यं लभ्यते।।२००।।

यदि चन्द्रमा अपनी उच्च (२) राशि का हो तो बीते हुए अंशों के बराबर हाथ ऊँचाई पर द्रव्य समझे और परमोच्च (वृष के तीसरे अंश) पर चन्द्रमा हो तो दीवाल में द्रव्य है ऐसा निर्देश करें।।२००।।

चन्द्रभुक्तांशमानेन द्रव्यसङ्ख्या विधीयते।
तस्या दशगुणावृद्धिः षड्वर्गेन्दुबलक्रमात् ॥२०१॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रस्य यावन्तः अंशाः गताः तन्मानेन द्रव्यसंख्या वक्तव्याः। चन्द्रस्य षड्वर्गबलक्रमेण संख्या दशगुणं वर्धते। यथा प्रथमवर्गे दशगुणं द्वितीयवर्गे १०० गुणं, तृतीयवर्गे १००० गुणं, चतुर्थवर्गे १०,००० गुणं, पञ्चमवर्गे १,००,००० गुणं एवं षष्ठे वर्गे १०,००,००० गुणं वर्धते।।२०१।।

चन्द्रमा के जितने अंश बीते हों उनकी द्रव्य की संख्या बतलानी चाहिये। और चन्द्रमा के षड्वर्ग (राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिशांश) बल के क्रम से संख्या की दशगुना वृद्धि समझे, यथा—१ वर्ग में १०, २ में १००, ३ में १०००, ४ में १००००, ५ में १०००००, ६ में १०००००० वृद्धि होती है।।२०१।।

अधिष्ठितं भवेद् द्रव्यं यत्र चन्द्रो ग्रहान्वितः।
तदधिष्ठापको ज्ञेयो भास्करादिग्रहैः क्रमात् ॥२०२॥

संस्कृतभावार्थः—अहिबलचक्रे यस्मिन् नक्षत्रे ग्रहान्वितः एकाकी वा चन्द्रः तिष्ठति तत्र द्रव्यं भवति। सूर्यादिग्रहान्वितत्वे द्रव्याधिष्ठातृदेवताः भिन्नाः भवति।।२०२।।

द्रव्य के अधिपति ग्रह जानने की विधि—अहिबलचक्र के जिस नक्षत्र पर किसी ग्रह से युक्त अथवा स्वतन्त्र चन्द्रमा स्थित हो, वहाँ द्रव्य होता है। सूर्यादि ग्रहों से युक्त चन्द्रमा के रहने पर निम्नोक्त देवता द्रव्य के स्वामी होते है।।२०२।।

ग्रहं मुग्धग्रहं चैव क्षेत्रपालं च मातृकाः।
दीपेशं भीषणं रुद्रं यक्षं नागं विदुः क्रमात् ॥२०३॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रस्य सूर्येण अन्वये ग्रहः, एकाकित्वे मुग्धग्रहः, मङ्गलेन अन्वये क्षेत्रपालः, बुधेन मातृका, गुरुणा दीपेशः, शुक्रेण भीषणः, शनिना रुद्रः, राहुणा नागः इति द्रव्याधिष्ठापकाः।।२०३।।

चन्द्र से युत ग्रह के अनुसार द्रव्य के अधिष्ठापक—चन्द्रमा सूर्य से युक्त हो तो ग्रह, अकेला चन्द्रमा हो तो मुग्धग्रह, मंगल से युक्त हो तो क्षेत्रपाल, बुध से युक्त हो तो मातृका, गुरु से युक्त हो तो दीपेश, शुक्र से युक्त हो तो भीषण, शनि से युक्त हो तो रुद्र, राहु से युक्त हो तो नाग—ये नौ द्रव्य अधिष्ठापक कहे गये हैं।

ग्रहे होमः प्रकर्तव्यो मुग्धे नारायणो बलिः।
क्षेत्रपाले सुरामांसं मातृकासु महाबलिः ॥२०४॥
दीपेशे दीपजा पूजा भीषणे भीषणार्चनम्।
रुद्रे च रुद्रजो जाप्यो यक्षे यक्षादिशान्तयः ॥२०५॥
नागे नागगणाः पूज्या गणनाथेन संयुता।
लक्ष्मीं धरादितत्त्वानि सर्वकार्येषु पूजयेत् ॥२०६॥

एवं कृत्वा विधानेन निधिः साध्योऽपि सिद्ध्यति।
निधिं प्राप्ता, नरा लोके वन्दनीया न संशयः ॥२०७॥

संस्कृतभावार्थः—द्रव्याधिष्ठापकः ग्रहो भवति चेत् हवनं, मुग्धश्चेत् नारायणबलिः क्षेत्रपालश्चेत् सुरा मांसं च, मातृका चेत् महाबली, दीपेशश्चेत् दीपादिः, भीषणदेवश्चेत् क्रूरपूजा, रुद्रश्चेत् रुद्राष्टाध्यायी, यक्षश्चेत् यक्षशान्तिः, नागश्चेत् गणेशेन सह नागपूजा इति यथायथं पूजनविधिः तत्सामग्री च विहिता। सर्वत्र लक्ष्मी पृथिवी च पूजनीये। इत्थं कष्टसाध्यमपि धनं सुखेन नरः लभते। धनवतः पुरुषस्य सम्मानस्तु जगत्प्रसिद्ध एव।

यदि 'ग्रह' द्रव्याधिष्ठापक हों तो हवन, 'मुग्ध' हों तो नारायणबलि, 'क्षेत्रपाल' हो तो सुरा और मांस, 'मातृका' हो तो महाबलि, 'दीपेश' हो तो दीप आदि से पूजा, 'भीषण देव' हो तो क्रूरपूजा, 'रुद्र' हों तो रुद्र का जप करे; 'यक्ष' हो तो यक्षशान्ति 'नाग' हों तो गणेश-सहित नागों की पूजा और समस्त कार्यों में लक्ष्मी तथा पृथ्वी आदि की पूजा करे। इस प्रकार कष्ट से प्राप्त होने वाली निधि की भी प्राप्ति होती हैं। निधि से सम्पन्न पुरुष संसार में सर्वत्र वन्दनीय होता है।।२०४-२०७।।

इति शल्याधिकारे अहिबलचक्रम्

•

वृद्धनारदमते दिक्साधनम्

प्रासादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात् तस्मात् संसाधयेद्दिशः ॥१॥
प्रथमं सुसमे क्षेत्रे प्राचीं संसाधयेत् स्फुटम्।
सिद्धान्तोक्तप्रकारेण ततो निष्पादयेद् गृहम् ॥२॥

संस्कृतभावार्थः—प्रासादे, सामान्यगृहे, अलिन्दे, द्वारे कुण्डे च निर्मास्यमाने विशेषतः दिक्साधनं कर्त्तव्यम्। विना दिग्ज्ञानं भवनादीनां द्वारनिर्माणे कुलनाशो भवति। अतः भूमिं समां विधाय ज्योतिश्शास्त्रस्य सिद्धान्तानुसारं दिक्साधनं कृत्वा गृहं निर्मातव्यम्।

वृद्धनारद के अनुसार दिक्साधन—प्रासाद (देव मन्दिर, राजगृह) सामान्य गृह, अलिन्द, द्वार और कुण्ड के निर्माण में विशेष रूप से दिक् साधन करना चाहिये, दिशा का विचार किये बिना भवन के द्वार आदि का निर्माण करने से कुलनाश होता है। अतः समतल भूमि करा कर ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तानुसार दिक् साधन करके गृह बनाना चाहिये।।१-२।।

ज्ञात्वा पूर्वं धरित्रीं खननदहनसम्प्लावनैः संविशोध्य,
पश्चात्कृत्वा समानां मुकुरजठरवद्वाचयित्वा द्विजेन्द्रैः।
पुण्याहं कूर्मशेषौ क्षितिमपि कुसुमाद्यैः समाराध्य शुद्धे
वारे तिथ्यां च कुर्यात् सुरपतिककुभः साधनं मण्डपार्थम् ॥३॥

संस्कृतभावार्थः—प्रथमतः भूमौ रोहतः घासान् दहेत् ततश्च खात्वा शल्यम् उद्धरेत्। अन्ते तदुपरि जलं क्षिपेत्; जलप्लवः कां दिशम्प्रति इति ज्ञातव्यम्। ततः भूमिं दर्पणोदरवत् स्वच्छां विधाय ब्राह्मणैः पुण्याहः वाचयितव्यः। ततश्च कूर्म-शेष-भूमिः-पुष्पैः पूजयित्वा शुभतिथौ शुभवासरे गृहं निर्मातुं पूर्वदिशः निर्णयः कार्यः।।३।।

सर्वप्रथम भूमि पर उगे हुए घास-फूस को जला डाले, फिर खोदकर शल्य को निकाल लें, अन्त में उसके ऊपर पानी डालें, देखें जल का बहाव किस ओर है (जिसका विचार हम इसके पूर्व पहले प्रकरण में कर आये हैं), इसके बाद भूमि को शीशे के मध्य भाग की भाँति साफ-सुथरा कर लें, तदनन्तर ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन कराकर कूर्म, शेष और भूमि की फूल आदि से पूजा करे, तब शुभ तिथि वार में घर बनाने के लिये पूर्व दिशा का निर्णय करे।।३।।

भास्करमते दिक्साधनप्रकारः

वृत्तेम्भस्सु समीकृतक्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमात्
छाया यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरेन्द्र्यौ दिशौ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्धाकर्णभित्याहता
ल्लम्बज्याप्रमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता ॥४॥
तन्मत्स्यादथ याम्यसौम्यककुभौ सौम्याध्रुवे वा भवे-
देकस्मादपि भागतो भुजमितां कोटीमितां शङ्कुतः।
न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोः संयुतिः
कोटिः प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा ॥५॥

संस्कृतभावार्थः—समीकृतायां क्षितौ जलं क्षिप्त्वा वृत्तिं निर्माय द्वादशाङ्गुलमितं शंकुं न्यस्येत्। पूर्वाह्ने वृत्ते यत्र छाया विशति सा पश्चिमा अपराह्ने यत्र छाया आगच्छति सा पूर्वा दिशेत् ज्ञेयम्; सूक्ष्मदिग्बिन्दुज्ञानाय यत्र छायाप्रवेशनिर्गमसमययोः क्रान्तिज्यान्तरस्य छायाकर्णेन गुणनं कृत्वा इष्टलम्बज्यया भाजनं कृत्वा ततः लब्धितुल्यम् अङ्गुल्याद्यनयनदिशं प्रति बिन्दुनयने वास्तविकः पूर्वदिग्बिन्दुः प्राप्यते। पूर्वपश्चिमबिन्दुभ्यां मत्स्यकरणे वास्तविकी दक्षिणोत्तररेखा प्राप्यते अथवा उत्तरध्रुवं विद्धा उत्तरदिग्बिन्दुर्ज्ञातव्यः अथवा वृत्तमध्यस्थशंकोः एकस्मिन् समय एव छायाग्रं ज्ञात्वा तस्यैव इष्टकालस्य भुजं कोटिं च कलयित्वा भुज-कोटितुल्यशलाकां गृहीत्वा शंकुदिगनुसारं कोटेः छायाग्रस्य च विपरीतदिशायां भुजं शलाकाञ्च यष्ट्यग्रशलाकाग्रयोगानुकूल्येन विन्यस्येत्। एवं विहिते कोटिः पूर्वापरदर्शिनी भुजश्च दक्षिणोत्तरलम्बी भवेत्।।४-५।।

भास्कर के मत से दिक्साधन का प्रकार—पानी डालकर समस्त की हुई भूमि पर वृत्ति बनाकर केन्द्र में १२ अंगुल का शङ्कु रखें। पूर्वाह्न (१२ बजे दिन से पहले) में वृत्त के भीतर जहाँ तक छाया पहुँचे, वह पश्चिम और दोपहर (१२ बजे)

के बाद जहाँ से छाया निकले वही बिन्दु पूर्व दिशा है। (इस प्रकार पश्चिम बिन्दु का निर्णय विधिवत् हो गया किन्तु क्रान्ति गति के अनुसार पूर्वोक्त पूर्व बिन्दु का मान स्थूल हुआ)। सूक्ष्म बिन्दु जानने के लिये छाया प्रवेश तथा निर्गम दोनों समयों के क्रान्ति-ज्याओं का अन्तर करना और छाया कर्ण से गुणा करें, इष्ट लम्ब ज्या से भाग देना लब्धि तुल्य अंगुलादि अयन की दिशा में बिन्दु को चला देना तब वास्तविक पूर्व बिन्दु होगा। पश्चिम और पूर्व दोनों बिन्दुओं से मत्स्य उत्पादन (अर्थात् पूर्व और पश्चिम बिन्दु से मिलायी हुई रेखा के आधे के ऊपर रेखागणित युक्त से लम्ब) करने से वास्तविक दक्षिणोत्तर रेखा होगी। अथवा उत्तर ध्रुव को वेध कर उत्तर दिशा को समझे, अथवा वृत्त मध्यस्थ शंकु का एक समय का ही छायाग्र जानकर उसी इष्ट काल का भुज और कोटि बनायें, भुज और कोटि के तुल्य शलाका लेकर शंकु से दिशा के अनुसार कोटि और छायाग्र से विपरीत दिशा की भुज और शलाका का इस प्रकार विन्यास करे, जैसे यष्ट्यग्र (शलाकाग्रों) का योग हो जाय। ऐसा करने से कोटि पूर्वापर और भुज दक्षिणोत्तर होगा।।४-५।।

ग्रहलाघवोक्तः सरलोपायः

वृत्ते समभूगते तु केन्द्रस्थितशङ्कोः क्रमशो विशत्यपैति ।
छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्यां सिद्ध्यति मेरुदिक च याम्या ॥६॥

संस्कृतभावार्थः—समीकृतभूमौ कृते वृत्ते मध्यस्थस्य शंकोः छायाग्रं यत्र प्रविशति निर्गच्छति च सैव पूर्वा पश्चिमा च दिगिति ज्ञेयम्।।६।।

ग्रहलाघव के अनुसार दिक्साधन—समतल भूमि पर बनाया हुआ वृत्त मध्य में रखा हुआ शंकु की छायाग्र का जहाँ प्रवेश और निर्गम हो वही पश्चिम और पूर्व दिशा होगी।

ग्रहलाघवकर्ता ने उन्हीं बिन्दुओं में मिली हुई रेखा को वास्तविक पूर्वापर के समानान्तर अनुरूप मान लिया है। इस पर मत्स्योत्पादन (आधे पर लम्ब) करने से दक्षिणोत्तर रेखा होगी।।६।।

दिग्ज्ञानसाधनम्

दिनमानदले सप्ताङ्गुलच्छायाग्रतो हि यत् ।
शंकुमूले नीयमानं सूत्रं स्यादुत्तरा दिशा ॥७॥

संस्कृतभावार्थः—मध्याह्ने सप्ताङ्गुलच्छायाग्रात् शंकुमूलपर्यन्तं रेखाकरणे दक्षिणोत्तररेखा सम्भवति, येन अन्यदिग्ज्ञानं भवति।

दिग्ज्ञानसाधन—मध्याह्न में ७ अंगुल की छायाग्र से शंकु मूल पर्यन्त रेखा करने से दक्षिणोत्तर रेखा होगी, जिसके द्वारा अन्य दिशाओं का भी ज्ञान हो जायेगा।।७।।

प्रकारान्तरेण दिग्ज्ञानम्

तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे नते,
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्यादिशा ।
शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छाया द्वयान्मत्स्ययो-
र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे ॥८॥

संस्कृतभावार्थः—सप्तर्षितारासु आद्यद्वयं मार्कटिकेति कथ्यते। एते ध्रुवेण सह यदा एकसूत्रागते भवतः तदा शंकुस्थापनेन तत्र च शंकुसमानतया तिसृणामपि ताराणामवस्थितौ दक्षिणभागे दीपकः स्थापनीयः। दीपशिखा शंकोरग्रभागः ध्रुवश्चेति त्रयं यदा एकरेखागतं भवति तदा शंकोः दक्षिणे दीपम् अथवा त्र्यङ्गुलवृत्तमध्ये द्वादशाङ्गुलमितशंकुस्थापने यत्र शंकुच्छाया वृत्तं प्रविशति तत्र पश्चिमा यत्र च निर्गच्छति तत्र पूर्वा भवति। बिन्दुद्वयस्यापि मत्स्योत्पादने तद्योगे कृता रेखा दक्षिणामुत्तरां च दर्शयति।।८।।

अन्य प्रकार से दिक्साधन—सप्तर्षि तारों में जो पहले के दो तारे हैं उनको मार्कटिका कहते हैं। वे और ध्रुव जब एक सूत्र में हो जायँ अर्थात् एक शंकु स्थापन करने से जब शंकु की सीध में तीनों तारा हो जायँ तो शंकु से दक्षिण भाग में एक दीपक रखें। दीपक की शिखा, शंकु का अग्र भाग और ध्रुव ये तीनों जब एक सीध में दिखायी पड़े तो शंकु से दीपक को दक्षिण समझें। अथवा ३ अंगुल के वृत्त के मध्यम में १२ अंगुल शंकु रखना जहाँ उसको छाया वृत्त में प्रवेश करे वहाँ पश्चिम जहाँ निकल जाय वह पूर्व दिशा दोनों बिन्दुओं से मत्स्य बनाने से उनके योग में की हुई रेखा दक्षिणोत्तर होती है।।८।।

द्विघ्नायाममितं द्विपाशमजरत् सूत्रं विधायाङ्कयेत्
त्र्यायामाङ्घ्रिमिते च विस्तृतिदले तौ कर्षकोणाभिधौ ।
पाशौ क्षेत्रविरामशंकुनिहतौ कृत्वाद्यमाकर्षयेत्
कोणे शंकुरितीतरो विनमयद् रज्ज्वन्तयोश्चापरौ ॥९॥

संस्कृतभावार्थः—क्षेत्रद्विगुणायाममितसूत्रम् उभयतस्पाशं कृत्वा तत्र स्थलद्वये अंकनं कर्तव्यम्। आयामस्य चतुर्थांशत्रये प्रथमतः ततः विस्तरार्धे द्वितीयङ्कं कुर्यात्। ततश्च तौ कर्षः कोणः इति सञ्ज्ञे लभेते।।९।।

क्षेत्रफल की दूनी लम्बाई के बराबर एक सूत्र लें; जिसके दोनों छोर (किनारों) पर पाश (एक प्रकार की गाँठ होती है, जिसके बीच में छेद होता है) हो, उस तिगुने लम्बे सूत्र में दो स्थानों पर निशान बनाये, लम्बाई की तीन चौथाई पर पहले (जैसे घर की लम्बाई ३२ हाथ हो तो २४ हाथ तीन चौथाई हुआ) और विस्तार के आधे पर दूसरा निशान करें, इस प्रकार पहले का नाम 'कोण' होगा।

वक्तव्य—उपर्युक्त दिक् साधन प्रकार से सिद्ध किया हुआ क्षेत्र मध्य में जो दिक् सूत्र है, उस पर लम्बाई वाले सूत्र को फैलाकर दोनों भाग में शंकु गाड़ दें, इन्हीं दोनों शंकुओं में पाशों को लगा दें, तब पहले निशान (कर्ण) को खींचे, जहाँ पर 'कोण' का निशान बना हो वहाँ शंकु को गाड़ दें। इसी को उलट देने से दूसरा शंकु होगा। इन दो शंकुओं से शेष अगले दो शंकु होंगे इस प्रकार चतुष्कोण सिद्ध हो जायेगा।

क्षेत्रे भवेत क्षेत्रफलं चतुर्भुजे
तत्कोटि दोराहतिरेवमायते।
त्र्यस्त्रेऽपि दोः कोटिहतेर्दलं फलं
दोः कोटिलम्बैर्विषमे च कल्पितम् ॥१०॥

संस्कृतभावार्थः—समचतुर्भुजक्षेत्रे भुजकोटिगुणफलमेव क्षेत्रफलमित्युच्यते, इत्थमेव आयतक्षेत्रेऽपि भवति। त्रिभुजे भुजकोटिगुणनफलार्धं क्षेत्रफलं भवति॥१०॥

समचतुर्भुज क्षेत्र में भुजकोटि (लम्बाई चौड़ाई) के गुणनफल को क्षेत्रफल कहते हैं, इसी प्रकार आयत क्षेत्र में भी होता है। त्रिभुज में भुजकोटि का गुणन फल का आधा क्षेत्रफल होता है॥१०॥

तत्र मतान्तरम्

विष्णुं व्येकायगोभूहतिभयुजिफलं गोपिराजो भशेषात्
सायं कुचेष्टाष्टिदृग्घ्न्या युतमहिनिहता दृक्प्रकृत्याख्यविश्वे।
वाणाः सिद्धाष्टितागोड्वतिगिरिशभ्याकृतीन्द्रर्तुतत्वा-
त्यष्टयङ्कक्ष्मानखेनार्णवविकृतिदिनाद्र्युत्कृतीभेन्दुकाष्ठाः ॥११॥

संस्कृतभावार्थः—गोपीराजः स्वशिष्यं विष्णुं कथयति यत् इष्ट आये एकं न्यूनीकृत्य एकोनविंशत्या गुणने ततः नक्षत्रसंख्यायोजने, ततश्च सप्तविंशत्या भाजने या शेषसंख्या तदनुसारेण एते शेषाः ग्राह्याः २ दृक्, २१ प्रकृतिः, १३ विश्वः, ५ बाणाः, २४ सिद्धः, १६ अष्टि, ८ नागः, २७ उडुः, १९ अतिधृतिः, ११ गिरिशः, ३ त्रिः, २२ आकृतिः, १४ इन्द्रः, ६ ऋतुः, २५ तत्त्वानि, १७ अत्यष्टिः, ९ अंकः, १ क्ष्मा, २० नखा, १२ इन, ४ अर्णवः, २३ अविकृतिः, १५ दिनम्, ७ अद्रिः, २६ उत्कृतिः, १८ इभेन्दुः, १० काष्ठाः। अनया रीत्या प्राप्तां संख्यां अष्टभिः गुणयित्वा आयं योजयेत्। तदा च क्षेत्रफले इष्टगुणितां २१६ संख्यां योजयेत्। अत्र अनेके प्रकाराः सम्भवन्ति॥११॥

गोपीराज के मत से पिण्डानयन प्रकार—गोपीराज अपने शिष्य विष्णु से कहते हैं—इष्ट आय में १ कम करके उसको १९ से गुणा करे, उसमें नक्षत्र संख्या जोड़ दें, उसमें २७ का भाग दें, जो शेष बचे उसके अनुसार क्रम से इन शेषों को ग्रहण करें—२ दृक्, २१ प्रकृति, १३ विश्व, ५ बाण, २४ सिद्ध, १६ अष्टि, ८ नाग, २७ उडु, १९ अतिधृति, ११ गिरिश, ३ त्रि, २२ आकृति, १४ इन्द्र, ६ ऋतु, २५ तत्त्व, १७ अत्यष्टि, ९ अंक, १ क्ष्मा, २० नख, १२ इन, ४ अर्णव, २३ अविकृति, १५ दिन, ७ अद्रि, २६ उत्कृति, १८ इभेन्दु, १० काष्ठा। इस प्रकार प्राप्त संख्या को ८ से गुणा करके आय को जोड़ दें, तब जो क्षेत्रफल होगा इसमें इष्ट गुणित २१६ जोड़ देने से इसके अनेक प्रकार होते हैं॥११॥

उदाहरण—मान लिया इष्ट 'आय' सिंह है (इसको आगे 'आय' प्रकरण में देखें) और ग्रह रोहिणी है, इन दोनों की सहायता से क्षेत्रफल निकालना है, तो आय संख्या ३ में से १ घटा दिया २ इसको १९ से गुणा किया २×१९=३८ इसमें नक्षत्र संख्या ४ जोड़ा ४२ में २७ का भाग दिया शेष १५ रहा, इसके अनुसार १५ वाँ शेष तत्त्व २५ होता है (जैसा ऊपर दिया हुआ है) इसको ८ से गुणा किया २५ × ८ = २००। इसमें आय संख्या ३ जोड़ दिया २०३ यह प्रथम पिण्डमान हुआ। इसी क्षेत्रफल को इष्ट से गुणा कर और २१६ (ऊपर श्लोक की टीका में निर्दिष्ट) को जोड़ देने से अनेक पिण्ड होंगे। जैसे इष्ट क्षेत्रफल २०३×३=६०९ इसमें २१६ जोड़ा ८२५ यह क्षेत्रफल भुजकोटि के घात सम हुआ॥११॥

मेंगनाथमते पिण्डानयनप्रकारः

इष्टभात्यष्टि१७ घातेय आयस्तेनोनितेष्टकः।
त्रिहल्लब्धहतागाश्वियुते चेष्टाय भं भवेत् ॥१२॥

संस्कृतभावार्थः—इष्टनक्षत्रस्य सप्तदशभिर्गुणने प्राप्तमायम् अभीष्टायेन घातयेत्। न भवति चेत् अष्टौ संयोज्य घातयेत्। ततश्च त्रिभिः भाजयित्वा लब्धिमानयेत्। यदि त्रिभि-र्भाजने निरग्रं न भवेत्तर्हि अष्टौ तावद्योजनीयं यावत्त्रिभिर्भाजने निरग्रं न स्यात्। ततश्च लब्धिं सप्तविंशत्या गुणयित्वा पूर्वप्राप्ते गुणनफले योजने इष्टायसम्बद्धं पिण्डं सम्पद्यते॥१२॥

मेंगनाथ के मत से पिण्डानयन प्रकार—इष्ट नक्षत्र और १७ के गुणनफल से जो आय हो, उसको अभीष्ट आय में घटा देना न घटे तो ८ जोड़कर घटाना, उसमें ३ का भाग देकर लब्धि ग्रहण करना, यदि ३ का भाग देने से निरग्र न हो तो एकादि गुणित ८ को तब तक जोड़ता जाय जब तक ३ का भाग देने से निरग्र हो जाय, जब लब्धि को २७ से गुणा करके पूर्व स्थापित गुणनफल में जोड़ देने से इष्ट आयसम्बन्धी पिण्ड होता है॥१२॥

उदाहरण—इष्ट नक्षत्र ४ और इसमें १७ का गुणा करने पर ६८ इसमें ८ का भाग दिया शेष ४ रहा यह गुणनफल सम्बन्धी आय हुआ। इसको इष्ट आय ३ में घटाने से नहीं घटता, इसलिये इसमें ८ जोड़कर११ में से ४ घटाया शेष ७ रहा। यह ३ का भाग देने से निरग्र नहीं हुआ इसलिये १ गुण आठ जोड़ा तो १५ हुआ यह ३ के भाग देने से निरग्र (अर्थात् शेष रहित) हुआ और लब्धि ५ मिली, इसको

२७ से गुणा किया तो १३५ हुआ इसको पूर्व गुणनफल ६८ में जोड़ा तब २०३ यह पिण्ड हुआ।।१२।।

गणैरष्टभिर्हृद्भशेष्यं,
निजायाच्चेत्साष्टकायात्स्वभघ्नं युतं तत्।
स्वभात्याद्रिहत्याऽद्रिदृक्ष्टमिष्टायभोत्थं
फलं भूपदग्युक् पुनश्च ।।१३।।

संस्कृतभावार्थः—इष्टनक्षत्रादि अष्टभिर्भाजने यत् शिष्यते तत् अभीष्टायने घातयेत्। न भवति चेत् अष्टौ योजयित्वा घातयेत्। ततश्च ८१ गुणयेत्। तत्र इष्टनक्षत्रं × १७ इत्यनयोः गुणनफलं योजयेत्। ततः २१६ संख्या भाजने यत् शिष्यते तत् पिण्डमुच्यते। तत्र २१६ संख्यायाः वारं वारं योजने अनेकानि पिण्डानि भवन्ति।।१३।।

इष्ट नक्षत्र आदि को ८ से भाग देकर जो शेष बचे उसको अभीष्ट आय में घटा देना न घटे तो आठ जोड़कर घटाना, उसको ८१ से गुणा करना, उसमें इष्ट नक्षत्र और १७ का गुणनफल जोड़ देना, उसमें २१६ का भाग देना जो शेष बचे वह पिण्ड होगा, उसमें २१६ बार-बार जोड़ने से अनेक पिण्ड होंगे।।१३।।

उदाहरण—इष्ट नक्षत्र ५, इष्ट आय ३, नक्षत्र ४ को ८ से भाग दिया शेष ४ रहा, यह इष्ट आय में नहीं घटता इसलिये ८ जोड़कर ११ हुआ तब इसमें ४ घटाया शेष ७ बचा इसको ८१ से गुणा किया तो ५६७ हुआ, इसमें इष्ट नक्षत्र ४ और १७ का गुणनफल ६८ जोड़ दिया तो ६३५ हुआ, इसमें २१६ का भाग दिया तो शेष २०३ रहा यह पिण्ड हुआ, इसमें २१६ बार-बार जोड़ने पर अनेक पिण्ड बनते जायेंगे।

गणेशदैवज्ञमते पिण्डानयनप्रकारः

नागघ्नेष्टायात्त्यजेदिष्टमृक्षं नोचेद्बाढ्याद्वेदषड्घ्नं च सायम्।
तष्टं षट्स्वर्गैः फलं स्यादमीष्टायर्क्षोत्थं तद्भूपदग्युक्पुनस्तु ।।१४।।

संस्कृतभावार्थः—अष्टगुणिते इष्टाये इष्टनक्षत्रेण भाजयित्वा ततश्च शेषं अभीष्टायेन घातयेत्। न सम्भवति चेत् अष्टयोजनेन घातयेत्। तच्च ८१ संख्यया गुणयेत्। तत्र इष्टनक्षत्रं × १७ इत्यनयोः गुणनफलं योजयेत्। तत्र २१६ भाजयेत्। तत्र २१६ भाजयेत्। यच्छेषं तत् पिण्डं, तत्र २१६ योजने अनेकपिण्डानि भवन्ति।।१४।।

गणेशदैवज्ञ के मत से पिण्डानयन प्रकार—आठ से गुणा किये हुए इष्ट आय में से इष्ट नक्षत्र को घटा दें न घटे तो २७ जोड़कर घटाना शेष को ६४ से गुणाकर आय जोड़ देना, २१६ का भाग देना शेष इष्ट नक्षत्र और इष्टाय सम्बन्धी पिण्ड होगा। इष्ट गुणित में २१६ जोड़ने से अनेक पिण्ड होगे।।१४।।

उदाहरण—इष्ट आय ३ को ८ से गुणा करने पर २४ हुआ, इसमें से इष्ट नक्षत्र ४ को घटाया तो शेष २० रहा, इसको ६४ से गुणाकर गुणनफल में ३ जोड़ा तो १२८३ हुआ, इसमें २१६ का भाग दिया तो शेष २०३ पिण्ड आया।।१४।।

हालुगिदैवज्ञमते पिण्डानयनप्रकारः

व्येकेष्टर्क्षहताद्विबाणशशिनोऽत्यष्टायुतात्तेऽपि च
व्येकेष्टायहतैकनागसहिताः षण्मूर्च्छनाभिर्हताः।
शेषं क्षेत्रफलं भवेदभिमतं स्वेष्टायनक्षत्रगं
स्याद्दैर्घ्यं तदमीष्टविस्तृतिहृतं दैर्घ्योद्धृतं विस्तृतिः ।।१५।।

संस्कृतभावार्थः—मुहूर्तकल्पद्रुमस्य रचयितुः श्रीविट्ठलदीक्षितस्य गुरोः हालुगि-दैवज्ञस्य मते इदं सूत्रम्—इष्टनक्षत्रसंख्यातः एकं न्यूनीकृत्य १५२ संख्यया गुणने तत्र १७ योगे, आये च एकं न्यूनीकृत्य शेषस्य एकाशीत्या गुणने, उभयोश्च योगे २१६ संख्यया च भाजने यच्छेषं तत् इष्टनक्षत्रेष्टायसम्बद्धं पिण्डं भवति। अत्र दैर्घ्येण उद्धृतं विस्तृतिः, विस्तृतिहृतं च दैर्घ्यं भवति।।१५।।

हालुगिदैवज्ञ के मत से पिण्डानयन प्रकार—मुहूर्तकल्पद्रुम के रचयिता श्री विट्ठल दीक्षित के गुरु हालुगि दैवज्ञ का यह सूत्र है कि इष्ट नक्षत्र संख्या में १ कम करके शेष को १५२ से गुणा करे, उसमें १७ जोड़ दें, आय में एक कम करके शेष से ८१ को गुणा करे, दोनों को जोड़कर २१६ का भाग दें, जो शेष होगा वह इष्ट नक्षत्र और इष्ट आय सम्बन्धी पिण्ड होगा। इसमें दीर्घ से ही भाग देने से विस्तार होगा, विस्तार से भाग देने पर दीर्घ होगा।।१५।।

उदाहरण—नक्षत्र संख्या ४ में १ कम किया तो ३ हुआ, इसमें १५२ से गुणा कर ४५६ + १७ जोड़ दिया तो ४७३ हुआ। आय संख्या ३ में से १ कम करने से २ हुआ, इसको ८१ से गुणा कर दिया तो १६२ हुआ। दोनों के योग ६३५ में २१६ का भाग दिया तो शेष २०३ पिण्ड हुआ।।१५।।

श्रीसुधाकरोक्तप्रकारः

इष्टायनन्देन्दुहतिर्भसंख्यया युताऽगयुग्मैर्विहृताथ शेषकम्।
नन्देन्दुगुण्यं नगयुग्मशेषितं सायाच्च शेषाष्टहतिर्हि पिण्डकः ।।१६।।

संस्कृतभावार्थः—इष्टायं त्रिसंख्यायुतं (३) १९ गुणने २७ भाजने शेषञ्च ८ संख्यया गुणने तत्र आययोजने पिण्डराशिः प्राप्यते।।१६।।

श्रीसुधाकर के मत से पिण्डानयन—इष्ट आय को १९ से गुणाकर इष्ट नक्षत्र संख्या को जोड़ दे। फिर २७ का भाग दें शेष को १९ से गुणाकर २७ का भाग दें शेष को ८ से गुणाकर आय जोड़ देने से पिण्ड राशि प्राप्त होगी।।१६।।

उदाहरण—इष्ट आय संख्या ३ को १९ से गुणा करने पर ५७ हुआ इसमें इष्ट

नक्षत्र संख्या ४ जोड़ने से ६१ हुआ, २७ का भाग देने से शेष ७ बचा इसको १९ से गुणा किया तो १३३ हुआ २७ का भाग देने से २५ शेष रहा। इसको ८ से गुणा किया तो २०० हुआ, इसमें आय संख्या ३ जोड़ देने से २०३ पिण्ड हुआ।।१६।।

प्रकारान्तरेण विचारः

नक्षत्रसंख्येन्दुगजान्वितोनिता गजायहत्याऽगकरान्विता मुहुः ।
यथा विशुद्धा दशभाजिता भवेत् सायेन लब्ध्योर्निहतिर्भवेत्फलम् ।।१७।।

संस्कृतभावार्थः—इष्टनक्षत्रसंख्यायां ८१ योगे तत्र च पुनः ८ गुणने आयस्य विघटने पुनः २७ योजयेत्। २७ संख्यां तावत् योजयेत् यावत् दशसंख्याभाजि न भवेत्। दशभिर्भाजने प्राप्तां लब्धिमष्टभिः गुणयित्वा तत्र आययोगे पिण्डसंख्या प्राप्यते।

अन्य प्रकार से पिण्डानयन—इष्ट नक्षत्र संख्या में ८१ जोड़कर इसको ८ से गुणाकर इसमें से आय को घटा दें, शेष में २७ जोड़े ऐसा तब तक करें जब तक १० का भाग पूरा-पूरा न चला जाय, १० के भाग से जो लब्धि प्राप्त हो उसको ८ से गुणाकर आय जोड़ देने से पिण्ड संख्या हो जाती है।।१७।।

उदाहरण—इष्ट नक्षत्र संख्या ४ में ८१ जोड़ने से ८५ हुआ, इसमें कल्पित आय का घात २४ घटाने पर ६१ हुआ, इसमें तब तक २७ जोड़ते रहें जब तक १० का पूरा-पूरा भाग न चला जाय। यथा—७ गुणित २७ = १८९ + ६१ = २५० इसमें १० का भाग देने से लब्धि २५ हुआ, इसको ८ से गुणा किया तो २०० हुआ; इसमें आय संख्या ३ जोड़ दिया तो २०३ पिण्ड हुआ।।१७।।

अष्टघ्नायकमितिर्भतो यदधिका बल्या हता सा क्रमा-
न्नागैरङ्ककुभिर्भहृद्द्रजहतो च्छिष्टाययोगः फलम् ।
स्यात्संसारविचारचारुकुमुदप्रोल्लासकानां सदा
विद्वन्मण्डितमण्डलीषु विदुषां स्वल्पप्रयासेन च ।।१८।।

संस्कृतभावार्थः—इष्टाय अष्टगुणिते यदि गुणनफलं कल्पितनक्षत्रसंख्याधिकं भवति तर्हि कल्पितनक्षत्रसंख्यां गुणनफलेन घातयेत्। शेषञ्च अष्टगुणितं कृत्वा सप्तविंशत्या भाजयेत्। भागशेषमष्टगुणितं कृत्वा गुणनफले इष्टायदाने पिण्डायः सम्भवति। कल्पित-नक्षत्रसंख्या न्यूना भवति चेत् नक्षत्रे गुणनफलं न्यूनीकृत्य शेषम् ऊनविंशत्या गुणयित्वा सप्तविंशत्या भाजयेत्। भागशेषमष्टगुणितं कृत्वा इष्टाययोगे पिण्डमानः सम्पद्यते। इत्थं संसारे विचारकुमुदविकासकानां विदुषामिदं स्वल्पप्रयाससाध्यम्।।१८।।

अन्य प्रकार से पिण्डानयन—इष्ट आय को ८ से गुणा करें, गुणनफल यदि कल्पित नक्षत्रसंख्या से अधिक हो तो कल्पित नक्षत्र को गुणनफल में घटा देना चाहिये, शेष को आठ से गुणा कर २७ का भाग दें, इससे जो शेष हो उसको ८ से गुणा कर गुणनफल में इष्ट आय दें तो पिण्ड आय होगी। यदि कल्पित नक्षत्रसंख्या कम हो तो नक्षत्र में गुणनफल को घटा शेष को १९ से गुणाकर २७ का भाग देना इस शेष को भा ८ से गुणा कर इष्ट आय जोड़ देने पर पिण्डमान होगा। यह प्रकार संसार में विचाररूपी जो उत्तम कुमुद है, उसको विकसित करने में और विद्वन्मण्डली में मण्डित पण्डितों के लिये अल्प प्रयाससाध्य है।।१८।।

१. उदाहरण—इष्ट आय संख्या ३ को ८ से गुणा किया तो २४ हुआ, यह नक्षत्र संख्या ४ से अधिक है अतः २४ में ४ घटाया तो २० हुआ, इसको ८ से गुणा किया तो १६० हुआ, इसमें २७ का भाग देने से शेष २५ रहा, इसको ८ से गुणा किया तो २०० हुआ। इसमें इष्ट आय ३ जोड़ने से २०३ पिण्डमान हुआ।

२. उदाहरण—यदि नक्षत्र संख्या २५ है और इष्ट आय ३ है, इसको ८ से गुणा किया तो २४ हुआ, इसे २५ में से घटाने पर १ शेष रहा, इसको १९ से गुणाकर (१×१९=१९) २७ का भाग दिया (भाग न जाने के कारण) १९ रहा, पुनः इसको ८ से गुणाकर (१५२ + ३= १५५) इष्ट आय जोड़ने से १५५ पिण्डमान हुआ। इसको इष्ट से गुणाकर २१६ जोड़ते जाने से अनेक पिण्डमान हो जायेंगे।

इति पिण्डसाधनप्रकारः

•

रामदैवज्ञमते आयाद्यानयनम्

पिण्डे नवाङ्काङ्गगजाग्निनागनागाब्धिनागैर्गुणिते क्रमेण ।
विभाजिते नागनगाङ्कसूर्यनागर्क्षतिथ्यर्क्षखभानुभिश्च ।।१।।
आयो वारोंऽकऽशको द्रव्यमृणमृक्षं तिथिर्युतिः ।
आयुश्चाथ गृहेशर्क्षं गृहभैक्यं मृतिप्रदम् ।।२।।

संस्कृतभावार्थः—पूर्वोक्तप्रकारेण प्राप्तं गृहपिण्डं नवस्थानेषु निर्दिष्टक्रमेण ९-९-६-८-३-८-८-४-८ निवेश्य इमान् अङ्कान् पृथक्-पृथक् गुणयित्वा गुणनफले ८-७-९-१२-८-२७-१५-२७-१२० अङ्कैः भाजने यत् शिष्यते तत् क्रमशः आय-वार-अंश-द्रव्य-ऋण-नक्षत्र-तिथि-योग-आयूषि भवति। शेषमुदाहरणं तालिकायां स्पष्टम्।

रामदैवज्ञ के मत से आयाद्यानयन प्रकार—पूर्वोक्त प्रकार से निकाले गये गृहपिण्ड को ९ स्थानों में निर्दिष्ट क्रम से ९।९।६।८।३।८।८।४।८ से रखकर इन अंकों से अलग-अलग गुणा करके गुणनफल में ८।७।९।१२।८।२७।१५।२७।१२०। अंकों से भाग देने पर जो शेष बचे वह क्रम से आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु है। शेष उदाहरण तालिका में देखें।।१-२।।

उदाहरणम्

क्र.सं.	ग्रहपिण्ड	गुणक	गुणनफल	भाजक	लब्धि	शेष	संज्ञा
१.	२०३	× ९	= १८२७	÷ ८	= २२८	३	आय
२.	२०३	× ९	= १८२७	÷ ७	= २६१	०	बार
३.	२०३	× ६	= १२१८	÷ ९	= १३५	३	अंश
४.	२०३	× ८	= १६२४	÷ १२	= १३५	४	द्रव्य
५.	२०३	× ३	= ६०९	÷ ८	= ६७	२	ऋण
६.	२०३	× ८	= १६२४	÷ २७	= ६०	४	नक्षत्र
७.	२०३	× ८	= १६२४	÷ १५	= १०८	४	तिथि
८.	२०३	× ४	= ८१२	÷ २७	= ३२	१८	योग
९.	२०३	× ८	= १६२४	÷ १२०	= १३	६४	आयु

टोडरानन्दमते आयानयनम्

विस्तारेण हतं दैर्घ्यं विभजेदष्टभिस्ततः ।
यच्छेषं स भवेदायो ध्वजाद्यास्तेस्युरष्टधा ॥३॥
ध्वजोधूम्रोहरिश्वागौः खरेभौ वायसोऽष्टमः ।
पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः ॥४॥

संस्कृतभावार्थः—भूविस्तारेण तद्दैर्घ्यं गुणयित्वा अष्टभिर्भाजने यच्छेषं तत् ध्वजादिक्रमेण आयः भवति। यथा—एकशेषे ध्वजः आयः, द्विशेषे धूम्रः आयः, त्रिशेषे सिंहः आयः, चतुश्शेषे श्वान आयः, पञ्चशेषे गौः, षट्शेषे गर्दभः, सप्तशेषे हस्ती, अष्टशेषे काकश्च आयः भवति। केषाञ्चिन्मते काकस्थाने उष्ट्रः अष्टशेषे आयः भवति।।३-४।।

टोडरानन्द के मत से आयानयन—भूमि के विस्तार से उसकी लम्बाई को गुणा करके ८ का भाग दें, जो शेष रहे वह ध्वजादि क्रम से आय होगा। यथा—१ शेष में ध्वज, २ में धूम, ३ हरि (सिंह), ४ श्वान, ५ गाय, ६ गधा, ७ हाथी, ८ कौआ। किसी के मत में कौआ के स्थान में उष्ट्र है।।३-४।।

एतेषां फलानि

कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनतासुखम् ।
रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात् ॥५॥

संस्कृतभावार्थः—ध्वजाये कीर्तिः, धूमाये शोकः, सिंहाये: जयः, श्वानाये वैरं, गवाये धनं, खराये धनाभावः, हस्त्याये सुखं, काकाये रोगश्च फलं भवति।।५।।

आय का फल—ध्वज आय में कीर्तिः, धूम आय में शोक, सिंह आय में जय,

श्वान आय में वैर, गौ आय में धनप्राप्ति, खर आय में निर्धनता, हाथी आय में सुख, कौआ आय में रोग की प्राप्ति होती है।।५।।

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८
आयनाम	ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	गाय	खर	गज	कौआ
फल	कीर्ति	शोक	जय	वैर	धन	निर्धनता	सुख	रोग

आयानां स्वरूपाणि

ध्वाङ्क्षः शिल्पितपस्विनां हितकरस्तेषां मुखं नामवद्
ध्वाङ्क्षः काकमुखो विडालवदनो धूमो ध्वजो मानुषः ।
सर्वे पक्षिपदा हरेरिव गला हस्ता नरस्येव तत्
प्राच्याः सृष्टिगताः क्रमेण पतयो ह्यष्टौ च ते तन्मुखाः ॥६॥

संस्कृतभावार्थः—काकायः शिल्पिनां तापसानाञ्च गृहे शुभः। अस्यायस्य मुखे काकस्येव भवति। धूमायस्य विडालस्येव, सिंहस्य मनुष्यस्येव, शेषाणां स्वनामानुरूपं मुखं भवति। सर्वेषां चरणः पक्षिणाम् इव कण्ठः सिंहानामिव हस्तश्च मनुष्याणाम् इव भवति। पूर्वादिदिक्क्रमेण आयः बली भवति। एतद्दिशाभिमुखमेव एतन्मुखमपि भवति। अतः गृहमुखमपि एतन्मुखानुसारमेव कार्यम्।।६।।

आय का स्वरूप—ध्वाङ्क्ष (कौआ) नामक आय शिल्प और तपस्वियों के घर के लिये शुभ होता है। ध्वाङ्क्ष आय का मुख कौए के सदृश होता है, धूम का विडाल के सदृश, सिंह का मनुष्य के सदृश, शेष आयों का स्वरूप अपने नाम के अनुरूप होता है, सब के पैर पक्षियों जैसे, सिंह के सदृश गला और मनुष्य के जैसे हाथ हैं। पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से आय बली होते हैं। इन्हीं दिशाओं में इनका मुख भी होता है। अतः घर का मुख भी इनके अनुसार करें।।६।।

जातिक्रमेण ग्राह्यायाः

अग्रजानां ध्वजायः स्याद् ध्वजकुञ्जरगोमृगाः ।
क्षत्रस्य ध्वजसिंहेभा वैश्यस्य शुभदाः स्मृताः ॥७॥
ध्वजो मृगादिः शूद्राणां सर्वेषां वृषभः शुभः ।
हीनजातेः समा देयाः सूक्ष्मकृत्येऽङ्गुलात्मकः ॥८॥

संस्कृतभावार्थः—ब्राह्मणानां ध्वजः, क्षत्राणां ध्वजकुञ्जरगोमृगाः, विशां ध्वजसिंहगजाः, शूद्राणां ध्वजः मृगश्चेति आयः शुभफलदः भवति। प्रायः गौः आयः सर्वशुभदः। निम्नजातीनां समसंख्याकाः आयाः शुभाः। सूक्ष्मकृत्ये पिण्डग्रहणं कृत्वा आयः साधनीयः।।७-८।।

जातियों के अनुसार आय का निर्धारण—ब्राह्मणों के लिये ध्वज आय,

क्षत्रियों के लिये ध्वज कुञ्जर, गो और मृग, वैश्यों के लिये ध्वज, सिंह और गज तथा शूद्रों के लिये ध्वज और मृग आदि आय शुभदायक होता है। सामान्य रूप से वृष (गो) आय सबके लिये शुभ होता है। हीन जातियों के लिये सम (२।४।६।८) आय अच्छे होते है। सूक्ष्मकृत्य में अंगुल भर का पिण्ड ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् १ हाथ या इससे कम वस्तु का अंगुल प्रमाण पिण्ड का साधन कर आय साधन करे।।७-८।।

राशिपरत्वेन आयविचारः

कर्कवृश्चिकमीनानां ध्वजायः शुभदो मतः।
वृषभायः शुभः प्रोक्तो मेषसिंहधनुर्भृताम् ।।९।।
तुलामिथुनकुम्भानां गजायो वाञ्छितप्रदः।
वृषकन्यामृगाणाञ्च सिंहायः शुभदो भवेत् ।।१०।।

संस्कृतभावार्थः—कर्कवृश्चिकमीनराशीनां ध्वजायः, मेषसिंहधनूराशीनां वृषायः, वृषकन्यामकरराशीनां सिंहायः, मिथुनतुलाकुम्भराशीनां गजायः शुभः भवति।।९-१०।।

राशियों के अनुसार आय का विचार—कर्क, वृश्चिक, मीन राशि वालों के लिये 'ध्वज' आय, मेष, सिंह, धन राशि वालों के लिये 'वृष' (गो) आय, वृष, कन्या, मकर राशि वालों के लिये 'सिंह' आय और मिथुन राशि वालों के लिये 'गज' आय शुभ फलदायक होता है।।९-१०।।

ग्राह्यवाराः

सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः।
शेषग्रहाणां वारांशाः कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदाः ।।११।।

संस्कृतभावार्थः—सूर्यमङ्गलवार-राशि-अंशाः सदा अग्निभयदाः। शिष्टानां ग्रहाणां वारः राशिः अंशश्च गृहस्वामिनः मनोरथं साधयन्ति।।११।।

ग्रहों के शुभ दिन अथवा अंश—सूर्य और मंगल के वार राशि अंश सदैव अग्निभयकारक होते हैं, शेष ग्रह—चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के वार आदि गृहपति के मनोरथों की सिद्धि करते हैं।।१११।।

प्रकारान्तरेण आयविचारः

ध्वजे बहुधनं प्रोक्ता धूम्रे चैव भ्रमो भवेत्।
सिंहे च विरलालक्ष्मीः श्वाने च कलहो भवेत् ।।१२।।
धनं धान्यं वृषे चैव खरेषु स्त्रीविनाशनम्।
गजाख्ये पुत्रलाभश्च ध्वांक्षे सर्वत्रशून्यता ।।१३।।
स्वस्वस्थाने ध्वजः श्रेष्ठो गजः सिंहस्तथावृषः।
ध्वजः सर्वगतो देयो वृषं नान्यत्र दापयेत् ।।१४।।

वृष-सिंह-गजाश्चैव पुटकर्पटकोटयोः।
द्वीपः पुनः प्रयोक्तव्योः वापी-कूप-सरःसु च ।।१५।।
मृगेन्द्रमासनेवद्याच्छयनेषु पुनर्गजः।
वृष भोजनापात्रेषु छत्रादिषु पुनर्ध्वजम् ।।१६।।
अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहे वह्न्युपजीविनाम्।
धूमं नियोजयेत् केच्छ्विानं म्लेच्छादि जातिषु ।।१७।।
खरो वेश्यागृहे शस्तो ध्वाङ्क्षः शेषकुटीषु च।
वृषसिंहगजाश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु ।।१८।।

संस्कृतभावार्थः—ध्वजाये धनलाभः, धूमे भ्रमः, सिंहे लक्ष्मीः, श्वाने कलहः, वृषे धनधान्यलाभः, खरे स्त्रीनाशः, गजे पुत्रलाभः, काके अशुभञ्च भवति। स्वस्वस्थानेषु यद्यपि सर्वे आयाः शुभाः भवन्ति तथापि ध्वज-गज-सिंह-वृषायाः विशेषेण शुभाः। ध्वजाय सर्वत्र देयः। वृषः स्वस्थानादन्यत्र न देयः। वृषसिंहगजायाः पुटकर्पटकोटेषु देयाः। गजायाः वापीकूपतडागेषु देयः। अग्निसम्बद्धेषु कार्येषु गृहेषु अग्निजीविकानां च धूमः आयः श्रेष्ठः। म्लेच्छादीनां धूमायः, वेश्यानां खरायः, कुट्यादिषु काकायः, प्रासाद-गो-गृहेषु वृषसिंहगजायः श्रेष्ठः।।१२-१८।।

अन्य प्रकार से आयविचार—ध्वज में पर्याप्त धनलाभ, धूम्र में भ्रम, सिंह में विशेष लक्ष्मी, खान में कलह, वृष में धन-धान्यलाभ, खर में स्त्रीविनाश, गज में पुत्र-लाभ, वायस (कौआ) में सर्वत्र शून्यता समझें।

अपने-अपने स्थान में यद्यपि सब आय श्रेष्ठ होते हैं; फिर भी ध्वज, गज, सिंह और वृष ये आय विशेष श्रेष्ठ होते हैं। ध्वज को सर्वत्र दें, वृष को अन्यत्र न दें फिर भी वृष, सिंह, गज आय को पुट, कर्पट और कोट में देना चाहिये एवं गज आय को वापी कूप और तालाब में देना चाहिये। अग्निसम्बन्धी कार्य वाले घरों में तथा अग्नि से जीविका चलाने वाली जातियों को भी धूम आय श्रेष्ठ होता है। म्लेच्छादि जातियों के लिये धूम आय, वेश्या के लिये खर आय, कुटी आदि में वापस, प्रासाद, ग्राम, गृह से वृष, सिंह, गज आय श्रेष्ठ होता है।।१२-१८।।

वसिष्ठमते आयविचारः

गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम्।
अश्वालयं ध्वजाये च खराये वृषभेऽपि वा ।।१९।।
उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं गजाये च वृषे ध्वजे।
पशु-सद्म-वृषाये च ध्वजाये वा शुभप्रदम् ।।२०।।
शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः।
अन्यत्र छत्रवस्त्राणां वृषाये वा ध्वजेऽपि वा ।।२१।।

पादुकोपानहौ कार्यौ सिंहाख्येऽप्यथवा ध्वजे।
उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां ध्वजः शुभः ॥२२॥

संस्कृतभावार्थः—हस्तिशालायां गजायः ध्वजायः च; अश्वशालायां ध्वजखरवृषायाः, उष्ट्रशालायां गजवृषध्वजायाः, सामान्यपशुशालायां वृषध्वजायौ, शयनगृहे वृषायः, पीठे सिंहायः शुभः। छत्रवस्त्रादिषु वृषध्वजायौ पादुकानां कृते सिंहध्वजायौ शुभौ भवतः। अत्र विस्तरभयात्सर्वविधानां मन्दिराणामुल्लेखो न कृतः। येषामकृतः तेषां ध्वजः शुभो भवति।

वसिष्ठ के मत से आय का विचार—हस्तिशाला बनाने में गज और ध्वज आय घुड़शाल कें लिये। ध्वज, खर, वृष आय, ऊँट के लिये। गज, वृष, ध्वज आय सामान्य पशुशाला के लिये। वृष, ध्वज, आय शयन गृह के लिये। वृष आय पीठ (बैठक गृह) के लिये। सिंह आय उत्तम होता है। छत्र, वस्त्रों के लिये वृष, ध्वज आय, पादुका (जूता) के लिये सिंह, ध्वज आय और जिनका उल्लेख नहीं किया गया है उनके लिये ध्वज आय शुभ होता है।।१९-२२।।

च्यवनमते आयविचारः

महानसेऽग्निशालायां गृहे वाग्न्युपजीविनाम्।
धूमं दद्यात्तथाश्वानं यवनान्त्यजयोर्गृहे ॥२३॥
खरो वेश्यागृहे योज्यो ध्वांक्षः पक्षिपतेर्गृहे।
वृषं सिंहं गजं दद्यात्प्रासादे पुरमन्दिरे ॥२४॥
वस्त्रेषु धर्मशालायां कुम्भस्तम्भे ध्वजे ध्वजः।
गोगजोभूगृहे देयः साधारणतृणौकसि ॥२५॥
मन्त्रे शस्त्रे रथे सिंहो भाण्डागारे शुभो गजः।
धान्याम्बुस्थानगोश्वेभशालायां वृषभः शुभः ॥२६॥

संस्कृतभावार्थः—पाकशालायां अग्निस्थानेषु अग्न्याजीवेषु धूम्रायः शुभः। यवनान्त्यजानां श्वानायः, वेश्यानां खरायः, लुब्धानां काकायः, प्रासादनगरमन्दिराणां वृषसिंहगजायाः, वस्त्रगृहधर्मशालाकुम्भस्तम्भध्वजारोहणेषु ध्वजायः, मृत्तृणादिगृहे गोध्वजायौ, यन्त्रशास्त्ररथागारेषु सिंहायः, भाण्डागारे गजायः, धान्यस्थानेषु जलाशयेषु च गौः आयः। वाजिशालाहस्तिशालासु वृषायः शुभो भवति।।२३-२६।।

च्यवन के मत से आय का विचार—रसोईघर, अग्निशाला और आग से आजीविका करने वालों को धूम आय, यवन तथा अन्त्यजों को खान आय, वेश्या गृह के लिये गधा आय, बहेलिया के लिये ध्वांक्ष (कौआ) आय, प्रासाद, पुर, मन्दिर के लिये वृष, सिंह, गज आय, वस्त्रगृह, धर्मशाला, कुम्भस्तम्भ, ध्वजारोहण के लिये ध्वज आय, मिट्टी के घर तथा तृण गृह के लिये गो एवं गज आय, यन्त्र, शस्त्र, रथ

के लिये सिंह आय, भाण्डागार के लिये गज आय, धान्य स्थान तथा जलाशय के लिये गो आय, घुड़शाल, गजशाला के लिये वृष आय श्रेष्ठ होता है।।२३-२६।।

इति आयविचारः

•

अथ गणनाविचारः

मेलापकादौ नामराशिप्रधानत्वम्

देशग्रामगृहज्वरव्यवहृतिषु दाने मनौ।
सेवाकाकिणिवर्गसङ्गरपुनर्भूमेलके नामभम् ॥१॥

संस्कृतभावार्थः—देशग्रामगृहज्वरव्यवहारदानमन्त्रसेवाकाकिणीवर्गशुद्धिसंग्रामपुनर्विवाहेषु नामराशिद्वारा एव विचारः कार्यः।।१।।

मेलापक आदि में नामराशि की प्रधानता—देश, ग्राम, गृह, ज्वर, व्यवहार, दानकार्य, मन्त्रप्रयोग, नौकरी में काकिणी-विचार, वर्गशुद्धि, संग्राम और पुनर्भूमेलापक में नामराशि से ही विचार करना चाहिये।।१।।

गृहमेलनादौ राशिज्ञाने विशेषः

अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम्।
मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम् ॥२॥

संस्कृतभावार्थः—अश्विन्यादित्रयं मेषराशौ, मघादित्रयं सिंहराशौ, मूलादित्रयं धनुराशौ, शिष्टा राशयः नक्षत्रद्वययुक्ताः भवन्ति। इदमपि मेलनं विवाहवत् कार्यम्।।२।।

गृहमेलनादौ राशिज्ञाने विशेषः—अश्विनी सहित ३ नक्षत्र मेष राशि, मघा सहित २ नक्षत्र सिंह राशि और मूल सहित ३ नक्षत्र धनराशि होती है, शेष राशियाँ दो-दो नक्षत्र की होती हैं। यह मेलापक विवाह की भाँति करना चाहिये।।२।।

गृहनक्षत्रविचारः

त्रिभिस्त्रिभिर्वेश्मनि कृत्तिकाद्यैरुद्वेगपुत्राप्तिधनाप्तिशोकम्।
शत्रोर्भयं राजभयं च मृत्युः सुखं प्रवासश्च नवप्रभेदाः ॥३॥

संस्कृतभावार्थः—गृहनक्षत्रविचारे कृत्तिकादि नक्षत्रात् गणना क्रियते। कृत्तिकादित्रयं उद्वेगः, आर्द्रादित्रयं सन्ततिप्राप्तिः, आश्लेषादित्रयं धनप्राप्तिः, उत्तराफाल्गुन्यादित्रयं शोकः, स्वात्यादित्रयं शत्रुभयं, ज्येष्ठादित्रयं राजभयं, उत्तराषाढादित्रयं मृत्युः, शतभिषगादित्रयं सुखं, रेवत्यादित्रयं प्रवासं भवति।।३।।

गृहनक्षत्र-विचार—कृत्तिका से तीन-तीन नक्षत्रों की गणना करके चक्र में स्थापित करे, कृत्तिका से मृगशिरा तक उद्वेग (तनाव), आर्द्रा से पुष्य तक पुत्रप्राप्ति (सन्तानप्राप्ति),

आश्लेषा से पूर्वाफाल्गुनी तक धनप्राप्ति (उस गृह में खुदाई के समय अथवा गृहनिर्माण के बाद धन की प्राप्ति), उत्तराफाल्गुनी से चित्रा तक शोक, स्वाती से अनुराधा तक शत्रुभय, ज्येष्ठा से पूर्वाषाढ़ा तक राजभय, उत्तराषाढ़ा से धनिष्ठा तक मृत्यु अथवा मृत्युतुल्य कष्ट, शतभिषा से उत्तराभाद्रपद तक सुख तथा रेवती से भरणी तक के नक्षत्रों में प्रवास होता है।।३।।

गृह नक्षत्र	कृति रोहि. मृग.	आर्द्रा पुन. पुष्य	आश्ले. मघा पू.फा.	उ.फा. हस्त चित्रा	स्वाती विशा. अनु.	ज्येष्ठा मूल पू.षा.	उ.षा. श्रवण धनि.	शत. पू.भा. उ.भा.	रेवती अश्वि भरणी
फल	उद्वेग	पुत्र प्राप्ति	धन-प्राप्ति	शोक	शत्रु-भय	राज-भय	मृत्यु	सुख	प्रवास

रामदैवज्ञमते योनिविचारः

अश्विन्यम्बुपयोर्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः
सिंहो वस्वजपाद्भयोस्समुदितो याम्यान्त्ययोः कुञ्जरः ।
मेषो देवपुरोहिताऽनलभयोः कर्णाम्बुनोर्वानरः
स्याद्वैश्वाभिजितोस्तथैव नकुलश्चान्द्राब्जयोऽन्योरहिः ॥४॥
ज्येष्ठामैत्रभयोः कुरङ्ग उदितो मूलार्द्रयोः श्वा तथा
मार्जारोऽदितिसार्पयोरथ मघायोन्योस्तथैवोन्दुरुः ।
व्याघ्रो द्वीशभचित्रयोरपि च गौरर्यम्णबुधन्यर्क्षयो-
र्योनिः पादगयोः परस्परमहावैरं भयोऽन्त्यस्त्यजेत् ॥५॥

संस्कृतभावार्थः—(नक्षत्रयोनयः) अश्विनीशतभिषानक्षत्रयोः अश्वः, स्वातीहस्त-नक्षत्रयोः महिषः, धनिष्ठापूर्वाभाद्रपदयोः सिंहः, भरणीरेवत्योः गजः, पुष्यकृत्तिकयोः मेषः, श्रवणपूर्वाषाढयोः वानरः, उत्तराषाढाभिजितो नकुलः, मृगशिरोरोहिण्योः सर्पः, ज्येष्ठानुराधयोः हरिणः, मूलार्द्रयोः श्वानः, पुनर्वस्वाश्लेषयोः विडालः, माघपूर्वफाल्गुन्योः मूषकः, विशाखा-चित्रयोः व्याघ्रः, उत्तरफाल्गुन्युत्तरभाद्रपदयोः गौः योनिः। श्लोके प्रतिपादं एकैका योनिरुक्ता।

रामदैवज्ञ के मत से योनिविचार—निम्नलिखित चक्र से उपर्युक्त श्लोकों का अर्थ स्पष्ट है और अन्तिम कोष्ठक में निर्दिष्ट वैर योनियाँ सर्वथा त्याज्य होती हैं।।४-५।।

निम्नलिखित चक्र से उपर्युक्त श्लोकों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। अन्तिमकोष्ठक में निर्दिष्ट वैरयोनियाँ सर्वथा त्याज्य होती हैं।

रामदैवज्ञमते ग्रहमैत्रीविचारः

मित्राणि द्युमणेः कुजेज्यशशिनः शुक्रार्कजौ वैरिणौ
सौम्यश्चास्य समो विधोर्बुधरवी मित्रे न चास्य द्विषत् ।

नक्षत्र	आश्व. शत	स्वाती हस्त	धनि. पू.भा.	भरणी रेवती	पुष्य कृति.	श्रव पू.षा.	उ.षा. अभि.
योनि	हय	महिष	सिंह	मेष	गज	वानर	नकुल
वैर	दोनों का परस्पर		वही		वही		वही

नक्षत्र	रोहि. मृग	अनु. ज्येष्ठा	मूल आर्द्रा	पुन. श्ले.	मघा पू.फा.	चित्रा विशा.	उ.फा. उ.भा.
योनि	सर्प	मृग	श्वान	मार्जार	मूषक	व्याघ्र	गौ
वैर	वही	वही		वही		वही	

शेषाश्चास्य समाः कुजस्य सुहृदश्चन्द्रेज्यसूर्या बुधः
शत्रुः शुक्रशनी समौ च शशभृत्सूनोः सिताऽहस्करौ ॥६॥
मित्रे चास्य रिपुः शशी गुरुशनिक्ष्माजाः समा गीष्पते-
मित्राण्यर्ककुजेन्दवो बुधसितौ शत्रू समः सूर्यजः ।
मित्रे शौम्यशनी कवेः शशिरवी शत्रू कुजेज्यौ समौ
मित्रे शुक्रबुधौ शनेः शशिरविक्ष्माजा द्विषोऽन्यः समः ॥७॥

संस्कृतभावार्थः—शत्रू मन्दसिताविति। रवेरादित्यस्तमन्दः सौरः सितः शुक्रः एतौ द्वौ शत्रू रिपू शशिजो बुधः समो मध्यस्थः न शत्रूर्न मित्रमुदासीन इत्यर्थः। शेषाः ग्रहा-श्चन्द्राङ्गारकगुरवो मित्राणीति। तीक्ष्णांशुरित्यादि। शीतगोश्चन्द्रमसः तीक्ष्णांशुः सूर्यः हिमरश्मिजो बुधः एतौ द्वौ सुहृदौ मित्रे शेषाः समा एव भौमजीवशुक्रसौराः समा मध्यस्था उदासीना इत्यर्थः। जीवेन्दूष्णकरा इति। कुजस्य भौमस्य जीवो बृहस्पतिः इन्दुश्चन्द्रः उष्णकरः सूर्यः एते सुहृदो मित्राणि ज्ञो बुधः अरिः शत्रुः सितार्कि शुक्रसौरौ समौ मध्यस्थाविति। मित्रे सूर्यसिताविति। सूर्यो रविः सितः शुक्रः एतौ द्वौ बुधस्य मित्रे सुहृदौ, हिमगुश्चन्द्रमाः शत्रुररिः, अपरेऽन्ये भौगुरुसौरा समा मध्यस्था इति। सूरेरित्यादि। सूरेर्बृहस्पतेः सौम्यो बुधः सितः शुक्रः एतावरी शत्रूः रविसुतः सौरो मध्यस्थ अपरे अन्ये रविचन्द्रभौमाः अन्यथा मित्राणीत्यर्थः। सौम्यार्कीत्यादि। शुक्रस्य सौम्यार्की बुधसौरौ सुहृदौ मित्रे कुजो भौमः गुरुर्जीवः एतौ द्वौ समौ मध्यस्थौ। शेषावादित्यचन्द्रावरी शूत्र। शुक्रज्ञावित्यादि। सौरस्य शनेः शुक्रज्ञो सितबुधौ सुहृदौ मित्रे, सुरगुरुजीवः समो मध्यस्थः अन्येऽपरे रविशशिभौमाः अरयः शत्रवः। ये प्रोक्ता इत्यादि।।६-७।।

रामदैवज्ञ के मत से ग्रहमैत्री चक्र—सूर्य के शनि-शुक्र शत्रु, बुध सम व शेष ग्रह मित्र है। चन्द्रमा के सूर्य-बुध मित्र और शेष सभी सम है। मंगल के सूर्य-चन्द्र-गुरु मित्र, बुध शत्रु व शेष ग्रह सम है। बुध के सूर्य-शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु व शेषग्रह सम है। गुरु के बुध-शुक्र शत्रु, शनि सम व शेषग्रह मित्र है। शुक्र के बुध-शनि मित्र,

मंगल-गुरु सम व शेष ग्रह शत्रु है। शनि के शुक्र बुध मित्र, गुरु सम व शेषग्रह शत्रु है।।६-७।।

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	वृहस्पति	शुक्र	शनि
मित्र	चं.मं.वृ.	बु.सू.	सू.चं.वृ	सू.शु.	सू.चं.मं.	बु.श.	शु.बु.
सम	बुध	म.वृ. शु.श.	शु.श.	वृ.श.मं.	शनि	मं.वृ.	बृहस्पति
शत्रु	शु.श.	×	बुध	चन्द्र	बु.शु.	सू.चं.	सू.चं.मं.

नाडीविचारः

आवृत्तिभिर्भैस्त्रिभिरश्विभाद्यं क्रमोत्क्रमात् सङ्गणयेदुडूनि ।
यदेकपर्वण्युभयोश्च हर्म्यं हर्म्ये शयोर्भेऽति शुभं तदा स्यात् ॥८॥

संस्कृतभावार्थः—उक्तनाड़ीविचारः गृहनक्षत्रानुसारं गृहस्वामिनक्षत्रानुसारं वा क्रियते। गृहस्वामिनोः आदिमध्यान्त्येषु क्वचित् एका नाड़ी भवति चेत् सोत्तमा। नाड़ीविचारे नक्षत्रक्रमः सर्पाकारो भवति।।८।।

नाड़ी-विचार—उक्त नाडी-विचार गृहनक्षत्र तथा गृहपति के नक्षत्र के साथ किया जाता है। गृह तथा गृहपति की आदि मध्य अन्त्य में से कोई एक नाड़ी पड़ जाय तो उत्तम होता है। नाडी विचार में नक्षत्रों का क्रम सर्पाकार चलता हैं। जैसा चक्र द्वारा स्पष्ट हैं।।८।।

नाडीचक्रम्

आदि	अश्वि.	आर्द्रा	पुन.	उ.फा.	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शत	पू.भा.
मध्य	भरणी.	मृग.	पुष्य.	पू.फा.	चित्रा	अनु.	पू.षा.	धनि.	उ.भा.
अन्त्य	कृत्ति.	रोहि.	श्ले.	मघा	स्वाती	विशा.	उ.षा.	श्रवण	रेवती

गृहारम्भे गृहमेलनादिविचारः

विवाहोक्तान् महादोषानृते यामित्रशुद्धितः ।
रिक्ताकुजार्कवारौ च चरलग्नं चरांशकम् ॥९॥
गुरुशुक्रार्कचन्द्रेषु स्वोच्चादिबलशालिषु ।
गुर्वर्किन्दुबलं लब्ध्वा गृहारम्भः प्रशस्यते ॥१०॥

संस्कृतभावार्थः—यामित्रशुद्धो विवाहोक्तमहादोषान् रिक्ततिथीः रविकुजवारो चरलग्न-नवांशौ च त्यक्त्वा रविचन्द्रगुरुकविषु उच्चेषु बलवत्सु वा कृतो गृहारम्भः शुभाय भवति।

गृहारम्भ में गृहमेलापक का विचार—यामित्र के शुद्ध होने पर, विवाहोक्त महादोषों, रिक्ता तिथियों (४,९,१४) रविवार, मंगलवार, चर लग्न तथा चरनवांश को छोड़कर सूर्य, चन्द्र, गुरु, शुक्र के उच्च एवं बलवान् होने पर किया गया गृहारम्भ शुभ होता है।

एकनाडीप्राशस्त्यम्

सर्वं विवाहवज्ज्ञेयं विपरीता तु नाडिका ।
एकनाडी यदा यातस्त्वन्यमेव न चिन्तयेत् ॥११॥

संस्कृतभावार्थः—वरकन्ययोः कुण्डलीमेलनमिव गृहमेलनं भवति। यदि गृहतत्स्वामिनोः एकनाड़ी भवति तदा अन्ये विषयाः न विचारणीयाः यतः इदमशुभं भवति।।११।।

एक नाड़ी का फल—वर-कन्या की कुण्डली के मिलान के समान ही गृह-मेलापक भी होता है, यदि गृह और गृहपति की एक नाड़ी हो तो फिर अन्य विषयों का विचार न करें।।११।।

मुहूर्तमार्तण्डे आयादिविचारे विशेषः

द्वात्रिंशाधिकहस्तमब्धिवदनं तार्णं त्वलिन्दादिकम् ।
नैष्वायादिकमीरितं तृणगृहं नान्येषु गेहेष्विदम् ॥१२॥

संस्कृतभावार्थः—द्वात्रिंशत् करमानादधिकविस्तारे गृहे, चतुद्वरि तृणगृहे, अलिन्दे च आयादिविचारः न कार्यः।।१२।।

मुहूर्त्तमार्त्तण्ड के अनुसार आयादि विचार का निषेध—जो गृह ३२ हाथ से अधिक विस्तृत हो अथवा जिसमें ४ दरवाजे हों या घास-फूस के घर में और अलिन्द आदि में भी आयादि का विचार नहीं करना चाहिये।।१२।।

एवमेव चिन्तामणौ

यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम् ।
न तत्र चिन्तयेद् विद्वान् गुणानायव्ययादिकम् ॥१३॥

संस्कृतभावार्थः—द्वात्रिंशदधिकरविस्तारे गृहे विद्वद्भिः आयादिविचारो न कार्यः।

चिन्तामणि के अनुसार आयादि विचार का निषेध—जिस घर का विस्तार ३२ हाथ से अधिक हो, उसमें विद्वज्जन आयादि गुणों का विचार नहीं करते।।१३।।

तथैव वसिष्ठः

एकादशयवादूर्ध्वं द्वात्रिंशद्धस्तकावधि ।
तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत् ॥१४॥

संस्कृतभावार्थः—एकादशयवादधिकं द्वात्रिंशत्करपर्यन्तमेव आयादिं विचारयेत्। नैतन्न्यूनं नाप्यधिकम्। १२-१३-१४ श्लोकोक्तविषयाः न विद्वद्भिः आद्रियन्ते तेषां प्रौढ़वादत्वात्।

वसिष्ठ के मत से आयादि-विचार—११ जौ से अधिक और २२ हाथ के भीतर ही आयादि का विचार करना चाहिये, इसके बाद आगे नहीं। उपर्युक्त १२-१४ श्लोक के मत का विद्वान् समादर नहीं करते; क्योंकि इनके वचन प्रशंसामात्र हैं।

तृणादिगेहेषु शिलान्यासनिषेधः

आयव्ययौ च भूशुद्धिं तृणगेहे न चिन्तयेत्।
शिलान्यासादि नो कुर्यात् तथागारे पुरातने ॥१५॥

संस्कृतभावार्थः—प्राचीनगृहे जीर्णोद्धारसमये तृणगृहे शिलान्यासः शास्त्रनिषेधः।

तृणादिगृह में शिलान्यास का निषेध—प्राचीन गृह के जीर्णोद्धार में तथा तृणगृह के निर्माण में शिलान्यासादिक का शास्त्र निषेध करता है।।१५।।

ग्रहाणाम् अंशेशविधिः

गृहपिण्डरसैर्गुण्यं ग्रहैश्चापि विभाजितम्।
यच्छेषं तद्भवेदंशास्तस्यैशाश्चापि कीर्तिताः ॥१६॥
अर्कश्चन्द्रः कुजोराहुर्जीवमन्दज्ञकेतवः।
भृगुपुत्रक्रमेणैव अंशाधीशाः प्रकीर्तिताः ॥१७॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपिण्डं त्रिभिः गुणयित्वा नवभिः भागे शिष्यः क्रमेण सूर्यादि-ग्रहांशस्वामिनो भवति। यदा एकशेषे सूर्यः, द्विशेषे चन्द्रः, त्रिशेषे कुजः, चतुश्शेषे राहुः, पञ्चशेषे गुरुः, षट्शेषे शनिः, सप्तशेषे केतुः नवशेषे शुक्रः अंशेशः भवति।

ग्रहों की अंशेश विधि—गृहपिण्ड को ३ से गुणा करके ९ का भाग दें जो शेष बचेगा उसके क्रम से सूर्यादि ग्रह अंशों के स्वामी होंगे। यथा—१ शेष में सूर्य, २ में चन्द्रमा, ३ में मंगल, ४ में राहु, ५ में गुरु, शनि, ७ में बुध, ८ में केतु और ९ में शुक्र—ये ग्रह अंशेश होते हैं।।१६-१७।।

पिण्डाद् द्रव्यानयनप्रकारः

पिण्डाष्टगुणितश्चात्र सूर्यैश्चापि विभाजितम्।
अवशिष्टं भवेद्द्रव्यं तत्तन्नामाऽब्रवीदिदम् ॥१८॥
वस्त्राणि शस्त्राणि च पुस्तकानि
द्रव्याणि धान्यानि वसुन्धरा च।
कुटुम्ब-विद्या-पशु-वाटिकाश्च
भाण्डानि भूषाश्च धनानि सूर्याः ॥१९॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपिण्डं अष्टभिः गुणयित्वा गुणनफले द्वादशभिः भाजयित्वा य शेषः तं निम्नोक्तक्रमेण द्रव्यं जानीयात्। यथा—एकशेषे वस्त्रम्, द्विशेषे शत्रुः, त्रिशेषे द्रव्यम्, पञ्चशेषे धान्यम्, षट्शेषे पृथ्वी, सप्तशेषे कुटुम्बः, अष्टशेषे विद्या, नवशेषे पशुः, दशशेषे वाटिका, एकादशशेषे भाण्डभूषणम्, द्वादशशेषे धनं जानीयात्।।१८-१९।।

पिण्ड से द्रव्यादि का ज्ञान—गृहपिण्ड को ८ से गुणाकर गुणनफल में १२ का भाग देकर जो शेष होगा उसको निम्नोक्त क्रम से (द्रव्य) समझे। १ शेष में वस्त्र, २ में शत्रु, ३ में द्रव्य, ५ में धान्य, ६ में पृथ्वी, ७ में कुटुम्ब, ८ में विद्या, ९ में पशु, १० में वाटिका, ११ में भाण्ड-भूषण और १२ में धन समझे।।१८-१९।।

ऋणानयनप्रकारः

इहाग्निगुणितं पिण्डमष्टभिर्भाजितञ्च यत्।
शेषाङ्कमृणसंज्ञं स्यात्तस्येशाः कथिताः पुरा ॥२०॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपिण्डं त्रिभिः गुणयित्वा अष्टभिः भाजिते शिष्टम् ऋणमुच्यते। स्वामी च १८-१९ श्लोकोक्तक्रमेण ज्ञेयः।।२०।।

ऋणानयन की विधि—गृहपिण्ड को ३ से गुणाकर ८ से भाग देने पर जो शेष बचे उसको ऋण समझे। इसका स्वामी पूर्व कथित रीति से समझना चाहिये।।२०।।

नक्षत्रानयनप्रकारः

गृहपिण्डं गजैहत्वा सप्तविंशतिभिर्भजेत्।
यच्छेषं तद्भवेद्क्षमश्विन्यादिक्रमेण वै ॥२१॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपिण्डमष्टभिर्गुणयित्वा २७ द्वारा विभाजने यत् शेषं तत् अश्विनीनक्षत्रेण संख्याय अभीष्टं नक्षत्रमानयेत्।।२१।।

नक्षत्रानयन विधि—गृहपिण्ड को ८ से गुणा कर २७ का भाग दें, वह अश्विनी नक्षत्र से गिनकर नक्षत्र समझना चाहिये।।२१।।

ताराफलम्

विपत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरिः प्रतिकूलदा।
निधनाख्याश्च तारास्तु सर्वथा निधनप्रदाः ॥२२॥

संस्कृतभावार्थः—विपत्तारया विपत्तिः प्रत्यरितारया शत्रुता निधनतारया मृत्युः प्राप्यते। अतः तृतीय-पञ्चम-सप्तमतारा न शुभाः।।२२।।

तारा का फल—विपत् तारा से विपत्ति, प्रत्यरि तारा से शत्रुता, निधन तारा से सर्वथा निधन होता है। अर्थात् ३-५-७ तारायें अच्छी नहीं होतीं।।२२।।

कश्यपमते निषिद्धताराः

दत्ते दुःखं तृतीयर्क्षं पञ्चमर्क्षं यशःक्षयम्।
आयुःक्षयं सप्तमर्क्षं कर्तृभाद् गृहभावधि ॥२३॥

संस्कृतभावार्थः—तृतीयतारा दुःखदा, पञ्चमी यशनाशकः, सप्तमी विनाशिनी भवति।

कश्यप के मत से निषिद्ध तारा—तृतीय तारा दुःखद, पञ्चम यश की नाशिका और सप्तम तारा विनाशकारक होती है।।२३।।

वसिष्ठमते विचारः

गृहेशगृहयोर्भैक्यं मृतिस्स्यान्नियमेन तु।
गृहेशस्य वदेन्नित्यं वसिष्ठो मुनिरब्रवीत् ॥२४॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्वामिनो गृहस्य च एकैव तारा चेत् स्वामिनो मृत्युर्भवति।

वसिष्ठ के मत से एक नक्षत्र का फल—गृहपति का नक्षत्र और गृहनक्षत्र यदि एक ही हो तो गृहपति का विनाश होता है, ऐसा वसिष्ठ का मत है।।२४।।

तिथ्यानयनप्रकारः

गृहपिण्डं गजैर्हत्वा तिथिभिर्भागमाहरेत्।
शेषं चात्र तिथिर्ज्ञेया वास्तुशास्त्रविशारदैः ॥२५॥
शक्राहतं क्षेत्रफलं त्रिंशद्भक्तावशेषकम्।
तिथिः प्रतिपदादिस्याद्दर्शरिक्तां विवर्जयेत् ॥२६॥

संस्कृतभावार्थः—ग्रहपिण्डं अष्टभिः हत्वा पञ्चदशभिर्भाजने शिष्टं तिथिरुच्यते। इतरेषामाचार्याणां मतेन ग्रहपिण्डं चतुर्दशभिर्हत्वा त्रिंशता भाजने यच्छेषं तत् शुक्लपक्षात् प्रथमादितिथ्यो भवन्ति। अत्र रिक्तादर्शौ वर्जनीयौ।।२५-२६।।

तिथिसाधन की विधि—गृहपिण्ड को ८ से गुणा कर १५ का भाग दे, शेष को तिथि समझे। दूसरे आचार्यो के मत से ग्रहपिण्ड को १४ से गुणा कर ३० का भाग दे शेष शुक्ल पक्ष से प्रतिपदा आदि तिथियाँ होगी। इसमें रिक्ता तिथि अमावास्या को छोड़ दे।।२५-२६।।

योगानयनप्रकारः

गृहपिण्डं युगैर्हत्वा भक्ता नक्षत्रसङ्ख्यया।
विष्कुम्भादियुतिर्ज्ञेया नामतुल्यं फलं विदुः ॥२७॥
अतिगण्डो धृतिश्शूलगंडव्याघातवज्रकाः।
परिघश्च व्यतीपातः वैधृतिर्वर्जिता गृहे ॥२८॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपिण्डं चतुर्भिर्हत्वा सप्तविंशत्या भाजने शेषं यत्तत् क्रमशः विष्कुम्भादियोगाः भवन्ति। एतत्फलं चैतन्नामानुरूपं भवति। एषु अतिगण्डधृतिशूलगण्डव्याघातवज्रपरिघव्यतिपातवैधृतियोगाः गृहकर्मणि निषिद्धाः।।२७-२८।।

योगसाधन की विधि—गृहपिण्ड को ४ से गुणा कर २७ का भाग देने से जो शेष आयेगा क्रमशः विष्कुम्भादि योग होंगे। इनका फल नाम के अनुरूप ही होता है। इनमें अतिगण्ड, धृति, शूल, गण्ड, व्याघात, वज्र, परिघ, व्यतीपात और वैधृति ये योग गृहकर्म में वर्जित हैं।।२७-२८।।

आयुरानयनप्रकारः

गृहस्य पिण्डं करिभिर्विगुण्यं विभाजितं शून्यदिवाकरेण।
यच्छेषमायुः कथितं मुनीन्द्रैरायुष्यपूर्णे भवने शुभं स्यात् ॥२९॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपिण्डं अष्टभिः हत्वा विंशत्यधिकशतेन भाजने यच्छेषं तद्गृहस्यायुर्भवति। यावत्पर्यन्तमायुरवधिः शिष्टः तावद् गृहं शुभं भवति अर्थात्पूर्णायुर्गृहं शुभं भवति।

गृह की आयुसाधन की विधि—गृहपिण्ड को ८ से गुणा कर १२० का भाग दे, शेष गृह आयु हो गया जब तक आयु की अवधि शेष है तब तक गृह शुभ है, अथवा पूर्णायु गृह शुभ हैं।।२९।।

गृहविनाशहेतुविचारः

हस्तात्मकं क्षेत्रफलं गजाहतं संवत्सरैर्भाजितलब्धकं यत्।
तत्खेन्दुगुण्यं भवनस्य जीवनं यच्छेषितं भूतहतं विलीयते ॥३०॥
पृथिव्यापोऽनलो वायुराकाश इति पञ्चभिः।
गृहस्यायुषि सम्पूर्णे विकारो जायते ध्रुवम् ॥३१॥

संस्कृतभावार्थः—कदाचित् पूर्णायुषामपि गृहाणां नाशो दृश्यते। एकहस्तमितं क्षेत्रफलं अष्टभिर्हत्वा षष्ट्या भाजने प्राप्तं लब्धिं दशभिर्हत्वा शेषं प्राप्नुयात्। तदेव शेषं गृहायुः। तत्र पञ्चभिर्भाजने यच्छेषं तत्क्रमेण पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशजन्यदोषैः गृहं नश्यति विकृतं वा भवति।।३०-३१।।

गृह के विनाश का विचार—कभी-कभी पूर्णायु वाले गृहों का विनाश होते देखा जाता है, इस सम्बन्ध में विचार करते हैं। एक हाथ के क्षेत्रफल को ८ से गुणा कर ६० का भाग दें जो लब्धि प्राप्त हो उसको १० से गुणा कर गुणनफल गृह की आयु होगी, भाग देने पर जो शेष बचे उसमें ५ का भाग देकर जो शेष हो उसके क्रम से पृथ्वी, जल; अग्नि, वायु और आकाशजनित दोष से गृह का नाश होता है। अथवा टूट-फूट आदि होती हैं।।३०-३१।।

गृहपिण्डानुसारेण मण्डलज्ञानम्

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम्।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं मण्डलमुच्यते ॥३२॥
दाता च भूपतिश्चैव क्लीवश्चौरो विचक्षणः।
षष्ठो भोगी धनाढ्यश्च दरिद्रो धनदस्तथा ॥३३॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपतिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्ताराहननप्राप्तं नवभिः भाजने शेषं यत्तन्मण्डलमुच्यते। एकशेषे दाता, द्विशेषे भूपतिः, त्रिशेषे नपुंसकः, चतुश्शेषे चोरः, पञ्चशेषे विचक्षणः, षट्शेषे भोगी, सप्तशेषे धनी, अष्टशेषे दरिद्रः, नवशेषे कुबेरतुल्यश्च भवति।

गृहपिण्ड के अनुसार मण्डल का ज्ञान—गृहपति के हाथ से दीर्घविस्तार (इन दोनों) का गुणा करके ९ का भाग दे शेष मण्डल होता है। यथा—१ शेष में दाता, २ में भूपति, ३ में नपुंसक, ४ में चोर, ५ में विचक्षण, ६ में भोगी, ७ में धनाढ्य, ८ में दरिद्र, ९ में धनद (कुबेर) होता है।।३२-३३।।

मतान्तरेण विचारः

चरणात् कर्णपर्यन्तं दण्डं सरलवंशजम्।
पूर्वतः पश्चिमं यावदुत्तराद्दक्षिणां तथा ॥३४॥
तयोश्च दण्डयोर्योगं कृत्वा भूमौ विलिख्यताम्।
अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषाङ्केन शुभाशुभम् ॥३५॥
प्रथमं रजकस्थानं चन्द्रवत् फलमादिशेत्।
द्वितीयं चर्मकारस्य क्षुत्पिपासाकुलो गृही ॥३६॥
तृतीयं ब्राह्मणस्थानं जनोद्वासकरं महत्।
चतुर्थे शूद्रकस्थानं धनधान्यप्रदायकम् ॥३७॥
पञ्चमे योगिनः स्थानं महदौदास्यकारकम्।
षष्ठे तु गोपकस्थानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥३८॥
सप्तमे क्षत्रियस्थानं सदायुद्धकरं नृणाम्।
अष्टमे च क्रियास्थानं मरणं रोगकारकम् ॥३९॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपतेः पादाङ्गुष्ठात् कर्णपर्यन्तं ऋजुवंशदण्डेन मानं स्वीकृत्य तेन दण्डत्र पूर्वतः पश्चिमम् उत्तरतश्च दक्षिणं यावत् भूमिं मापयेत्। तयोः गुणनं फलम् अष्टभिर्भाजयित्वा प्राप्तशेषानुसारं फलाफलनिर्णयः कर्तव्यः। एकशेषे रजकस्थानं तत्र धनं चन्द्रवत् वृद्धिक्षययुक्तं फलं भवति। द्विशेषे चर्मकारस्थानं वासकर्तुः अतृप्तिः भवति, त्रिशेषे ब्राह्मणस्थानम् उद्वेगकरं भवति, चतुश्शेषे शूद्रस्थानं धनधान्यकरं, पञ्चशेषे योगिनीस्थानं औदास्यकरं, षट्शेषे गोपस्थानं सर्वसिद्धिकरं, सप्तशेषे क्षत्रस्थानं युद्धकरम्, अष्टशेषे क्रियास्थानं रोगमृत्युकरं भवति।।३४-३९।।

मतान्तर से विचार—गृहपति के पैर के अँगूठे से कान तक सीधे बाँस का एक लट्ठा नाप लें, उस डण्डे से पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक भूमि को नाप लें, दोनों ओर की नाप लेकर उनको आपस में गुणा करें, गुणनफल में ८ भाग देकर शेष अंक के अनुसार उसका शुभाशुभ फल कहे। १ शेष बचे तो रजक का स्थान होता है, इसका फल है धन घटता-बढ़ता रहे। २ शेष में चमार का स्थान, इसमें वास करने से भूख-प्यास से व्याप्त रहता है। ३ शेष में ब्राह्मण का स्थान इसमें उद्वेग। ४ शेष में शूद्र का स्थान, इसमें धन-धान्य से युक्त। ५ शेष में योगी का स्थान, इसमें अत्यन्त उदासीनता। ६ शेष में गोपस्थान, इसमें सर्वसिद्धि। ७ शेष में क्षत्रिय स्थान, इसमें लड़ाई-झगड़ा और ८ में क्रिया स्थान, इसमें रोग एवं मरण होता है।

रामदैवज्ञमते विशेषः

भं नागतष्टं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक् सपिण्डः।
तष्टो गुणैरिन्द्रकृता तभूपा ह्यंशा भवेयुर्न शुभोऽन्तकोऽत्र ॥४०॥

संस्कृतभावार्थः—पिण्डनक्षत्रम् अष्टभिः भाजयित्वा प्राप्ता लब्धिः व्ययः इत्युच्यते। तत्र ध्रुवादिनामाक्षं पिण्डसंख्याश्च योजयेत्। अमुं च त्रिभिर्भाजयेत्। एकशेषे इन्द्रांशः, द्विशेषे यमांशः, त्रिशेषे राजांशः भवति। एषु राजांशः इन्द्रांशश्च शुभो भवति, यमराजांशश्च अशुभो भवति।।४०।।

रामदैवज्ञ के मत से अंश—पिण्डगत नक्षत्र में ८ का भाग देने से जो लब्धि प्राप्त हो, उसका नाम व्यय है, उसमें ध्रुव आदि नामाक्षर जोड़ कर पिण्डसंख्या भी जोड़ दे और उसमें ३ का भाग दे १ शेष में इन्द्र, २ में यमराज, ३ में राजा का अंश होता है। इसमें यमराज का अंश २ शुभ नहीं होता है।।४०।।

प्रकारान्तरेण वास्तुशास्त्रीयं मतम्

आयान्न्यूनतरः पक्षो व्ययस्यैषा विचारणा
मूलराशौ व्यये क्षिप्ते गृहनामाक्षरैर्युते।
ततो हरेत्त्रिभिर्भागं यच्छेषं सोंऽशको भवेत्
इन्द्रो यमश्च राजास्याद्यमांशो नैव शोभनः ॥४१॥

संस्कृतभावार्थः—आयात् न्यूने व्यये तस्मिन् गृहे वासो नोचितः। क्षेत्रफले व्ययं गृहपतिनामाक्षराणि संयोज्य तत्र त्रिभिर्भाजने शेषं यत्तत्क्रमेण एकशेषे इन्द्रांशः, द्विशेषे यमांशः, त्रिशेषे राजांशः च भवति। एषु यमांशः अशुभो भवति।।४१।।

आय-व्यय का अन्य प्रकार से वास्तुशास्त्रीय मत—आय से कम व्यय हो जाय तो उस गृह में वास नहीं करना चाहिये, मूलराशि (क्षेत्रफल) में व्यय को जोड़कर गृह के नामाक्षर भी जोड़ दें, उसमें ३ का भाग देने से जो शेष हो क्रम से १ में इन्द्र, २ में यम, ३ में राजा का अंश होता है, इसमें यम का अंश अग्राह्य होता है।।४१।।

टोडरानन्दमते विचारः

नक्षत्रे चाष्टभिर्भक्ते योऽङ्कः स स्याद्गृहे व्ययः।
पैशाचस्तु समाये स्याद्राक्षसोप्यधिके व्यये ॥४२॥

संस्कृतभावार्थः—पिण्डगतनक्षत्रसंख्याया अष्टभिर्भाजने व्ययः प्राप्यते। आये व्यये च समाने सति तद्गृहं पिशाच इति व्यपदेश्यो भवति। आये अधिके गृहनाम राक्षस इति

भवति। विषयेऽस्मिन् नारायणभट्टः स्वमतमाह—'ऋक्षे सर्पहृते व्ययौ गृहमसत् स्वाल्पाय-भूरिव्ययम्'।।४२।।

टोडरानन्द के मत से आय-व्यय का विचार—पिण्डगत नक्षत्र में ८ का भाग देने से व्यय निकल आयेगा, आय और व्यय समान होने से उस गृह का नाम पिशाच और अधिक व्यय होने से उसका नाम राक्षस होता है। इस सम्बन्ध में 'नारायणभट्ट' का मत इस प्रकार है—'ऋक्षे सर्पहृते व्ययो गृहमसत् स्वल्पायभूरिव्ययम्'।।४२।।

शालाध्रुवाङ्कानयनप्रकारः

दिक्षु पूर्वादितः शाला ध्रुवा भूद्वौ कृता गजाः।
शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैको वेश्मध्रुवादिकम् ।।४३।।

संस्कृतभावार्थः—पूर्वद्वारे दक्षिणे पश्चिमे उत्तरे च द्वारे क्रमेण शालाध्रुवाङ्काः एक-द्वि-चतुः-अष्टसंख्यात्मकाः भवन्ति। यावन्ति द्वाराणि गृहे निर्मातव्यानि तावन्तः ध्रुवाङ्काः योजयितव्याः; ततश्च तत्र एकसंख्यायां योजितायां या संख्या लभ्यते सा ध्रुवादिशालानां भवति।।४३।।

शाला के ध्रुवाङ्क-साधन की विधि—पूर्वद्वार में शाला ध्रुवांक १, दक्षिण में २, पश्चिम में ४, उत्तर में ८ होता है। जितने द्वार मकान में बनाने हों उतने ध्रुवांक जोड़े फिर उसमें १ और जोड़ दें जोड़कर जो संख्या आये वह ध्रुवादि शाला का नाम समझे[१]।।४३।।

ध्रुवा धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम्।
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं रिपुदं धनदं क्षयम्।।
आक्रन्दं विपुलं चैव विजयं चेति षोडशाः।
गृहनामानि शास्त्रेऽस्मिन् समाख्यातानि सूरिभिः ।।४४।।

संस्कृतभावार्थः—षोडशगृहनामानि इमानि—ध्रुवधान्यजयनन्दखरकान्तमनोरम-सुमुखदुर्मुखक्रूररिपुदधनदक्षयाक्रन्दविपुलं तथा च विजयाख्यानि।।४४।।

सोलह प्रकार के गृहों के नाम—१ ध्रुव, २ धान्य, ३ जय, ४ नन्द, ५ खर, ६ कान्त, ७ मनोरम, ८ सुमुख; ९ दुर्मुख, १० क्रूर, ११ रिपुद, १२ धनद, १३ क्षय, १४ आक्रन्द, १५ विपुल, १६ विजय।।४४।।

१. नारायणभट्टमते—
एकादिद्विगुणोत्तरा गृहमुखाद्दिक्ष्वंकाः स्युः क्रमा—
च्छालाशाङ्कयुतिः कुयुग्ध्रुवमुखान्योकांसिसन्तिस्फुटम्।
वादरायणमते—
द्वारादेकं द्वितयं वेदा वसवः प्रदक्षिणदिक्षु।
शालादिकांकयोगः सैको वेश्म ध्रुवादिकं भवेत्।।

तिथ्यर्काष्टाष्टिगोरुद्रशक्रे नामाक्षरत्रयम्।
भूब्धीब्धीष्वङ्गदिग्वह्निविश्वेषु द्वौ नगाब्धयः ।।४५।।

संस्कृतभावार्थः—उपर्युक्तेषु अष्टम-नवम-एकादश-द्वादश-चतुर्दशगृहाणां नाम त्र्यक्षरम्। प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठदशमत्रयोदशगृहाणां नाम द्व्यक्षरम्। सप्तमगृहस्य नाम चतुरक्षरं चास्ति।।४५।।

उपर्युक्त आठवाँ, नवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ, चौदहवाँ गृह का नाम तीन अक्षर का है। पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, दसवाँ, तेरहवाँ गृह का नाम दो अक्षर का और सातवाँ गृह का नाम चार अक्षर का है।।४५।।

लल्लमते वास्तुनिवेशनप्रकारः

कर्मसिद्धि सुखायूंषि निमित्तशकुनादिभिः।
ज्ञात्वाः प्रष्टुर्ग्रहारम्भे कीर्तयेत् समयं बुधैः ।।४६।।
कालनरस्य यदङ्गं सौम्यग्रहवीक्षितं युतंवापि।
तच्चेत् स्पृशति प्रष्टा तदास्यनिर्माणमादेश्यम् ।।४७।।

संस्कृतभावार्थः—प्रश्नकर्तुः कार्यसिद्धि-सुख-आयुर्निमित्तकशुभशकुनविचारं कृत्वा दैवज्ञः गृहारम्भसमयमादिशेषत्। लल्लमतेन कालपुरुषस्य शुभग्रहदृष्टं तद्युक्तं वा अङ्गं स्पृष्ट्वा प्रश्नकर्ता प्रश्नं करोति चेद् गृहनिर्माणमादिशेदन्यथा निषेधेत्।।४६-४७।।

लल्ल के मत से वास्तुनिवेशन का प्रकार—प्रश्नकर्ता की कर्मसिद्धि, सुख, आयु-निमित्तक शुभ शकुन आदि का विचार कर ज्योतिषी गृहारम्भ का समयनिर्देश करे। लल्ल का मत है—कालपुरुष का जो अंग शुभ ग्रह से दृष्ट हो (अर्थात् जिस पर शुभ ग्रह की दृष्टि पड़ रही है। अथवा युक्त हो उस अंग को स्पर्श करके यदि प्रश्नकर्ता पूछता है तो गृहनिर्माण का आदेश दे; इसके विपरीत स्थिति में निषेध करे।।४६-४७।।

वृद्धनारदमते कालशुद्धिविचारः

आरम्भं च समाप्तिं च प्रासादपुरसद्मनाम्।
उत्थिते केशवे कुर्यात्र प्रसुप्ते कदाचन ।।४८।।
चैत्रे शोककरं गृहादिरचितं स्यान्माधवेऽर्थप्रदं
ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद्वृद्धिदं श्रावणे।
शून्यं भाद्रपदे त्विषे कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके
धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीर्माघे श्रियं फाल्गुने ।।४९।।

संस्कृतभावार्थः—पुरप्रासादगृहारम्भकार्यं समाप्तिकार्यं च हरिप्रबोधिन्याः अनन्तरं हरिशयन्याः पूर्वं च कार्यम्। चैत्रे गृहनिर्माणात् शोकः, वैशाखे धनलाभः, ज्येष्ठे मृत्युः,

आषाढ़े पशुहरणं, श्रावणे पशुवृद्धिः, भाद्रपदे शून्यम्, आश्विने कलहः, कार्तिके भृत्य-हानिः, मार्गशीर्षे पौषे चान्नलाभः, माघे अग्निभयम्, फाल्गुने श्रीलाभः भवति।

वृद्धनारद के मत से कालशुद्धि का विचार—पुर, प्रासाद, गृह का आरम्भ एवं समाप्ति विष्णु के उत्थान में अर्थात् हरिबोधिनी एकादशी के बाद और हरिशयनी एकादशी के पूर्व ही करना चाहिये। चैत्र मास में गृह आदि बनाने से शोक, वैशाख में धनलाभ, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में पशु हरण, श्रावण में पशुवृद्धि, भाद्रपद में शून्य, आश्विन में कलह, कार्तिक में भृत्यनाश मार्गशीर्ष और पौष में अन्नलाभ, माघ में अग्निभय तथा फाल्गुन में श्री लाभ होता है[1]।।४८-४९।।

मासफलचक्रम्

मास	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ	श्रावण	भाद्रपद
फल	शोक	धनलाभ	मरण	पशुहानि	पशुलाभ	शून्य

मास	आश्विन	कार्तिक	मार्ग०	पौष	माघ	फाल्गुन
फल	कलह	भृत्यनाश	धान्य	धान्य	अग्निभय	श्रीलाभ

नारदमते मासशुद्धिविचारः

सौम्य-फाल्गुन-वैशाख-माघ-श्रावणकार्तिकाः।
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्राऽऽरोग्यफलप्रदाः ॥५०॥

संस्कृतभावार्थः—मार्गशीर्षे, फाल्गुने, वैशाखे, माघे, श्रावणे, कार्तिके च गृहादिनिर्माणात् गृहपतेः पुत्रस्वास्थ्यलाभो भवति।।५०।।

नारद के मत से मासशुद्धि का विचार—मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक में गृह आदि का निर्माण करने से गृहपति को पुत्र तथा स्वास्थ्य लाभ होता है।।५०।।

प्रकारान्तरेण विचारः

वैशाखे श्रावणे मार्गे माघे फाल्गुनके तथा।
कन्यायुग्मधनुर्मीनभिन्ने सूर्ये गृहं शुभम् ॥५१॥

संस्कृतभावार्थः—वैशाखश्रावणमार्गशीर्षमाघफाल्गुनेषु यदि कन्यामिथुनधनुर्मीनराशिषु सूर्यः न भवेत् तर्हि गृहनिर्माणं शुभं भवति।।५१।।

[1] मतान्तरम्—
शोको धान्यं मृतिपशुहृती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो।
युद्धं भृत्यक्षतिरथफलं श्रीश्च वह्नेर्भयञ्च।।
लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण।
चैत्राद्ये मुनिभिरसकृद्वास्तुशास्त्रेषु विज्ञैः।।

अन्य प्रकार से गृहनिर्माण का फल—वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन में यदि कन्या, मिथुन, धनु और मीन से अन्य राशि के सूर्य हो तो गृहनिर्माण शुभ होता है।।५१।।

वक्तव्य—उक्त मासों में कन्या का सूर्य नहीं होता; अतः यहाँ कन्या राशि के सूर्य से रहित कार्तिक मास का संकेत समझना चाहिये; क्योंकि कार्तिक में तुला वृश्चिक का सूर्य हो जाता है और सौर मास के अनुसार तुला एवं वृश्चिक का सूर्य ग्राह्य होता है। यथा—'कन्यारोगं तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम्'।।५१।।

योगेश्वराचार्यमते त्याज्यमासाः

आषाढचैत्राश्वयुजोर्जमाघज्येष्ठेषु सप्रौष्ठपदेषु नूनम्।
निकेतनानां घटनं नृपाणां योगेश्वराचार्यमते न शस्तम् ॥५२॥

संस्कृतभावार्थः—चैत्रज्येष्ठाषाढ़भाद्रपदाश्विनकार्तिकमाघमासेषु गृहनिर्माणं न कार्यम्।

योगेश्वर आचार्य के मत से त्याज्य मास—चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, माघ महीनों में गृहनिर्माण न करे। यह योगेश्वराचार्य का मत है।।५२।।

नारदमते ग्राह्यमासाः

गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत्।
वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥५३॥
कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम्।
कन्यारोगं तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम् ॥५४॥
कार्मुके तु महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः।
कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्म भयावहम् ॥५५॥

संस्कृतभावार्थः—मेषसूर्ये गृहनिर्माणं शुभं, वृषसूर्ये धनवृद्धिकरं, मिथुनसूर्ये मृत्यु-करं, कर्कसूर्ये शुभं, सिंहसूर्ये भृत्यवृद्धिकरं, कन्यासूर्ये रोगदं, तुलासूर्ये धनवृद्धिकरं, धनु-सूर्ये हानिकरं, मकरसूर्ये धनदं, कुम्भसूर्ये रत्नलाभदं, मीनसूर्ये च भयदं भवति।

नारद के मत से शुभ मास—मेष के सूर्य (वैशाख) में गृहनिर्माण शुभ, वृष (ज्येष्ठ) में धनवृद्धि, मिथुन (आषाढ़) में मृत्यु, कर्क (श्रावण) में शुभ, सिंह (भाद्रपद) में भृत्यवृद्धि, कन्या (आश्विन) में रोग, तुला (कार्तिक) में धनवृद्धि, धन (पौष) में महा हानि, मकर (माघ) में धनागम, कुम्भ (फाल्गुन) में रत्नलाभ और मीन (चैत्र) में भयदायक होता है।।५३-५५।।

उपर्युक्त अर्थ को चक्र द्वारा समझें—

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या
मास	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन
फल	शुभ	धनलाभ	मरण	शुभ	भृत्यवृद्धि	रोग

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
मास	कार्तिक	मार्गशी.	पौष	माघ	फाल्गुन	चैत्र
फल	सुख	धनलाभ	हानि	धनलाभ	रत्नलाभ	भय

रामदैवज्ञमते सौरचान्द्रमासविचारः

कुम्भेऽर्के फाल्गुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्क्योः
पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोऽजगेऽर्के च राधे ।
मार्गे जूकालिगे सद्ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः
सूतीगेहन्त्वदित्यांहरिभविधिभयोस्तत्र शस्तः प्रवेशः ॥५६॥

संस्कृतभावार्थः—फाल्गुने कुम्भगे सूर्य, श्रावणे सिंहे कर्कस्थे च तस्मिन्, पौषे मकरगते सूर्ये, पूर्वपश्चिमद्वारनिर्माणं कार्यम्। वैशाखे मेषवृषयोः, मार्गशीर्षे तुलावृश्चिकयोः सूर्ये सति दक्षिणोत्तरद्वारनिर्माणं शुभाय भवति। ध्रुव-मृदु-शतभिषा-स्वाती-धनिष्ठा-हस्त-पुष्यनक्षत्रेषु गृहारम्भः शुभाय भवति। किन्तु सूतिकागृहनिर्माणं पुनर्वसुनक्षत्रे न प्रारभेत्। श्रवणाभिजितोः सूतिकागृहनिर्माणं कुर्यात्।।५६।।

रामदैवज्ञ के मत से सौर-चान्द्रमास का विचार—फाल्गुन मास में कुम्भ के सूर्य हों, श्रावण में सिंह कर्क के तथा पौष में मकर के सूर्य हों तो पूर्व-पश्चिम द्वार का गृहनिर्माण शुभ होता है। वैशाख में मेष, वृष के और मार्गशीर्ष में तुला-वृश्चिक के सूर्य हो तो दक्षिण-उत्तर द्वार का गृहनिर्माण शुभ होता है। ध्रुव, मृदु, शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, हस्त, पुष्य नक्षत्रों का गृहारम्भ शुभ होता है; किन्तु सूतिका-निर्माण पुनर्वसु नक्षत्र में प्रारम्भ करे और श्रवण या अभिजित् में उक्त गृह में प्रवेश करे।।५६।।

श्रीपतिमते गृहारम्भः

कर्किनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ।
तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात् ॥५७॥
अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकधननाशमश्नुते ।
मीनचापमिथुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे ॥५८॥

संस्कृतभावार्थः—कर्कमकरसिंहकुम्भगे सूर्ये पूर्वपश्चिमद्वारकं गृहं, तुलामेषवृषवृश्चिके सूर्ये दक्षिणोत्तरद्वारकं गृहनिर्मातव्यम्। यः मीनधनुः कन्यामिथुनसूर्ये गृहमारभेत् सः रोगशोकान् आमन्त्रयति।।५७-५८।।

श्रीपति के मत से गृहारम्भ—कर्क, मकर, सिंह, कुम्भ के सूर्य में पूर्व-पश्चिम द्वार का गृह और तुला मेष, वृष, वृश्चिक के सूर्य में दक्षिण उत्तर द्वार का गृह निर्माण शुभ होता है। मीन, धनु, कन्या, मिथुन के सूर्य में जो अनभिज्ञ लोग गृह निर्माण कराते हैं, वे रोग और शोक के भागी बनते हैं।।५७-५८।।

वक्तव्य—यद्यपि अन्य टीकाकारों ने भी उक्त श्लोक का अर्थ कुछ ऐसा ही किया है, जैसा कि हमने किया; किन्तु ध्यान से देखने से स्पष्ट होता है कि कर्क-सिंह के सूर्य में पूर्व द्वार का गृह और मकर-कुम्भ के सूर्य में पश्चिम द्वार का गृह, इसी प्रकार तुला-वृश्चिक के सूर्य में उत्तर द्वार का गृह बनाना चाहिये, ऐसा अर्थ समीचीन प्रतीत होता है।

रामदैवज्ञमते गृहारम्भमासाः

कैश्चिन्मेषरवौ मधौ वृषभगे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे
भाद्रे सिंहगते घटेऽश्वयुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके ।
माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहं तथोर्जे न सत्
कन्यायां च तथा धनुष्यपि न सत्कृष्णादिमासाद्भवेत् ॥५९॥

संस्कृतभावार्थः—मेषगे सूर्ये चैत्रमास, वृषगे ज्येष्ठः, कर्कस्थे आषाढ़ः, सिंहगते भाद्रमासः, तुलागे आश्विनः, वृश्चिकस्थिते कार्तिकः, मकरगे पौषमासः, कुम्भगे माघमासः गृहारम्भाय शुभकरः। कार्तिकमासे कन्यासूर्यः, माघमासे धनुस्सूर्यः न शुभाय भवति।।५९।।

रामदैवज्ञ के मत से गृहारम्भ के मास—किसी आचार्य के मत से मेष के सूर्य में चैत्र, वृष में ज्येष्ठ, कर्क में आषाढ, सिंह में भाद्रपद, तुला में आश्विन, वृश्चिक कार्तिक, मकर में पौष, कुम्भ में माघ मास गृहारम्भ के लिये शुभ होता है। कार्तिक में कन्या का सूर्य शुभ नहीं होता तथा माघ में धनु का सूर्य शुभ नहीं होता[1]।।५९।।

देवालयाद्यारम्भे राहुमुखविचारः

देवालये गेहविधौ जलाशये
राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः ।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते
मुखात् पृष्ठविदिक्शुभाभवेत् ॥६०॥

संस्कृतभावार्थः—कदाचित् अपि राहुमुखतः भूमिशोधनाय गर्तः न खातव्यः। राहुमुखात् पश्चम्यां विदिशि राहुपुच्छं भवति। मुखपुच्छयोः मध्यभागः पीठमित्युच्यते। पीठे खातः शुभाय भवति। यथा—देवालयखाते मीनमेषवृषगे सूर्ये राहुमुखमीशानकोणे पुच्छं च नैर्ऋत्यकोणे पीठम् आग्नेयकोणे भवेत्। एवं कोणेषु खातारम्भः कार्यः।।६०।।

१. **वसिष्ठमते**—मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे।
ऊर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम् ।।

देवालय, गृहारम्भ तथा जलाशय के आरम्भ में राहुमुख का विचार—खात भूमिशोधन राहु के मुख से न करें। मुखस्थविदिशा से पाँचवीं (१ ईशान, २ पूर्व, ३ आग्नेय, ४ दक्षिण, ५ नैर्ऋत्य) विदिशा राहु की पुच्छ संज्ञक है। मुख और पुच्छ के बीच के भाग को पीठ कहते है। पीठ से खात शुभ होता है। यथा—देवालय खात में चैत्र, १२ वैशाख, १ ज्येष्ठ, २ में राहु का मुख ईशान कोण में पुच्छ नैर्ऋत्य कोण में है तो पीठ आग्नेयकोण में हुई, इसी कोण से खात का आरम्भ करें। ६० चक्र में स्पष्ट है—

राहुमुखचक्रम्

विदिशायें	ईशान में	वायव्य में	नैर्ऋत्य में	आग्नेय में
देवालय में	१२.१.२ के सूर्य में राहुमुख	३.४.५ के सूर्य में राहुमुख	६.७.८ के सूर्य में राहुमुख	९.१०.११ के सूर्य में राहुमुख
गृहारम्भ में	५.६.७ के सूर्य में राहुमुख	८.९.१० के सूर्य में राहुमुख	११.१२.१ के सूर्य में राहुमुख	२.३.४ के सूर्य में राहुमुख
जलाशय में	१०.११.१२ के सूर्य में राहुमुख	१.२.३ के सूर्य में राहुमुख	४.५.६ के सूर्य में राहुमुख	७.८.९ के सूर्य में राहुमुख

जीर्णगृहनिर्माणे मासादिविचार:

जीर्णोद्धारे जलाग्न्यादिभयत: पतिते गृहे।
श्रावणोर्जे तथा माघे कारयेत्सुखदं गृहम्॥६१॥
देवालयं तडागश्च वाटिकोद्धरणं गृहम्।
गृहमासोदितं शस्तं माघेऽपि मुनिसत्तम॥६२॥
तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते।
पाषाणेष्ट्यादिगेहानि निन्द्यमासे न कारयेत्॥६३॥
शस्तं पशुगृहं ज्येष्ठे चाश्विने धान्यनीडकम्।
पानीयशालिका माघे चैत्रे धारागृहं तथा॥६४॥

संस्कृतभावार्थ:—जलाग्निभ्यां जीर्णस्य गृहस्य उद्धार: श्रावण-कार्तिक-माघमासेषु कार्य:। एतेषु गृहपति: सुखं विन्देत्। उक्तेषु मासेषु माघमासे वा विशेषत: देवालयसरोवरोद्यानादिनिर्माणं कर्तुं शक्यते। पर्णगृहनिर्माणे दारुगृहनिर्माणे वा मासदोषो न भवति; यतस्ते चिराय न भवन्त्येव। इष्टकापाषाणादिभि: स्थायिगृहनिर्माणे शुभमासा एव

वरणीय:। ज्येष्ठे पशुगृहम्, आश्विने धान्यगृहं, माघे गौशाला, चैत्रे धारागृहमर्थात् नदीसमुद्रादिनिकटस्थगृहं निर्मातव्यम्।।६१-६४।।

जीर्ण गृह के निर्माण में मास का विचार—जल अथवा अग्नि के द्वारा गिरे हुए मकान का जीर्णोद्धार श्रावण, कार्तिक, माघ में करना चाहिये। इसमें गृहपति को सुख की प्राप्ति होती है।

पूर्वोक्त गृहारम्भ के मासों में अथवा केवल माघ मास में भी देवालय, तालाब, बगीचा आदि शुभ कृत्य करना मुनियों का मत है।

तृण अथवा लकड़ी के घर बनाने में मास शुद्धि की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि ये चिरस्थायी नहीं होते। ईंट अथवा पत्थर द्वारा स्थायी गृहों का निर्माण उक्त निन्दित मासों में न करें। ज्येष्ठ में पशुगृह, आश्विन में धान्यगृह, माघ में पौशाला और चैत्र में धारा गृह अर्थात् गङ्गा के तटवर्ती भवन का निर्माण शुभ है।।६१-६४।।

वसिष्ठमते पक्षशुद्धि:

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्।
गृहनिर्माणकार्येषु पक्षशुद्धिं विचिन्तयेत्॥६५॥
गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणोर्दृश्यमानयो: ।
शुक्लपक्षे दिवाकार्यं न निर्माणञ्च रात्रिषु॥६६॥

संस्कृतभावार्थ:—शुक्लपक्षे गृहारम्भे सर्वसुखं कृष्णपक्षे तस्करभयं च भवति। गुरौ शुक्रे च उदिते शुक्लपक्षे दिवसे एव गृहमारभेत्, न निशि।।६५-६६।।

वसिष्ठ के मत से पक्षशुद्धि—शुक्लपक्ष में गृहारम्भ करने से सर्वविधसुख, कृष्णपक्ष में चोरों का भय होता है। महर्षि वसिष्ठ के मत में—यदि गुरु-शुक्र उदयी हों तो शुक्ल पक्ष के दिनों में गृहारम्भ करना चाहिये न कि रात्रि में[1]।।६५-६६।।

गृहारम्भे निषिद्धतिथय:

दारिद्र्यं प्रतिपत् कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी।
अष्टम्युच्चाटनी ज्ञेया नवमी शस्त्रघातिनी॥६७॥
अमायां राजभीति: स्याच्चतुर्दश्यां स्त्रिय: क्षय:।
एवं निषिद्धतिथयो गृहारम्भे प्रकीर्तिता:॥६८॥

---

१. **मध्यरात्रिप्रमाणम्**—
महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम्।
अस्तदोषोऽत्र नो ग्राह्य: प्रतिदैवसिकी बुधै:।
नास्तदोष: सदा भानोर्नैते चेन्दोर्न नीचता।।

रिक्ताष्टमीदर्शरवीन्दुभौमा विवर्जनीया विदुषा प्रयत्नात् ।
चित्रानुराधामृगरेवतीषु स्वातौ च तिष्ये च तथोत्तरासु ॥६९॥
ब्राह्मे धनिष्ठाशततारकासु गेहादिकारम्भणमामनन्ति ।
श्रीभार्गवस्यात्र मुनेर्मतेन प्रोक्ताविशुद्धास्तिथयोऽथ वाराः ॥७०॥

संस्कृतभावार्थः—प्रतिपदि गृहनिर्माणारंभे दारिद्र्यं, चतुर्थ्यां धनहानिः, अष्टम्यामुच्चाटनम्, नवम्यां शस्त्रभयम्, अमायां राजभयम्, चतुर्दश्यां स्त्रीहानिश्च भवति। भृगुमतेन चतुर्थी-अष्टमी-अमावस्या तिथयः सूर्येन्दुमङ्गलवासराः गृहारम्भे वर्जनीयाः।।६७-७०।।

गृहारम्भ में निषिद्ध तिथि—प्रतिपदा को गृह निर्माण का आरम्भ करने से दरिद्रता, चतुर्थी को धनहानि, अष्टमी को उच्चाटन, नवमी को शस्त्रभय, अमावस्या को राजभय और चतुर्दशी को स्त्रीहानि होती है। महर्षि भृगु के मत में—चतुर्थी, अष्टमी, अमावस्या तिथियाँ, सूर्य, चन्द्र और मंगलवारों को त्याग देना चाहिये।।६७-७०।।

गृहारम्भे नक्षत्रशुद्धिविचारः

चित्राशतभिषक्स्वाती हस्तः पुष्यः पुनर्वसुः ।
रोहिणी रेवतीमूल-श्रवणोत्तरफाल्गुनी ॥७१॥
धनिष्ठा चोत्तराषाढा तथा भाद्रोत्तरान्विता ।
अश्विनीमृगशीर्षे च अनुराधा तथैव च ॥७२॥
वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः ।
समाप्नोति नरो लक्ष्मीमिति प्राह पराशरः ॥७३॥

संस्कृतभावार्थः—चित्रा-अनुराधा-मृगशिरः-रेवती-पुष्य-उत्तराषाढ़ा-उत्तराफाल्गुनी-उत्तराभाद्रपद-रोहिणी-धनिष्ठा-शतभिषक्षु नक्षत्रेषु गृहारम्भः शुभाय भवति। पराशरमतेन चित्रा-शतभिषक्-स्वाती-हस्त-पुष्य-पुनर्वसु-रोहिणी-रेवती-मूल-श्रवण-उत्तराफाल्गुनी-धनिष्ठा-उत्तराषाढ़ा-उत्तराभाद्रपद-अश्विनी-मृगशिरोऽनुराधानक्षत्रेषु वास्तुपूजायां कृतायां लक्ष्मीलाभो भवति।।७१-७३।।

गृहारम्भ में नक्षत्रशुद्धि का विचार—चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्य, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में गृहारम्भ शुभ होता है। महर्षि पाराशर के मत में—चित्रा, शतभिषा, स्वाती, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, रेवती, मूल, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, मृगशिरा और अनुराधा—इन नक्षत्रों में वास्तुपूजन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है[1]।।७१-७३।।

१. तथोक्तम्—
सूर्याङ्गारकवारांशा वैश्वानरभयप्रदाः। इतरग्रहवारांशाः सर्वकामार्थसिद्धिदाः।।
गर्गमते—
त्र्युत्तरेऽपि च रोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करद्वये। धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ।।

मतान्तरे गृहारम्भसमयः

हस्तादित्यशशाङ्कपुष्यपवनप्राज्येशमित्रोत्तराश्
चित्राश्विश्रवणेषु वृश्चिकघटौ त्यक्त्वा विरिक्ते तिथौ ।
शुक्राचार्यशनैश्चरज्ञशशिनो वारेऽनुकूले विधौ
सद्भिर्वेश्मनि सूतिकागृहविधिः क्षेमङ्करः कीर्तितः ॥७४॥

संस्कृतभावार्थः—हस्तपुनर्वसुमृगशिरपुष्यस्वातीरोहिणी अनुराधोत्तराफाल्गुन्युत्तराषाढोत्तराभाद्रपदचित्राश्विनीश्रवणनक्षत्राणि वृश्चिककुम्भलग्नौ रिक्ता (४-९-१४) तिथींश्च त्यक्त्वा बुध-गुरु-शुक्र-शनिवासरेषु शुभे इन्दौ गृहारम्भः सूतिकागृहारम्भश्च गृहपतेः कल्याणाय भवति।।७४।।

मतान्तर से गृहारम्भ का समय—हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य, स्वाती, रोहिणी, अनुराधा, तीनों उत्तरा, चित्रा, अश्विनी और श्रवण नक्षत्रों को तथा वृश्चिक एवं कुम्भ लग्नों को रिक्ता (४.९.१४) तिथियों को छोड़कर बुध, गुरु, शुक्र, शनि वारों में शुभ चन्द्रमा में गृहारम्भ एवं सूतिका गृह का निर्माण प्रारम्भ करने से गृहपति का कल्याण होता है।।७४।।

वास्तुराजवल्लभे

वास्तोः कर्मणि धिष्ण्यवारतिथयोऽश्विन्युत्तराणां त्रिकं
हस्तादित्रयमैत्रतोद्वयमिदं पुष्यो मृगो रोहिणी ।
निन्द्यौ भूसुतभास्करौ च शुभदा पूर्णा च नन्दातिथिः
तेषां वैधृतिशूलगण्डपरिघव्याघातवज्रा अपि ॥७५॥

संस्कृतभावार्थः—वास्तुकर्मणि अश्विनी-उत्तराफाल्गुनी-उत्तराषाढ़ा-उत्तराभाद्रपद-हस्त-चित्रा-स्वाती-अनुराधा-ज्येष्ठा-पुष्य-मृगशिरो-रोहिणीनक्षत्राणि शुभाय भवन्ति। कुज-रविवासरौ विहाय शेषदिनानि प्रतिपत्पञ्चमी-षष्ठी-दशमी-एकादशी-पूर्णिमातिथयः शुभाः। वैधृति-शूल-गण्ड-परिघ-व्याघात-वज्रयोगाः अशुभाः।।७५।।

वास्तुराजवल्लभ के मत से समय का विचार—वास्तुकर्म में अश्विनी, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुष्य, मृगशिरा और रोहिणी ये नक्षत्र शुभ हैं। मंगल और रविवार को छोड़कर शेष दिन पूर्णा (५.१०.१५) और नन्दा (१.६.११) तिथियाँ शुभ हैं। वैधृति, शूल, गण्ड, परिघ, व्याघात और वज्र योग अशुभ होते हैं।।७५।।

ग्रन्थान्तरे विचारः

विष्कुम्भव्यतिपातकौ च न शुभौ योगाः परे शोभनाः
शस्तं नागववाख्यतैतिलगरं युग्मां तिथिं वर्जयेत्।
मौहूर्त्तं त्वथ विश्वमष्टनवमं पञ्चत्रिरागाद्रिकं
श्रेष्ठं च द्वितयं तुलावृषघटौ युग्मं धनुः कन्यके ॥७६॥

संस्कृतभावार्थः—विष्कुम्भव्यतिपातयोगौ व्यतिरिच्य सर्वे योगाः शुभाः। नाग-बव-तैतिल-गरकरणानि उत्तमानि। द्विचतुष्षष्ठाष्टमदशमद्वादशचतुर्दशत्रिंशतिथयः अशुभाः भवन्ति। द्वित्रिपञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमनवमत्रयोदशमुहूर्ताः शुभा। द्वित्रिषष्ठसप्तमनवम-एकादश-लग्ना उत्तमा भवन्ति।।७६।।

अन्य ग्रन्थ के मत से समय का विचार—योगों में विष्कुम्भ और व्यतीपात को छोड़कर शेष शुभ होते हैं, करणों में नाग, वव, तैतिल और गर उत्तम होते हैं[१]। तिथियों में सम तिथियाँ (२,४,६,८,१०,१२,१४,३०) शुभ नहीं हैं। मुहूर्तों में २,३,५,६,७,८,९,१३—ये मुहूर्त शुभ हैं, लग्नों में—२,३,६,७,९,११ लग्न उत्तम हैं।।७६।।

विश्वकर्मप्रकाशे

स्वात्यां मैत्रेऽथ गान्धर्वे भगरौहिणे।
स्तम्भोच्छ्रायादिकर्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत् ॥७७॥

संस्कृतभावार्थः—स्वाती-अनुराधा-ज्येष्ठा-धनिष्ठा-पूर्वाफाल्गुनी-रोहिणीनक्षत्रेषु स्तम्भोच्छ्रायादिनिर्माणमारभेत्। इतरेषु नक्षत्रेषु कार्यविघ्नः समापयेत्।।७७।।

विश्वकर्मप्रकाश का मत—स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, रोहिणी—इन नक्षत्रों में स्तम्भ की ऊँचाई आदि करनी चाहिये। इनके अतिरिक्त अन्य वर्जित हैं।।७७।।

द्व्यङ्गे वा स्थिरभे च सौम्यसहिते लग्नेशुभैर्वीक्षिते
सौम्यैर्वीर्यसमन्वितैश्च दशमे निर्माणमाहुर्बुधाः।
पञ्चाङ्कैर्विधुकेन्द्रगैः सुफलदं पापैस्त्रिषष्ठायगैः
क्रूरो ह्यष्टमसंस्थितोऽपि मरणं कर्तुर्विधत्तेतराम् ॥७८॥

संस्कृतभावार्थः—शुभग्रहयुक्ते तद्दृष्टे द्विस्वभावे स्थिरलग्ने वास्तुकर्म शुभाय भवति। शुभग्रहे बलवति दशमस्थे वास्तुकर्म शुभाय भवति अथवा शुभग्रहे पञ्चमे नवमे वा स्थिते चन्द्रमसि १-४-७-१० स्थाने स्थिते पापग्रहे च तृतीये षष्ठे एकादशे च भावे स्थिते गृहारम्भः शुभाय भवति। अष्टमगे पापग्रहे गृहस्वामिनो मृत्युर्भवति।।७८।।

शुभग्रह से युक्त और दृष्ट द्विस्वभाव और स्थिरलग्न में वास्तुकर्म शुभ होता है। शुभग्रह बलवान् होकर दशमस्थान हो तो वास्तुकर्म शुभ होता है। अथवा शुभग्रह पञ्चम, नवम हों और चन्द्रमा १,४,७,१० स्थान में हो तथा पापग्रह तीसरे, छठे, ग्यारहवें स्थान में हो तो गृह शुभ होता है। यदि अष्टम स्थान में पापग्रह हो तो गृहेश की मृत्यु होती है[१]।।७८।।

गृहारम्भे रामदैवज्ञः

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरो नाङ्गे विपञ्चके।
व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्र्यायारिगैः खलैः ॥७९॥

संस्कृतभावार्थः—मङ्गलरविवासरौ, चतुर्थी-सप्तमी-नवमी-चतुर्दशी-अमातिथिः चरलग्नं बाण-पञ्चकं च त्यक्त्वा अष्टमद्वादशातिरिक्तभावेषु शुभे ग्रहे स्थितवति तृतीये षष्ठे एकादशे च भावे पापग्रहे स्थितवति गृहारम्भः शुभाय भवति।।७९।।

गृहारम्भ में रामदैवज्ञ का मत—मंगल, रविवार, रिक्ता (४.९.१४) अमावस्या, सप्तमी तिथियाँ, चरलग्न, बाणपञ्चक—इन सबों को छोड़कर आठवें, बारहवें से अतिरिक्त शुभगृह हों और तीसरे, छठे, ग्यारहवें में पापग्रह हों तो गृहारम्भ शुभ होता है।।७९।।

वास्तुप्रदीपे शुभयोगाः

शनौ स्वाती सिंहलग्नं शुक्लपक्षश्च सप्तमी।
शुभयोगः श्रावणश्च सकाराः सप्तकीर्तिताः ॥८०॥
सप्तानां योगतो वास्तुः पुत्रवित्तप्रदः सदा।
गजश्च धनधान्यादिनित्यं तिष्ठन्ति सर्वतः ॥८१॥

संस्कृतभावार्थः—श्रावणमासे शुक्लपक्षे सप्तमीतिथौ शनिवारे स्वात्यां शुभयोगे सिंहलग्ने च एषु सप्तसकारेषु गृहारम्भः गृहप्रवेशश्च धनसम्पत्तिसन्ततिवाहनादिप्राप्तये भवति।

वास्तुप्रदीप के अनुसार सप्त सकारयोग—शनिवार, स्वाती नक्षत्र, सिंह लग्न, शुक्लपक्ष, सप्तमी तिथि, शुभ योग, श्रावण—इन सात सकारों के योग में किया गया वास्तुकर्म पुत्र, हाथी, धन-धान्य को देने वाला होता है।।८०-८१।।

---

१. यथोक्तं मत्स्यपुराणे—
वज्रव्याघातशूलेषु व्यतीपातातिगण्डयोः।
विष्कुभगण्डपरिघे चाष्टयोगे न कारयेत्।।

१. श्रीपतिरपि—
द्व्यङ्गे स्थिरे वा भवने विलग्ने सौम्यग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते च
कर्मस्थितैर्वीर्ययुतैश्च सौम्यैर्निर्माणमाहुर्भवनस्य सन्तः।
पापैस्त्रिषष्ठायगतैस्त्रिकोणे केन्द्राश्रितैस्साधुभिरालयस्य
वदन्ति निर्माणमिहाष्टमस्थः क्रूरस्तु कर्तुर्मरणं करोति।।

वास्तुराजवल्लभे गृहायुष्यविचारः

जीवः सौख्यमुपाकरोति भृगुजो धान्यं श्रियं चन्द्रमाः
सूर्यो वेश्मपतिश्चतुष्टयमिदं नीचास्तगं दुर्बलम्।
जीवे लग्नमुपागते शशिसुते यामित्रगेऽर्के रिपौ
शुक्रेऽब्धौ सहजे शनौ च शरदां गेहं शतं तिष्ठति ॥८२॥

संस्कृतभावार्थः—बलवति गुरौ स्वगृहस्थे सुखसमृद्धिः, शुक्रे धान्यं, चन्द्रमसि लक्ष्मीः, सूर्ये सुखसमृद्धिः धनधान्यं लक्ष्मीश्च लभ्यते। उक्तेषु चतुर्षु नीचेषु अस्तङ्गतेषु वा पूर्णं फलं न लभ्यते। लग्ने बृहस्पतिः, सप्तमे बुधः, षष्ठे सूर्यः, चतुर्थे शुक्रः, तृतीये शनिश्चेत् गृहं शतायुः भवति।।८२।।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार गृह की आयु का विचार—यदि बलवान् बृहस्पति गृहेश हो तो सौख्य, शुक्र से धान्य, चन्द्रमा से लक्ष्मी, सूर्य से सौख्य आदि चारों फल देता है। यदि उक्त चारों ग्रह नीच अथवा अस्तङ्गत हों तो अपना पूर्ण फल नहीं देते। लग्न में बृहस्पति सप्तम में बुध, सूर्य षष्ठ में शुक्र चतुर्थ में और शनि तृतीय में हो तो वह गृह शतायु होता है।।८२।।

भृगुसुत इह लग्ने ह्यायगेऽर्के च खे ज्ञे
गृहमपि शतमब्दान् स्थायि केन्द्रे सुरेज्ये।
द्विगुणमपि च शुक्रे मूर्तिगे विक्रमेऽर्के
सुरगुरुसुतसंस्थे भूमिपुत्रे च षष्ठे ॥८३॥

संस्कृतभावार्थः—शुक्रः लग्नस्थ एकादशस्थो वा भवेच्चेत् सूर्ये बुधे च दशमस्थे गुरौ केन्द्रगे च गृहायुः शतं वर्षाणि भवति। शुक्रे लग्नगे, सूर्ये तृतीयस्थे गुरौ पञ्चमस्थे मङ्गले षष्ठगे गृहायुः द्विगुणशतवर्षाणि भवति।।८३।।

अन्यमत से गृह की आयु का विचार—प्रकारान्तर से गृह की आयु का विचार लिखते हैं—यदि शुक्र लग्न में या एकादश में, सूर्य, बुध दसवें और बृहस्पति केन्द्र में हो तो गृह की आयु १०० वर्ष की होती है। शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे स्थान में, बृहस्पति पाँचवें में और मंगल छठे में हो तो गृह की आयु २०० वर्ष की होती है।

रामदैवज्ञमते गृहायुष्यमानम्

जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु लग्नारियामित्रसुखत्रिगेषु।
स्थितिः शतस्याच्छरदां सिताकरिज्येननुत्र्यङ्गसुते शते द्वे ॥८४॥

संस्कृतभावार्थः—गृहनिर्माणे गुरुः लग्ने सूर्यः सप्तमे शनिः तृतीये भवेच्चेत् गृहं शतवर्षायुः भवति। सूर्यः तृतीये, कुजः षष्ठे भवति चेत् द्विगुणितशतवर्षायुः भवति।।८४।।

रामदैवज्ञ के मत से गृह की आयु का विचार—यदि गृहनिर्माण लग्न से सूर्य सप्तम में, शनि तृतीय में हो तो उस गृह की आयु १०० वर्ष की होती है। अथवा सूर्य तीसरे में, मंगल छठे में हो तो उस गृह की आयु २०० वर्ष की होती हैं।।८४।।

लग्नाम्बरायेषुभृगुज्ञभानुभिः केन्द्रे गुरौवर्षशतायुरालयम्।
बन्धौगुरुर्व्योम्निशशी कुजार्कजौ लाभे तदाशीतिसमायुरालयम् ॥८५॥

संस्कृतभावार्थः—शुक्रः लग्ने, बुधः दशमे, सूर्यः एकादशे, गुरुश्च केन्द्रे भवति चेत् तद्गृहं शतवर्षायुर्भवति। चतुर्थे गुरुः, दशमे चन्द्रः कुजश्च, एकादशे शनिर्भवति चेत् अशीतिवर्षायुः आरब्धं गृहं भवति।।८५।।

लग्न में शुक्र, दशम में बुध, एकादश में सूर्य, केन्द्र में गुरु हो तो उस घर की आयु १०० वर्ष की होती है। चतुर्थ गुरु, दशम चन्द्रमा, मंगल और शनि एकादश में हों तो उस घर की आयु ८० वर्ष की होती है।।८५।।

प्रारम्भकाले यदि मन्दभौमौ लाभाश्रितौ देवगुरुश्चतुर्थे।
चन्द्रोदये चेच्छरदामशीतिः स्थितिर्नियुक्ता भवनस्य सद्भिः ॥८६॥

संस्कृतभावार्थः—गृहारम्भसमये शनिकुजौ एकादशे गुरुः चतुर्थे चन्द्रः दशमे भवति चेत् तद्गृहम् अशीतिवर्षायुर्भवति।।८६।।

गृहारम्भ के समय यदि शनि, मंगल ग्यारहवें और बृहस्पति चतुर्थ, चन्द्रमा दशम हों तो उक्त गृह की आयु ८० वर्ष की होती है।।८६।।

तन्वादिस्थितग्रहफलम्

लग्नेऽर्के वज्रपातः स्यात्कोशहानिश्च शीतगौ।
मृत्युर्विश्वंभरः पुत्रे दारिद्र्यं रविनन्दने ॥८७॥
जीवे धर्मादिकामाः स्युः सुतोत्पत्तिश्च भार्गवे।
चन्द्रजे कुशला शक्तिर्जनस्यायुः प्रवर्द्धते ॥८८॥

संस्कृतभावार्थः—लग्नगे सूर्ये वज्रपातः, चन्द्रमसि कोषहानिः, कुजे मृत्युः, बुधे कुशलशक्तिरायुर्वृद्धिः, गुरौ धर्मादिकार्यं, शुक्रे पुत्रोत्पत्तिः शनौ च दरिद्रता भवति।

द्वादश भावों में ग्रहों की स्थिति के अनुसार फल—लग्न में सूर्य होने से वज्रपात, चन्द्रमा से कोषहानि, मंगल से मृत्यु, बुध से कुशल, शक्ति और आयु की वृद्धि, वृहस्पति से धर्मादिकार्य, शुक्र से पुत्रोत्पत्ति और शनि से दरिद्रता होती है।

द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चन्द्रे शत्रुक्षयो भवेत्।
भूसुते बन्धनं प्रोक्तं नानाविघ्नाश्च भानुजे ॥८९॥
बुधे द्रविणसंपत्तिर्गुरौ धर्मसमागमः।
यथा काम विनोदेन भृगौ कालं व्रजेदिह ॥९०॥

संस्कृतभावार्थः—द्वितीयभावस्थे सूर्ये हानिः, चन्द्रमसि शत्रुनाशः, कुजे बन्धनम्, बुधे द्रव्यसम्पत्तिः, गुरौ धर्मसमागमः, शुक्रे विनोदः, शनौ नानाविघ्नाश्च भवन्ति।

दूसरा सूर्य हानि, चन्द्रमा शत्रुनाश, मंगल बन्धन, बुध द्रव्य-संपत्ति, बृहस्पति धर्मसमागम, शुक्र विनोद, शनि विघ्नकारक होता है।।८९-९०।।

सौम्यग्रहास्तृतीयस्थाः पापा अपि विशेषतः।
सिद्धिः स्यादचिरादेव यथाभिलषितं प्रति ॥९१॥
चतुर्थस्थानगे जीवे पूजासम्पद्यते नृपात्।
चन्द्रजे च सदा लाभो भूमिलाभस्तु भार्गवे ॥९२॥
वियोगः सुहृदां भानौ मित्रभेदो धरासुते।
बुद्धिनाशो निशानाथे महालाभोऽर्कनन्दने ॥९३॥

संस्कृतभावार्थः—तृतीयभावे शुभग्रहाणामशुभग्रहाणाञ्च स्थितिः शुभाय एव भवति शीघ्रं मनोरथं च साधयति। चतुर्थभावे गुरुः राजसम्मानं करोति, चन्द्रमा लाभदो भवति, शुक्रः भूमिलाभं करोति, सूर्यः मित्रं वियोजयति, मङ्गलः मित्रभेदं करोति, चन्द्रमा बुद्धिनाशं करोति तथा शनिः लाभदायको भवति।।९१-९३।।

तीसरे स्थान में शुभ ग्रह शुभकारक होते है। तृतीय पापग्रह भी शुभ होते हैं, शीघ्र मनोरथपूर्ति करते हैं। चौथा गुरु राजद्वार से सम्मान दिलाता है। चौथा चन्द्रमा सदा लाभदायक होता है। शुक्र भूमिलाभ, सूर्य मित्रवियोग, मंगल मित्रभेद, चन्द्रमा बुद्धिनाश, शनि लाभदायक होता है।।९१-९३।।

पञ्चमस्थे सुराचार्ये मित्रवस्त्रधनागमः।
शुक्रे पुत्रधनप्राप्तिर्हेमाभरणमिन्दुजे ॥९४॥
सुतदुःखं सदा सूर्ये शशांके कलहप्रियः।
भौमे कामविरोधः स्याच्छनौ कामविमर्दनम् ॥९५॥

संस्कृतभावार्थः—पञ्चमभावे गुरुः मित्रवस्त्रधनलाभं च करोति। शुक्रः पुत्रं धनं च ददाति, बुधः स्वर्णभूषणं यच्छति, सूर्यः पुत्रकष्टं करोति, चन्द्रमा कलहकरो भवति, मङ्गलः विरोधं जनयति, शनिः कामं नाशयति।।९४-९५।।

पञ्चम गुरु मित्र, वस्त्र, धन लाभ करता है। शुक्र पुत्र-धनलाभ; बुध सुवर्ण भूषण, सूर्य पुत्रसम्बन्धी कष्ट, चन्द्रमा कलह, मंगल विरोध, शनि कामविनाशकारक होता है।

षष्ठस्थानगते सूर्ये पूजा सम्पद्यते नृपात्।
चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः ॥९६॥
गुरौ चार्थोदयः प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत्।
मानज्ञानस्य कौशल्यं नक्षत्रपतिनन्दने ॥९७॥

संस्कृतभावार्थः—षष्ठे सूर्ये राजपूज्यता, चन्द्रे तोषः, कुजे लाभः, शनौ रिपुनाशः, गुरौ धनवृद्धिः, शुक्रे विद्यागमः तथा बुधे स्थिते सम्मानः ज्ञानकौशलं च लभ्यते।

षष्ठ सूर्य हो तो राजपूज्य, चन्द्रमा से तुष्टि, मंगल से लाभ, शनि से शत्रुबल नाश, गुरु से अर्थोदय, शुक्र से विद्यागम और बुध से सम्मान, ज्ञान में कुशलता।

लग्नात्सप्तमगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते।
गज-वाजि-धरित्रीणां क्रमाद्योगं विनिर्दिशेत् ॥९८॥
भास्करे कीर्तिभङ्गः स्यात्कुजे विग्रहमादिशेत्।
चन्द्रे मन्दे युते मान्द्यं हीनाङ्गत्वं भयं तथा ॥९९॥

संस्कृतभावार्थः—सप्तमे भावे गुरुः हस्तिनं, बुधः अश्वं, शुक्रः भूमिं, सूर्यः कीर्तिभङ्गं, कुजः विद्रोहं, चन्द्रः शनिश्च अङ्गभङ्गं भयं जड़तां हीनाङ्गतां च करोति।

सप्तम गुरु से हाथी, बुध से घोड़ा, शुक्र से भूमियोग, सूर्य से कीर्तिभंग, मंगल से विद्रोह, चन्द्रमा और शनि से अंगभंग, भय, जड़ता होती है।।९८-९९।।

निधनस्थे सहस्रांशौ शत्रुता विपदः सदा।
हानिः शीतमयूखे च मङ्गले रविजे भयम् ॥१००॥
बुधे मानधनप्राप्तिः सुरेज्ये विजयो महान्।
शुक्रः स्वजनतो दद्यात् सुखं पुंसां विशेषतः ॥१०१॥

संस्कृतभावार्थः—अष्टमगे रवौ शत्रुता विपदाप्तिः, चन्द्रे हानिः, कुजे शनौ च भयं, बुधे सम्मानः अर्थाप्तिश्च, गुरौ महान् विजयः, शुक्रे च सुखप्राप्तिर्भवति।

अष्टम सूर्य से शत्रुता, विपत्ति; चन्द्रमा से हानि, मंगल शनि से भय, बुध से मान धन की प्राप्ति, बृहस्पति से महान् विजय और शुक्र से अपनों से सुख होता है।

नवमस्थानगे जीवे बुद्धिभाग्यविवर्द्धनम्।
बुधे विविधभोगाप्तिः शुक्रे मन्दोदयो भवेत् ॥१०२॥
चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे।
कुजे सामर्थ्यहानिः स्याद्रविजे कामदूषणम् ॥१०३॥

संस्कृतभावार्थः—नवमभास्थे गुरौ बुद्धिभाग्योदयः, बुधे विविधभोगाप्तिः, शुक्रे सामान्यभाग्योदयः, चन्द्रे धातुक्षीणता, सूर्ये धर्महानिः, कुजे शक्तिहानिः, शनौ कामदोषश्च भवति।

नवम बृहस्पति से बुद्धि और भाग्यवृद्धि, बुध से विविध भोग, शुक्र से सामान्य भाग्योदय, चन्द्रमा से धातुक्षीणता, सूर्य से धर्महानि, मंगल से शक्तिहानि, शनि से कामदोष होता है।।१०२-१०३।।

दशमस्थानगे शुक्रे शयनासनसिद्धयः।
सुराचार्ये महत्सौख्यं विजयश्च तथा बुधे ॥१०४॥

मार्तण्डे धनवृद्धिश्च चन्द्रे कोषविवर्धनम्।
भौमे बलं सदा पुंसां शनौ कीर्तिविलोपनम् ॥१०५॥
लाभस्थानगताः सर्वे प्रयच्छन्ति शुभं फलम्।
व्यये सर्वे सदौदास्यं प्रदिशन्ति विशेषतः ॥१०६॥

संस्कृतभावार्थः—दशमभावगे शुक्रे शयनासनवृद्धिः, गुरौ सौख्यं, बुधे विजयः, सूर्ये धनवृद्धिः, चन्द्रमसि कोषवृद्धिः, कुजे बलप्राप्तिः, शनौ कीर्तिनाशः, एकादशभावे सर्वे ग्रहाः शुभाः, द्वादशे चोदासीनाः भवन्ति।।१०४-१०६।।

श्लोक ८१ से १०० तक का अर्थ इस चक्र में देखें—

ग्रहाः	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
१ तनु	वज्रपात	कोशहानि	मृत्यु	सामर्थ्य	त्रिवर्ग	पुत्रलाभ	दारिद्र्य
२ धन	हानि	शत्रुक्षय	बन्धन	धनसंपत्	धर्मलाभ	विनोद	अतिकष्ट
३ भ्राता	अतिशुभ	शुभ	अतिशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अतिशुभ
४ सुहृत्	महालाभ	बुद्धिनाश	मित्रभेद	लाभ	राजमान्य	भूमिलाभ	मित्रवियोग
५ पुत्र	पुत्रकष्ट	कलह	कार्यनाश	स्वर्णलाभ	मित्रलाभ	पुत्रलाभ	कामनाश
६ रिपु	राजपूजा	पुष्टि	लाभ	मानमान	धनलाभ	विद्यालाभ	शत्रुहानि
७ स्त्री	कीर्तिभंग	रोग	विग्रह	हयलाभ	गजलाभ	भूमिलाभ	नानाभय
८ मृत्यु	शत्रुपीड़ा	हानि	भग	सम्मानलाभ	विजय	स्वजनसु०	भय
९ धर्म	धर्मनाश	धातुक्षय	शक्तिनाश	नानाभोग	भाग्यवृद्धि	मन्दोदय	कामदोष
१० कर्म	धनवृद्धि	कोशवृद्धि	बलवृद्धि	विजय	महासुख	शय्यासुख	कीर्तिनाश
११ आय	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ
१२ व्यय	उदासीन	उदासीन	उदासीन	उदासीन	उदासीन	उदासीन	उदासीन

द्वादश भावों में स्थित ग्रहों से शयन, सुखादि सिद्धियों का विचार—दशम शुक्र से शयन-आसन की वृद्धि, गुरु से सौख्य, बुध से विजय, सूर्य से धन वृद्धि, चन्द्रमा से खजाना की वृद्धि, मंगल से बलप्राप्ति, शनि से कीर्तिनाश, एकादश स्थान में सभी ग्रह विशेष शुभफल देते हैं। द्वादश स्थान में सभी ग्रह उदासीनता देते हैं।।१०४-१०६।।

ग्रहवशाद् गृहलक्षणानि

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथवा।
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्यायुक्तं चिरं गृहम् ॥१०७॥
शत्रुक्षेत्रगतः खेटैः नीचस्थैर्वा पराजितैः।
प्रारम्भे यस्य भवने लक्ष्मीस्तस्य विनश्यति ॥१०८॥
द्यूनाम्बरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम्।
अब्दान्तः परहस्तस्थं कुर्याच्चेद्वर्णपोऽबलः ॥१०९॥

संस्कृतभावार्थः—स्वोच्चगः शुक्रः लग्ने अथवा गुरुश्चतुर्थे अथवा स्वोच्चशनिः एकादशे भवति चेत् भवनं चिरं सलक्ष्मीकं राजते। यदि त्रयः तदधिका वा ग्रहाः शत्रुक्षेत्रे नीचस्था अथवा अन्यग्रहजिताः चेत् तदारब्धं गृहं अलक्ष्मीकं भवति। यदि वर्णपतिः दुर्बलः तथा सप्तमे दशमे च कश्चित् ग्रहः शत्रोः अंशे भवति चेत् तद् गृहं वर्षाभ्यन्तरे एव परहस्तगतं भवति।।१०७-१०९।।

ग्रहों के अनुसार गृह के लक्षण—अपने उच्च का शुक्र लग्न में अथवा बृहस्पति चतुर्थ में अथवा अपने उच्च का शनि एकादश में हो तो वह गृह चिरकाल लक्ष्मीयुक्त रहता है।

यदि तीन से अधिक ग्रह शत्रु क्षेत्र में या नीचस्थ हों अथवा अन्य ग्रहों से पराजित हों ऐसे समय में यदि गृहनिर्माण किया जाता है तो वह लक्ष्मीहीन होता है।

अथवा यदि वर्णपति निर्बल हो और सातवें या दसवें भाव में स्थित कोई ग्रह शत्रु के अंश में हो तो वह गृह एक वर्ष के भीतर ही दूसरे के हाथ में चला जाता है।।१०७-१०९।।

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैस्सजीवै-
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात्।
द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैः सशुक्रे
वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥११०॥

संस्कृतभावार्थः—पुष्योत्तराषाढोत्तराफाल्गुन्युत्तराभाद्रपदरोहिणीमृगशिरश्रवणाश्लेषा-पूर्वाषाढानक्षत्रेषु गुरौ सति गुरुवासरे च निर्मितं गृहं पुत्रदं राज्यसुखदं च भवति। विशा-

खाश्विनीचित्राधनिष्ठाशतभिषकार्द्रानक्षत्रेषु शुक्रे स्थिते सति शुक्रवासरे च निर्मितं गृहं धन-धान्यवृद्धिकरं भवति।।११०।।

पुष्य, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढा ये नक्षत्र बृहस्पति से युक्त होकर रहे और गुरुवार हो तो उसमें बनाया हुआ गृह पुत्र और राज्यदायक होता है। विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा ये नक्षत्र शुक्र से युक्त होकर रहें और शुक्र का ही दिन हो तो निर्णय किया हुआ गृह धन तथा धान्य को देता है। इसी वाक्य के अनुसार और भी वचन हैं[1]।।११०।।

सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः
कौजेह्नि वेश्माग्निसुतार्तिदं स्यात्।
सज्ञैः कदास्त्रार्यमतक्षहस्तैः
ज्ञस्यैववारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥१११॥

संस्कृतभावार्थः—हस्तपुष्यरेवतीमघापूर्वाषाढामूलनक्षत्रेषु कस्मिंश्चित् कुजे सति कुज-वासरे निर्मितं गृहं अग्निदाहकरं पुत्रनाशकश्च भवति। रोहिणी-अश्विनी-उत्तराफाल्गुनी-चित्रा-हस्त-नक्षत्रेषु कस्मिंश्चित् बुधे सति बुधवासरे गृहारम्भः सुखदं पुत्रदं भवति।।१११।।

हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढा और मूल ये नक्षत्र मंगल से युक्त होकर रहें और उस दिन मंगलवार भी हो तो वह गृह अग्निदाह और पुत्र नाश का कारण होता है। और रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, हस्त ये नक्षत्र बुध युक्त हों तथा उस दिन बुधवार भी हो तो वह गृह सुख एवं पुत्रदायक होता है।।१११।।

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः ।
स मन्दैर्मन्दवारेस्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥११२॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदज्येष्ठानुराधास्वातीभरणीनक्षत्रेषु कस्मिंश्चित् शनि सति शनियुक्तेषु निर्मितं गृहं राक्षसभूताद्याक्रान्तं भवति।।११२।।

पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती, भरणी में से किसी नक्षत्र का शनि हो और उस दिन शनिवार भी हो तो वह गृह राक्षस एवं भूतों से युक्त रहता है।।११२।।

---

१. नारदमते—
श्रवणाषाढयोश्चैव रोहिण्यां चोत्तरात्रये।
गुरुवारे कृतं वेश्म राजयोग्यमिहोच्यते।।
तद्गृहे जातपुत्रस्य राज्यं भवति निश्चितम्।
नारदस्य मतं ह्येतन्नात्र कार्या विचारणा।।

गृहेशतत्स्त्रीसुखवित्तनाशोऽर्केन्दुजीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे ।
कर्तुःस्थितिर्नोविधुवास्तुनोर्भे पुरःस्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात् ॥११३॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्य-चन्द्र-गुरु-शुक्रेषु कश्चिदेकः यदि दुर्बलः स्यात्तदा गृहिणः स्त्रीनाशः भवति, यदि अस्तङ्गतः स्यात्तदा सुखनाशः यदि नीचगः तदा धननाशश्च स्यात्। गृह-नक्षत्रचन्द्रमसोः पुरोगताः सती गृहस्वामी तत्र न निवस्तुं शक्नुयात्। उभयोः पृष्ठगतयोः चौर्यभयं खनिश्च स्यात्।।११३।।

सूर्य, चन्द्र, गुरु, शुक्र ग्रहों में से कोई ग्रह यदि निर्बल, अस्तंगत या नीच स्थान में स्थित हो तो क्रम से गृहेश, गृहपति की स्त्री, सुख, धन का नाश करता है। चन्द्रमा और गृह का नक्षत्र ये दोनों यदि आगे हों तो गृहकर्ता उसमें निवास नहीं कर सकता। उक्त दोनों नक्षत्र यदि पीछे हों तो चोरी, सेंध आदि का भय होता है।।११३।।

ब्रह्मशम्भुमते

गृहायलब्धऋक्षेषु यत्र ऋक्षे च चन्द्रमा ।
शलाकासप्तकं देयं कृत्तिकादिक्रमेण च ॥११४॥
वामदक्षिणभागे तु प्रशस्तं शांतिकारकम् ।
अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदीच्छेच्छ्रेयमात्मनः ॥११५॥

संस्कृतभावार्थः—गृहपिण्डद्वारा प्राप्तं नक्षत्रं चन्द्रनक्षत्रञ्च वामतो भवेच्चेत् शुभं पुरः पश्चाच्चाशुभं भवेत्। अतः आत्मनः श्रेयोऽभीप्सिता इदं विचारणीयम्।

ब्रह्मशम्भु का मत—गृहपिण्ड द्वारा प्राप्त नक्षत्र और चन्द्रनक्षत्र ये दोनों यदि

वसिष्ठमते—
इज्योत्तरात्रया हीन्दु विष्णुधातृ जलोडुषु।
गुरुणा सहितेष्वेषु कृतं गेहं श्रिया युतम्।।
अश्विनीशततारासु विशाखाभाद्रचित्रके।
धनिष्ठादितिसंयुक्ते तथा वै शुक्रवासरे।
गृहं नाटकशालाख्यं देवागारं कृतं शुभम्।
तद्वेश्मनि प्रजातस्तु कुबेरसदृशो भवेत्।।
नारदमते—
मूलं च रेवती चैव कृत्तिकाषाढमेव च।
पूर्वाफाल्गुनिहस्तश्च मघा चैव तु सप्तके।।
एषु भौमेन युक्तेषु वारे तस्यैव वेश्म यत्।
अग्निना दह्यते कृत्स्नं पुत्रनाशश्च जायते।
वसिष्ठमते—
हस्तार्यमत्वाष्ट्रदस्त्रचतुरास्येन्दुभेषु च।
बुधेन सहितेष्वेषु धनपुत्रसुखोद्भवः।।

वाम या दक्षिण हों तो शुभ होता है। और आगे-पीछे अशुभ, अतः अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को इसका विचार अवश्य कर लेना चाहिये।।११४-११५।।

भृगुमते सप्तशलाकाचक्रम्

चक्रे सप्तशलाकाख्ये कृत्तिकादीनि विन्यसेत्।
ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च पुरः पृष्ठे च नो शुभम्॥११६॥

संस्कृतभावार्थः—उक्तचक्रे कृत्तिकातः सप्तनक्षत्राणि पूर्वादिषु दिक्षु स्थाप्यन्ते। यदि वास्तुचन्द्रमसो नक्षत्रं पुरः पश्चाद्वा स्यात् तदा अशुभं भवति।।११६।।

भृगु के मत से सप्तशलाका चक्र—उक्त चक्र में कृत्तिका से सात-सात नक्षत्र पूर्व आदि दिशाओं में दिये जाते हैं। इसका विचार इस प्रकार है, यदि वास्तु चन्द्रमा का नक्षत्र आगे या पीछे हो तो शुभ नहीं होता है।।११६।।

सप्तशलाकाचक्रम्

ऊपर	कृ०	रो०	मृ०	आ०	पु०	पु०	आ०
दायें	म०	पू०	उ०	ह०	चि०	स्वा०	वि०
नीचे	श्र०	अभि०	उ०	पू०	मू०	ज्ये०	अनु०
बायें	भ०	अ०	रे०	उ०	पू०	ष०	ध०

वसिष्ठमते—
अजपाद् द्वितये याम्यमित्रेन्द्रानिलभेषु च।
यत्कृतं शनिसंयुक्ते दह्यते यक्षराक्षसैः।
नारदमते—
ज्येष्ठानुराधके चैव भरणीस्वातिपूर्वभे।
धनिष्ठास्वपि ऋक्षेषु शनिस्तिष्ठद्दिनस्य च।।

वक्तव्य—कृत्तिका से आश्लेषा तक पूर्वदिशा के, मघा से विशाखा तक दक्षिण दिशा के अनुराधा से श्रवण तक पश्चिम दिशा के और धनिष्ठा से भरणी तक उत्तर दिशा के नक्षत्र हैं। यदि वास्तु का नक्षत्र पूर्व दिशा के नक्षत्रों में हो तो पश्चिम दिशा के नक्षत्रों में गृहारम्भ अशुभ होता है। यदि पश्चिम दिशा के किसी नक्षत्र में वास्तु नक्षत्र हो तो पूर्व दिशा के नक्षत्रों में अशुभ होता है। इसके विपरीत पूर्व का हो तो उत्तर में और पश्चिम का हो तो दक्षिण में शुभ होता है।

गृहारम्भे निषिद्धयोगाः

वज्रव्याघातशूलेषु व्यतीपातातिगण्डयोः।
विष्कम्भगण्डपरिघे चाष्टयोगे न कारयेत्॥११७॥

संस्कृतभावार्थः—वज्र-व्याघात-शूल-व्यतिपात-अतिगण्ड-विष्कुम्भ-गण्ड-परिघ-योगेषु गृहारम्भः शास्त्रनिषिद्धो वर्तते।।११७।।

गृहारम्भ में आठ प्रकार के निषिद्ध योग—वज्र, व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कुम्भ, गण्ड, परिघ—इन आठ योगों में गृहारम्भ का निषेध किया गया है।।११७।।

लग्नं कर्कटमाश्रिते हिमकरे देवार्चिते केन्द्रगे।
लक्ष्मीवद्भवनं खगैश्च सुहृदः स्वांशोच्चभागैस्तथा॥
नीचांशैरपि निर्धनं तु खचरो ह्येकः परांशस्थितः।
यामित्रे दशमेऽब्दमध्यत इदं गेहं परैर्नीयते॥११८॥

संस्कृतभावार्थः—कर्कलग्ने चन्द्रमा, केन्द्रे गुरुः, शेषग्रहाः स्वमित्रगृहे उच्चांशे वा स्युश्चेत् एतादृशयोगे निर्मितं गृहं लक्ष्मीसम्पन्नं भवति। यदि निर्माणकाले ग्रहः नीच-राशिगश्चेत् निर्धनता भवति। एक एव ग्रहः दशमे सप्तमे वा भावे स्थितः शत्रोरंशे भवेत् चेत् वर्षे गृहस्य अन्तः अन्त्यस्य अधिकारो भवति।।११८।।

कर्क लग्न में चन्द्रमा, केन्द्र में वृहस्पति शेष ग्रह अपने मित्र अथवा उच्च अंश में हों तो ऐसे समय में बनाया हुआ गृह लक्ष्मी से युक्त होता है। यदि गृहनिर्माण काल

कृपणो नामतः प्रोक्तो धनधान्यादिके गृहे।
पुत्रो जातोऽथवा तस्मिन्गृह्यते यक्षराक्षसैः।।
श्रीपतिमते—
रवौ गृहेशो गृहिणी शशाङ्के धनं सिते देवगुरौ च सौख्यम्।
विनाशमायान्ति बलेन हीने नीचस्थिते वास्तमुपागते वा।।
वसिष्ठमते—
नीचे शत्रुगते जीवे शुक्रे वा यदि वा बुधे।
शशाङ्के वा कृतं गेहमतिनिः स्वत्वमाप्नुयात्।।

में ग्रह नीच राशि में स्थित हो तो निर्धनता होती है। एक भी ग्रह दशम या सप्तम में होकर शत्रु के अंश में हो तो उस गृह में वर्षभर में दूसरों का अधिकार हो जाता है।।११८।।

भृगुर्विलग्ने यदि मीनसंस्थः कर्के गुरुस्तुर्यगृहं गतश्चेत् ।
शनिस्तथैकादशगस्तुलायां गेहं चिरं श्रीसहितं तदा स्यात् ॥११९॥

संस्कृतभावार्थः—मीनराशिगः शुक्रः लग्ने चेत् कर्कस्थः गुरुः चतुर्थे भावे चेत्, तुलाराशिगः शनिः एकादशे भावे चेत् तत् गृहं सर्वदा सलक्ष्मीकं भवति।।११९।।

मीन राशि में स्थित शुक्र यदि लग्न में हो या कर्क का बृहस्पति चौथे स्थान में स्थित हो अथवा तुला का शनि ग्यारहवें हो तो वह घर सदा धनयुक्त रहता है।।११९।।

वास्तुचक्रम्

सूर्यभाद्गणयेद्वास्तुचक्रं च दिनभावधि ।
अश्व-रुद्र-दशर्क्षञ्च ह्यशुभं शुभदं क्रमात् ॥१२०॥

संस्कृतभावार्थः—वास्तुचक्रे सूर्यनक्षत्रतः दिननक्षत्रपर्यन्तं गणयित्वा प्रथमसप्तनक्षत्राणि शुभानि ततः एकादशनक्षत्राणि शुभानि, अन्तिमानि दशनक्षत्राणि अशुभानि भवन्ति।

वास्तुचक्र में सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनें, पहले ७ नक्षत्र अशुभ, अगले ११ नक्षत्र शुभ, अन्तिम १० नक्षत्र अशुभ होते हैं।।१२०।।

रामदैवज्ञमते वृषवास्तुचक्रम्

त्रिवेदवेदाग्नि युगाग्निवेदत्रिकेषु भानोः शशिभं गृहेषु ।
दाहो विनाशः स्थिरताधनश्रीः शून्यञ्च दारिद्र्यमृती क्रमेण ॥१२१॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यनक्षत्रात् चन्द्रनक्षत्रपर्यन्तं गणयेत्। प्रथमे नक्षत्रत्रये गृहारम्भे गृहदाहः, ततः चतुर्षु भेषु विनाशः, ततः चतुर्षु स्थिरता, ततः त्रिषु धनलाभः, ततः चतुर्षु दरिद्रता, ततः त्रिषु मृत्युः भवति। एवदेव वृषवास्तुचक्रम्।।१२१।।

रामदैवज्ञ के मत से वृषवास्तु चक्र—सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनें, यदि प्रथम ३ नक्षत्रों में गृहारम्भ का नक्षत्र हो तो दाह, ४ नक्षत्रों में विनाश, ४ नक्षत्रों में स्थिरता, ३ नक्षत्रों में धनलाभ, ४ नक्षत्रों में लक्ष्मीप्राप्ति, ३ नक्षत्रों में शून्यता, ४ नक्षत्रों में दरिद्रता और ३ नक्षत्रों में मृत्यु होती है। इसका नाम वृषवास्तुचक्र हैं, अतः उक्त नक्षत्रों का विभाजन वृष के अंगों के रूप में चक्र में प्रदर्शित है।।१२१।।

वृषवास्तुचक्रम्

अंग	शिर	अग्रपाद	पृष्ठपाद	पृष्ठ	वामकुक्षि	दक्षकुक्षि	पुच्छ	मुख
नक्षत्र	३	४	४	३	४	३	४	३
फल	गृहदाह	विनाश	स्थिरता	धनलाभ	लक्ष्मीलाभ	शून्य	दरिद्रता	मृत्यु

राजमार्तण्डे वृषभचक्रम्

वृषचक्रं वृषाकारं सर्वावयवसंयुतम् ।
यस्मिन् ऋक्षे स्थितो भानुस्तत्रादौ त्रीणिमस्तके ॥१२२॥
अग्रपादे च चत्वारि पुनश्चत्वारि पश्चिमे ।
पृष्ठे त्रीणि च धिष्ण्यानि कुक्षौ चत्वारि दक्षिणे ॥१२३॥
पुच्छे त्रीणि च धिष्ण्यानि कुक्षौ चत्वारि वामके ।
मुखे त्रीणि च धिष्ण्यानि अष्टाविंशतितारकाः ॥१२४॥
शिरसा वज्रपातः स्यादुद्वेगश्चाग्रपादयोः ।
स्थिरत्वं पश्चिमे पादे पृष्ठे चैव धनागमः ॥१२५॥
दक्षकुक्षौ जयो लाभः पुच्छे स्वामिविनाशनम् ।
वामकुक्षौ च दारिद्र्यं मुखे पीड़ा निरन्तरम् ॥१२६॥
सूर्यभात्तु त्यजेत्सप्त ततश्चैकादशे धनम् ।
ततोऽन्यभेषु दुष्टं स्यादिति वास्तुनिकीर्तनम् ॥१२७॥

संस्कृतभावार्थः—सम्पूर्णाङ्गसहितस्य वृषभस्य शरीरे सूर्यनक्षत्रचक्रात् चक्रानुसारेण चन्द्रनक्षत्रं स्थापयित्वा फलादेशं कुर्यात्। प्रारम्भे सप्तनक्षत्राणि अशुभानि, ततः एकादशशुभानि शेषाणि दश पूर्णतः त्याज्यानि भवन्ति।।१२२-१२७।।

राजमार्त्तण्ड के अनुसार वृषभचक्रम्—सम्पूर्ण अंगों वाले वृषभ के शरीर में सूर्य नक्षत्र से चक्र के अनुसार नक्षत्र रखें और फल समझें। संक्षेप में प्रारम्भ के ७ नक्षत्र अशुभ बीच के ११ शुभ शेष त्याज्य होते हैं। विशेष चक्र द्वारा समझें—

गृहारम्भे वत्सचक्रम्

सूर्यनक्षत्राद्गणना साभिजित्

स्थानानि	न.	फलानि
शीर्षे	३	अग्निभयं दाहः
अग्रपादे	४	शून्यमसत्
पृष्ठपादे	४	स्थिरता
पृष्ठे	३	लक्ष्मीप्राप्तिः
दक्षिणकुक्षौ	४	लाभः सत्
पुच्छ	३	स्वामिनाशः
वामकुक्षौ	४	निर्धनता
मुखे	३	पीडा असत्

वृषभचक्रम्

अंग	शिर	अग्रपाद	पृष्ठपाद	पृष्ठ	दक्षकुक्षि	वामकुक्षि	पुच्छ	मुख
नक्षत्र	३	४	४	३	४	४	३	३
फल	गृहदाह	वज्रपात	स्थिरता	धनागम	जयलाभ	दरिद्रता	स्वामि.	पीडा

वास्तुपुरुषस्य स्थितिनिर्णयः

सवेदास्तिथयोद्विघ्ना नामाक्षरसमन्विताः।
त्रिभिश्चैव हरेद्भागं शेषः पुरुष उच्यते॥१२८॥
एके च वसतिः स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च।
शून्ये तु मृत्युलोके स्यादितिपाराशरोऽब्रवीत्॥१२९॥
स्वर्गेवासे भवेल्लाभः पातालेषु श्रियः सदा।
मृत्युलोके भवेन्मृत्युर्विचिन्त्य गृहमारभेत्॥१३०॥

संस्कृतभावार्थः—वर्तमानतिथौ चतुर्भिः योजयित्वा तां संख्यां द्विगुणीकृत्य तत्र गृहपतेः नामाक्षराणि योजनीयम्। ततश्च त्रिभिर्भागे दत्ते एकसंख्यावशेषे वास्तुपुरुषवासः स्वर्गे भवति द्विसंख्याशेषे पाताले, निश्शेषे मृत्युलोके भवति।।१२८-१३०।।

पराशर मुनि के मत से वास्तुपुरुष की स्थिति का निर्णय—पराशर मुनि के मत से वर्तमान तिथि में ४ मिलाकर उस संख्या को दूना करें, उसमें गृहपति के नाम के अक्षरों की संख्या को जोड़कर ३ का भाग दें। १ शेष में स्वर्ग, २ में पाताल, शून्य शेष में मृत्युलोक में वास्तुपुरुष का वास समझें[1]।।१२८-१३०।।

प्रकारान्तरेण शिल्पशास्त्रे विचारः

वास्तोः शिरसि पुच्छे च याम्यकुक्षौ च पृष्ठतः।
आयुः कामखनेत्रैव वामकुक्षौ खनिः शुभा॥१३१॥

संस्कृतभावार्थः—वास्तुपुरुषस्य शिरसि, पुच्छे, दक्षिणकुक्षौ तथा पृष्ठभागे गर्तः न कार्यः दीर्घायुःकामेन। वामकुक्षौ शुभः खातो भवति।।१३१।।

अन्य प्रकार से शिल्पशास्त्र में विचार—वास्तुपुरुष के शिर, पुच्छ, दक्षिण कुक्षि और पृष्ठ भाग में दीर्घायु की कामना वाले पुरुष को खात (गड्ढा) नहीं बनाना चाहिये, अतः वाम कुक्षि में खात शुभ होता है।।१३१।।

---

१. रामदैवज्ञमते—
गेहाधारम्भेऽर्कभाद्वत्सशीर्षे रामैर्दाहोवेदमैरग्रपादे।
शून्ये वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं रामैः पृष्ठे श्रीयुगैर्दक्षकुक्षौ।
लाभो रामैः पुच्छगैः स्वामिनाशो वेदैर्नैस्व्यं वामकुक्षौ मुखस्थैः।
रामैः पीडा संततं चार्क धिष्ण्याद्वस्रुद्रैर्दिग्भिरुक्तं ह्यसत् सत्।।

आचार्यलल्लमते

त्यजेद्दशशिरोभागे ह्यग्रे सप्तदशांशकान्।
मध्ये नाभिं विजानीयात्तत्र शङ्कुं निवेशयेत्॥१३२॥
अस्थिरस्य शिरो यत्र वास्तोस्तद्गणयेज्जरैः।
दैर्घ्यं वा विस्तृतिं चैव कृत्वाष्टाश्विमितांशकान्॥१३३॥

संस्कृतभावार्थः—वास्तुपुरुषं अष्टाविंशतिभागेषु विभजेत्। दशमभागान् शिरः प्रति, सप्तदशभागान् पुच्छं प्रति त्यजेत्। शिष्टभागेषु शंकुं न्यसेत्।।१३२-१३३।।

आचार्य लल्ल के मत से शंकुन्यास—वास्तुपुरुष को २८ भागों में बाँटें, १० भाग शिर की ओर, १७ भाग पुच्छ की ओर छोड़ दे, अवशिष्ट भाग में शंकुन्यास करें।।१३२-१३३।।

ज्योतिःप्रकाशे कूर्मचक्रम्

तिथिस्तु पञ्चगुणिता कृत्तिकाद्यर्क्षसंयुता।
तथा द्वादशमिश्राश्च नवमाङ्केन भाजिता॥१३४॥
जले वेदामुनिश्चन्द्रस्थले पञ्चद्वयं वसु।
त्रिषष्ठनवचाकाशे त्रिविधं कूर्मलक्षणम्॥१३५॥
जले लाभस्तथा प्रोक्तः स्थले हानिस्तथैव च।
आकाशे मरणं प्रोक्तमिदं कूर्मस्य चक्रकम्॥१३६॥

संस्कृतभावार्थः—तिथिं पञ्चसंख्यया गुणयित्वा वृत्तेः आदिमां नक्षत्रसंख्या योजयित्वा तत्र १२ योजयेत्। अत्र च नवभिः भागं दद्यात्। यदि १-४-७ संख्या अवशिष्यते तर्हि जले, २-५-८ संख्यावशेषे स्थले, ३-६-९ संख्यावशेषे आकाशे कूर्मनिवासो भवति। जले कूर्मो भवति चेत् लाभः स्थले हानिः, आकाशे च मरणं भवति।।१३४-१३६।।

ज्योतिःप्रकाश के अनुसार कूर्मचक्र—तिथि को ५ से गुणा कर वृत्ति का आदि (सप्तशलाका चक्र के अनुसार) नक्षत्र-संख्या को जोड़कर उसमें १२ और जोड़ दें, इसमें ९ का भाग दें, यदि १,४,७ शेष बचे तो जल में, २,५,८ शेष बचे तो स्थल में, ३,६,९ शेष बचे तो आकाश में कूर्म का निवास होता है। इनका फल—जल में लाभ, स्थल में हानि, आकाश में मरण होता है।।१३४-१३६।।

शङ्कुलक्षणनिर्देशः

स्याच्चतुर्विंशविंशाष्टिद्वादशाङ्गुलकैः क्रमात्।
विप्रादीनां शङ्कुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलंकृतम्॥१३७॥
खदिरार्जुनशालोत्थयुगपत्रतरूद्भवम्।
रक्तचन्दनपालाशरक्तशालविशालजम्॥१३८॥

निम्बकारञ्जकुटजं वैणवं विल्ववृक्षजम्।
शङ्कुं त्रिधा विभज्यादौ चतुरस्रं ततः परम्॥१३९॥
अष्टास्रं च तृतीयांशमजस्रमृज्ववर्णकम्।
एवं लक्षणसंयुक्तं परिकल्प्यं शुभे दिने॥१४०॥

संस्कृतभावार्थः—ब्राह्मणानां २४ अङ्गुलमितैः, क्षत्राणां २० अङ्गुलमितैः, वैश्यानां १६ अङ्गुलमितैः, शूद्राणाञ्च द्वादश अङ्गुलमितैः, खदिरार्जुनशालानिम्बकरञ्जकुटजबिल्ववेणुवृक्षोद्भवं शंकुं निर्माय तञ्च स्वर्णवस्त्रादिभिर्भूषयित्वा त्रिषु भागेषु विभजेत्। ततश्च चतुरस्रं, अष्टास्रं, ऋजुं वा शंकुं निर्मायात्।।१३७-१४०।।

शंकुलक्षण अथवा निर्माणविधि—ब्राह्मणादि वर्णों के क्रम से २४, २०, १६, १२ अंगुल का खैर, अर्जुन, शाल, नीम, करंज, कुटज तथा बेल की लकड़ी का शंकु बनाकर उसको सुवर्ण, वस्त्र आदि से विभूषित करें। तदनन्तर शंकु को तीन भागों में विभाजित कर चारकोण, आठकोण अथवा गोल या सीधा शंकु निर्माण करे।।१३७-१४०।।

मण्डलेशानयनविचारः

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतः।
द्विगुणश्चाष्टभिर्भक्तो मण्डलाधिप उच्यते॥१४१॥
इन्द्रो विष्णुर्यमोवायुः कुबेरो धूर्जटिस्तथा।
विधाता विघ्नराजश्च मण्डलेशाः प्रकीर्तिताः॥१४२॥
इन्द्रः सौख्यं यशो विष्णुर्यमो दुःखं निरन्तरम्।
वायुरुत्पाटनं चैव कुबेरो धनदस्तथा॥१४३॥
धूर्जटिः कलहं नित्यं धाता सौख्यप्रवृद्धिदम्।
सर्वसिद्धिं गणाधीशः फलमुक्तं विचक्षणैः॥१४४॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्वामिहस्तेन दीर्घविस्तारमापनं कृत्वा तद्द्विगुणितं ८ संख्यया विभजेत्। शेषक्रमेण मण्डलेशाः भवन्ति। एकशेषे इन्द्रः, द्विशेषे विष्णुः, त्रिशेषे यमः, चतुश्शेषे वायुः, पञ्चशेषे कुबेरः, षट्शेषे शिवः, सप्तशेषे ब्रह्मा, अष्टशेषे गणेशश्च। इन्द्रे सुखं, विष्णौ यशः, यमे दुःखं, वायौ उत्पादनं, कुबेरे धनलाभः, शिवे कलहः, ब्रह्मणि सुखवृद्धिः गणेशे सर्वकार्यसिद्धिर्भवति।।१४१-१४४।।

मण्डलेशानयन प्रकार—गृहस्वामी के हाथ से लम्बाई-चौड़ाई की नाप को गुणा करके उसको पुनः २ से गुणा करें, इसमें ८ का भाग दें; शेष क्रम से मण्डलेश होंगे, यथा—१ शेष में इन्द्र, २ में विष्णु, ३ में यम, ४ में वायु, ५ में कुबेर, ६ में शिव, ७ में ब्रह्मा, ८ में गणेश।।१४१-१४२।।

इनका फल-इन्द्र-सौख्य, विष्णु-यश, यम-दुःख, वायु-उत्पादन, कुबेर-धनलाभ, शिव-कलह, ब्रह्मा-सुखवृद्धि और गणेश-सब प्रकार की सिद्धि देते हैं।

मण्डलेशफलचक्रम्

शेष सं०	१	२	३	४	५	६	७	८
मण्डलेश	इन्द्र	विष्णु	यम	वायु	कुबेर	शिव	ब्रह्मा	गणेश
फल	सौख्य	यश	दुःख	उत्पादन	धनलाभ	कलह	सुखलाभ	सर्वसिद्धि

वास्तुक्षेत्रादवाक्प्रत्यग्दिशि नैव गृहं रचेत्।
उत्तरस्यान्तु पूर्वस्यां गृहात्सर्वं गृहं रचेत्॥१४५॥
सद्मोच्चाद्द्विगुणाधिकान्तरभुवि प्रत्यक् तथा दक्षिणे
गेहं चाशुरचेच्छुभाय भवनं सत्कर्मणां सिद्धये।
माण्डव्यादि मुनीन्द्रगर्गप्रभवा एवं वदन्तीति च
संशोध्यैव गृहं रचेच्छुभदिने भव्यादि कर्माखिले॥१४६॥

संस्कृतभावार्थः—प्रथमतः वास्तुक्षेत्रात् दक्षिणदिशि पश्चिमदिशि वा गृहं न निर्मायात्। उत्तरदिक् पूर्वदिक्च एतदर्थं शुभं भवतः। यदि दक्षिणपश्चिमदिशोः गृहं निर्मातव्यम् तदा प्राचीनगृहोन्नतिपरिमाणात् पश्चिमे दक्षिणे वा परस्तात् द्विगुणदूरस्थाने गृहं निर्मातव्यम्। एतदेव माण्डव्यगर्गादिमुनयोऽपि समर्थयन्ते। इत्थं संशोधनपूर्वकं निर्मितं गृहं सुखसमृद्धिदायकं भवति।।१४५-१४६।।

गृहनिर्माण आरम्भ करने की विधि—पहले घर से दक्षिण और पश्चिम दिशा में गृहनिर्माण न करें। इसके लिये उत्तर एवं पूर्व दिशा शुभ होती है। यदि दक्षिण-पश्चिम की ओर घर बनाना हो तो पहले घर की ऊँचाई से दूना पश्चिम या दक्षिण हटकर घर बनायें। इसी का समर्थन माण्डव्य, गर्ग प्रभृति मुनि करते हैं। इस प्रकार संशोधन करके बनाया हुआ घर सुख-शान्तिदायक होता है।।१४५-१४६।।

अजिरानयनप्रकारस्तत्फलञ्च

दीर्घविस्तारसंख्यैक्ये चन्द्रैश्च गुणिते तथा।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषमाजिरमुच्यते॥१४७॥
दाता विचक्षणो भीरुः कलहो नृपदानवौ।
क्लीवश्चौरो धनी चेति नामतुल्यं फलं स्मृतम्॥१४८॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्वामिनः हस्तस्य दीर्घं विस्तारं च मिथः गुणयित्वा नवभिः भाजयित्वा यच्छेषं तत् फलं क्रमेणैवं भवति। एकस्मिन् शेषे दाता, द्वयोः विचक्षणः, त्रिषु भीरुः, चतुर्षु कलहः, पञ्चसु राजा, षट्सु दानवः, सप्तसु नपुंसकः, अष्टसु धनी च। एषां फलान्यपि नामानुगुणान्येव भवति।।१४७-१४८।।

अजिरानयन का प्रकार एवं फल—गृहकर्ता के हाथ से लम्बाई-चौड़ाई की नाप को गुणा करके ९ का भाग देकर जो शेष बचे उसका फल क्रमशः इस प्रकार होता है। यथा—१ में दाता, २ विचक्षण (बुद्धिमान्) ३ भीरु, ४ कलह, ५ राजा, ६ दानव, ६ नपुंसक, ८ धनी अर्थात् इन शब्दों के नाम के अनुसार ही फल भी होता है[1]।

द्वारनिर्णयविचारः

पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिणे शुभम्।
शूद्राणां पश्चिमे द्वारं नृपाणामुत्तरे मतम् ॥१४९॥

संस्कृतभावार्थः—ब्राह्मणराशेः पूर्वद्वारं, क्षत्रियराशेः उत्तरद्वारं, वैश्यराशेः दक्षिणद्वारं, शूद्रराशेः पश्चिमद्वारं च शुभाय भवति।।१४९।।

राशि के अनुसार द्वारनिर्णय का विचार—ब्राह्मणराशि के लिये पूर्वद्वार, क्षत्रिय-राशि के लिये उत्तरद्वार, वैश्य राशि के लिये दक्षिणद्वार और शूद्रराशि के लिये पश्चिम द्वार शुभ होता है।।१४९।।

महेश्वरमते द्वारविचार

सर्वद्वार इहध्वजो वरुणदिग्द्वारं च हित्वा हरिः।
प्राग्द्वारो वृषभो गजो यम सुरेशाशामुखः स्याच्छुभः ॥१५०॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्ववर्णितध्वजायः सर्वासु दिक्षु शुभः। सिंहायवतां पश्चिमान्यत् द्वारं शुभम्। वृषायवतां पूर्वद्वारं, गजायवतां च दक्षिणपूर्वद्वारे शुभे भवतः।।१५०।।

माहेश्वर के मत से आय के अनुसार द्वार का विचार—पूर्ववर्णित ध्वज आय को सभी दिशाओं में द्वार शुभ होता है, सिंह आय को पश्चिम के अतिरिक्त अन्य द्वार शुभ होते हैं। वृष आय को पूर्वद्वार और गज आय को दक्षिण और पूर्व द्वार शुभ होते हैं।।१५०।।

आयवर्णदृष्ट्या द्वारविचारः

ध्वजे प्रतीच्यां मुखमग्रजानामुदङ्मुखं भूमिभृतां च सिंहे।
विशो वृषे प्राग्वदनं गजे तु शूद्रस्य याम्यां हि समामनन्ति ॥१५१॥

संस्कृतभावार्थः—ध्वजाये ब्राह्मणवर्णे च सिंहाये क्षत्रवर्णे च उत्तरे वृषाये वैश्य-वर्णे च पूर्वस्मिन्, गजाये शूद्रजातौ च दक्षिणे द्वारं शुभं भवति।।१५१।।

आय व वर्ण के अनुसार द्वार का विचार—ध्वज आय और ब्राह्मण वर्ण को

१. **प्रकारान्तरेण फलम्**—
तस्करभोगविचक्षणदातानृपतिनपुंसकधनदाश्च।
दरिद्रभयदाताह्येते कथिता नवभक्तफलं सौम्यैः।।

पश्चिम मुख द्वार सिंह आय, क्षत्रिय वर्ण का उत्तर द्वार, वृष आय, वैश्य वर्ण को पूर्व मुख द्वार और गज आय, शूद्रजाति को दक्षिण मुख द्वार शुभ होता है[1]।।१५१।।

मार्तण्डोक्तद्वारविचारः

पूर्वादौ त्रिषडर्थपञ्चमलवेद्वाः सव्यतोङ्कौद्धृते।
दैर्घ्ये द्व्यंशसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासु दिक्षूदिता ॥१५२॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्य दैर्घ्यविस्तारयोगं नवभिर्भाजयित्वा पूर्वद्वारे करणीये वामतः द्व्यंशमितां भूमिं त्यक्त्वा तृतीयतुरीयांशे दक्षिणमुखद्वारे करणीये चतुर्थपञ्चमभागे उत्तरमुखे द्वारे करणीये चतुर्थपञ्चमांशे एव द्वारं निर्मातव्यम्।।१५२।।

मार्त्तण्ड के अनुसार द्वार का विचार—गृह के दीर्घ-विस्तार के योग में ९ का भाग देकर पूर्वद्वार करना हो तो बायीं ओर से दो हिस्सा भूमि को छोड़कर तीसरे-चौथे अंश में, दक्षिणाभिमुख द्वार बनाना हो तो चौथे-पाँचवें भाग में और उत्तराभिमुख द्वार करना हो तो चौथे-पाँचवें भाग में ही द्वार की रचना करनी चाहिये[2]।।१५२।।

१. **रामदैवज्ञमते**—
ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा।
प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोगजेऽथवा पश्चादुदक् पूर्वयमे द्विजादितः।।
ध्वजे परास्यं विप्राणां राजां सिंहेऽप्युदङ्मुखम्।
गजे शूद्रस्य याम्यास्यं विशः पूर्वमुखं वृषे।।
२. **वराहमिहिरमते**—
दैर्घ्ये नवांशात्पदमत्रसव्याद् द्वारं शुभं प्राक् त्रिचतुर्थभागे।
चतुर्थषष्ठे दिशि दक्षिणस्यां पश्चाच्चतुःपञ्चमके तथोदक्।।

इसमे भी उपर्युक्त रीति के अनुसार दीर्घ विस्तार में ही द्वार करना चाहिए। कोण में द्वार करना अनिष्टद होता है। लिखा भी है—

द्वारमायामतः कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
विस्तारकोणद्वारं यद् दुःखशोकभयप्रदम्।।

विश्वकर्मप्रकाश में भी भित्ति के मध्य (उपरि) भाग में द्वार करना निषेध है। यथा—
भित्तिमध्ये कृतद्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्।
आवहेत् कलहं शोकं नारीर्वासं प्रदूषयेत्।।

एवं द्वार के ऊपर द्वार या सामने द्वार करना भी निषेध है, यथा—
द्वारस्योपरि यद् द्वारं द्वारं द्वारस्य सम्मुखम्।
न कार्यं व्ययदं यच्च संकटं तद्दरिद्रकृत्।।

एवं भित्ति मध्य के शिरा आदि प्रदेशों से भी द्वार करना सर्वदा ही निषेध है। यथा—
शिरा मर्माणि वंशाश्च नालमध्यं च सर्वशः।
विहाय वास्तुमध्ये च द्वाराणि विनिवेशयेत्।।

वराहमिहिरोक्तद्वारवेधफलम्

मार्ग तरु कोण कूप स्तम्भ भ्रम विद्धमशुभदं द्वारम्।
उच्छ्रायाद्द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥१५३॥

संस्कृतभावार्थः—मार्गवृक्षकोणकूपस्तम्भचक्रवेधयुक्तं द्वारमशुभं भवति किन्तु द्वारोन्नतिमितदूरस्थाने एषु दोषेषु सत्सु ते परिहता भवन्ति।।१५३।।

वराहमिहिर के अनुसार द्वार का फल—मार्ग, वृक्ष, कोण, कूप, स्तम्भ, चक्र से वेधयुक्त द्वार अशुभ होता है। किन्तु द्वार की ऊँचाई से दूरी पर ये सब हों तो उक्त दोष नहीं होते।।१५३।।

विशेषफलविचारः

रथ्या विद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा।
पङ्कद्वारे शोकोव्ययोऽम्बुनिःस्राविणि प्रोक्तः ॥१५४॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।
स्तम्भेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्राह्मणाभिमुखे ॥१५५॥

संस्कृतभावार्थः—मार्गविद्धं द्वारं गृहस्वामिनं नाशयति, वृक्षविद्धं बालकानामशुभं करोति, पङ्कविद्धं शोककारकं, अम्बुनिस्स्रावविद्धं धनव्ययाधिक्यं, कूपविद्धं अपस्मारं, देवविद्धं विनाशं, स्तम्भविद्धं स्त्रियः चरित्रनाशं, ब्राह्मणविद्धं कुलनाशं च करोति।

विशेष फल—मार्ग से वेधयुक्त गृहद्वार गृहपति का नाश करता है। वृक्ष से वेधयुक्त गृहद्वार बालकों के लिये अहितकारक होता हैं, पंकविद्ध द्वार शोक करता है। जल निकलने वाले मार्ग से विद्ध द्वार धन व्यय कराता है, कुयें से विद्ध द्वार अपस्मार (मृगी) रोग करता है, देवमूर्ति से विद्ध द्वार विनाशकारक होता है। स्तम्भविद्ध द्वार स्त्री को दुश्चरित्र बनाता है, ब्राह्मण से विद्ध द्वार कुलनाश कराता है।।१५४-१५५।।

द्वारविषये विशेषविचारः

उन्मादः स्वयमुद्घटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च ॥१५६॥
द्वार द्वारस्योपरि यत्तत्र शिवाय शङ्कटं यच्च।
आव्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥१५७॥
पीडाकरमतिपीडितमन्तविनतं भवेदभावाय।
वाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा ॥१५८॥

संस्कृतभावार्थः—स्वमुद्घाटितं द्वारम् उन्मादं करोति, स्वयं पिहितं कुलनाशं, प्रमाणाधिकं राजभयं, प्रमाणान्न्यूनं चोरभयं शरीरकष्टं च, द्वारोपरि द्वारम् अशुभं करोति। अनायतं द्वारम् अशुभं भवति। अत्यन्तायतं क्षुद्भयं वक्रं च कुलनाशं करोति। वृक्षविद्धं कष्टकरं द्वारान्तः वृक्षनतिश्चेत् मृत्युकरं, बहिः नतिश्चेत् प्रवासः भवति। अन्यत्र दिशि अवनतिश्चेत् तस्करभयं पीड़ां च करोति।।१५६-१५८।।

द्वार के विषय में विशेष विचार—दरवाजा यदि अपने आप खुलता हो तो 'उन्माद' रोग होता है, स्वयं बन्द होता हो तो कुलनाश, प्रमाण से अधिक हो तो राजभय, प्रमाण से कम हो तो चोर भय और शारीरिक कष्ट होता है। द्वार के ऊपर द्वार शुभ नहीं होता है। मोटाई में कम द्वार भी अच्छा नहीं होता, जो अधिक मोटा दरवाजा होता है वह भूख का भय कराता है। यदि टेढ़ा हो तो कुल का नाश करता है द्वार पर यदि गूलर का पेड़ लगा हो तो गृहपति को कष्ट देता है। गृह के भीतर झुकाव हो तो गृहपति का मरण होता है। यदि बाहर की ओर झुका हो तो परदेश में निवास करता है और यदि दूसरी दिशा में झुका हो तो चोर पीड़ादायक होता है।

तत्र विशेषविचारः

मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्दधीत रूपर्द्धा।
घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥१५९॥

संस्कृतभावार्थः—मुख्यद्वाररचनानुसारमेव अन्यद्वाराणि निर्मातव्यानि। तानि च कलश-श्रीफल-लता-पत्र-सिंहादिरम्यचित्रैः अलङ्करणीयानि।।१५९।।

द्वार का विशेष वर्णन—प्रधान द्वार की रचना जिस प्रकार की गयी हो, अन्य द्वारों की भी उसी प्रकार करे और उसको कलश, श्रीफल, लता, पत्र एवं सिंह आदि के चित्रों से अलंकृत करना चाहिये।।१५९।।

प्रकारान्तरेण विचारः

पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि न वेधं चिन्तयेद् बुधः।
प्रासादे वा गृहे वापि वेधमग्रे विनिर्दिशेत् ॥१६०॥
प्रथमान्त्ययामवर्ज्यं द्वित्रिप्रहरसंभवा।
छायावृक्षद्वयादीनां सदा दुःखप्रदायिनी ॥१६१॥

संस्कृतभावार्थः—पृष्ठपार्श्वयोः वेधो न भवति, द्वयोः तदधिकानां वा वृक्षाणां छाया प्रथमान्तिमप्रहरद्वयं विहाय द्वितीयतृतीयप्रहरयोः दुःखदायिका भवति।।१६०-१६१।।

द्वार पर वृक्षों की छाया का फल—पीछे और पार्श्व में वेध नहीं होता, दो या इससे अधिक वृक्षों की छाया पहले वाली और अन्तिम पहर को छोड़कर दूसरे और तीसरे पहर में दुःख देने वाली होती हैं।।१६०-१६१।।

नवभागं गृहं कृत्वा पञ्चभागं तु दक्षिणे।
त्रिभागमुत्तरे कार्यं शेषं द्वारं प्रकीर्तितम् ॥१६२॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्य यस्मिन् भागे द्वारं निर्मातव्यम् तस्य भागस्य दैर्घ्यविस्तारौ योजयित्वा नवभिः भाजने तत्र पञ्च दक्षिणे त्र्यञ्च उत्तरे त्यक्त्वा शेषे द्वारं निर्मातव्यम्। गृहस्य दक्षिणवामभागौ गृहात् निस्सरणस्थितौ भाविनौ बोध्यौ।।१६२।।

गृह के जिस भाग में द्वार बनाना हो उस भाग की लम्बाई-चौड़ाई को जोड़कर उसमें ९ का भाग देना चाहिये। उसमें ५ भाग दक्षिण और ३ भाग उत्तर को छोड़कर शेष भाग में द्वार बनाना चाहिये। मकान का दक्षिण-वाम भाग घर से बाहर निकलते समय का समझे[1]।।१६२।।

---

१. **वास्तुरत्नावल्याम्**—

दक्षिणाङ्गः स वै प्रोक्तो मन्दिरान्निःसृते सति।
यो भूयाद्दक्षिणे भागे वामे भूयात्स वामगः।।

पूर्व वाक्यों को स्पष्ट करने के लिये ये वचन हैं; यथा—

पूर्वाण्यैशान्यां याम्याग्नेय्यां दक्षिणानि जानीयात्।
द्वाराणि नैर्ऋतात् पश्चिमान्युदक्स्थानि वायव्याम्।।
आग्नेयमग्निभयदं पार्जन्यस्त्रीप्रसूतिदं द्वारम्।
प्रचुरधनदं जयन्तं नृपवल्लभकारि माहेन्द्रम्।।
शौर्ये क्रोधः प्रचुरः सत्येऽनृतवादितं भृशे क्रौर्यम्।
चौर्यं तथान्तरिक्षे प्राग्द्वाराणि प्रविष्टानि।।
वायव्येऽल्पसुतत्वं प्रैष्यं पौष्णेऽथ नीचता वितथे।
बह्वन्नपानपुत्रं वृहत्क्षते याम्ये अपि रौद्रम्।।
गान्धर्वे गन्धत्वं नृपचौर्यभयाय भृङ्गराजाख्यम्।
मृगमपि सुतवीर्यघ्नं दक्षिणतो द्वारनिर्देशः।।
पित्र्ये शरीरपीडा दौवारिकसंज्ञिते च रिपुवृद्धिः।
सुग्रीवे धनहानिः पुत्रधनाढ्यं कुसुमदन्तम्।।
वारुणमर्थनिचयदं नृपभयदं वासुरं विनिर्दिष्टम्।
शोषं धनहानिकरं बहुरोगं पापयक्ष्माख्यम्।।
रोगमुखं वधबन्धदमात्मजवैराभिवृद्धिदं नागम्।
मुख्यं धनसुतवृद्धिदमनेककल्याणदं च भल्लाटम्।।
सौम्यं धनपुत्रकरं भौजङ्गे पुत्रवैररिपुवृद्धिः।
अदितौ स्त्रीदोषाः स्युर्दितौ धनं संक्षयं याति।।

मतान्तरे—

सूर्यक्षाद्युगनागाष्टगुणवेदैः शुभाशुभम्।
शिरः कोणद्वारशाखां देहलीमध्यगैः क्रमात्।।

यथा ज्योतिर्निबन्धे—

द्वारचक्रं प्रवक्ष्यामि भाषितं विश्वकर्मणा।
सूर्यभाद्वचतुष्कं तु शिरस्योपरि विन्यसेत्।।

बृहत्संहितोक्तद्वाराणां शुभाशुभफलम्

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्।
क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्यञ्च पूर्वेण ।।१६३।।

संस्कृतभावार्थः—गृहभित्तेः नवमागे कृते प्रतिभित्ति अष्टद्वाराणि भवन्ति। पूर्वदिशि अष्टद्वाराणां फलम्—शिखिद्वारं वायुभयम्, द्वितीयात् पर्जन्यद्वारात् कन्यालाभः, तृतीयात् जयन्तद्वारात् धनलाभः, चतुर्थात् इन्द्रद्वारात् राजप्रियता, पञ्चमात् सूर्यद्वारात् क्रोधाधिक्यं, षष्ठात् सत्यद्वारात् वञ्चना, सप्तमात् भृशद्वारात् क्रूरता, अष्टमात् अन्तरिक्षद्वारात् चोर-भयं च भवति।।१६३।।

बृहत्संहिता के अनुसार द्वार का शुभाशुभ फल—गृहभित्ति (दीवाल) के ९ विभाग करने से प्रत्येक भित्ति में आठ-आठ द्वार होते हैं, इस प्रकार चारों भित्तियों के ३२ द्वार होते हैं। पूर्व के ८ द्वारों का फल प्रथम शिखिद्वार से वायुभय, द्वितीय पर्जन्य-द्वार से कन्यालाभ, तृतीय जयन्तद्वार से धनलाभ, चतुर्थ इन्द्र द्वार से राजप्रियता, पञ्चम सूर्यद्वार से क्रोध की अधिकता, षष्ठ सत्यद्वार से असत्यता, सप्तम भृशद्वार से क्रूरता और अष्टम अन्तरिक्षद्वार से चौरभय होता है।।१६३।।

अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः।
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ।।१६४।।

संस्कृतभावार्थः—दक्षिणदिशि प्रथमादनिलद्वारात् पुत्रन्यूनता, द्वितीयात् पौष्णद्वारात् दासवृत्तिः, तृतीयात् वितथद्वारात् नीचता, चतुर्थबृहत्क्षतद्वारात् भक्ष्यपानम् पुत्रवृद्धिश्च, पञ्चमयाम्यद्वारात् अशुभम्, षष्ठगान्धर्वद्वारात् कृतघ्नता, सप्तमात् भृङ्गराजद्वारात् धनहीनता, अष्टमात् मृगद्वारात् बलनाशश्च भवति।।१६४।।

दक्षिण के ८ द्वारों का फल—प्रथम अनिलद्वार से पुत्रों की संख्या में कमी, द्वितीय पौष्णद्वार से दासवृत्ति, तृतीय वितथद्वार से नीचता, चतुर्थ बृहत्क्षतद्वार से भक्ष्यपान एवं पुत्रवृद्धि, पञ्चम याम्यद्वार से अशुभ, षष्ठ गन्धर्वद्वार से कृतघ्नता, सप्तम भृङ्गराजद्वार से धनहीनता और अष्टम मृगद्वार से बलनाश होता है।।१६४।।

द्वे द्वे कोणे प्रदातव्ये शाखायुग्मे द्वयं द्वयम्।
अधश्च त्रीणि देयानि वेदा मध्ये प्रतिष्ठिताः।।
राज्यं स्यादूर्ध्वनक्षत्रे कोणेषूद्वासनं भवेत्।
शाखायां लभते लक्ष्मीमधश्चैव मृतिं लभेत्।।
मध्यभेषु लभेत्सौख्यं चिन्तनीयं सदा बुधैः।

तथा चान्यः—

दिनकरकिरणाक्रान्तर्क्षतो द्वारचक्रे युगयुगयमवेदद्विद्विवेदद्विराभैः।
सितमुडुगणभागं विन्यसेदूर्ध्वतोऽन्तर्नियममखिलदिक्कं नाप्यधःकोणभं सत्।।

सुतपीडा रिपुवृद्धिर्न सुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत्।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥१६५॥

संस्कृतभावार्थः—पश्चिमदिशि अष्टद्वाराणां फलानि—प्रथमात् पितृद्वारात् पुत्रकष्टम्, द्वितीयात् दौवारिकद्वारात् शत्रुवृद्धिः, तृतीयात् सुग्रीवद्वारात् धनपुत्रहानिः, चतुर्थकुसुमदन्तद्वारात् पुत्रधनप्राप्तिः, पञ्चमवरुणद्वारात् धनसम्पत्तिप्राप्तिः, षष्ठात् असुरद्वारात् राजभयम्, सप्तमात् शोषद्वारात् धननाशः, अष्टमात् पापयक्ष्मद्वारात् रोगभयञ्च भवति।।१६५।।

पश्चिम के ८ द्वारों का फल—प्रथम पितृद्वार से पुत्रकष्ट, द्वितीय दौवारिक द्वार से शत्रुवृद्धि, तृतीय सुग्रीवद्वार से धन, पुत्र हानि, चतुर्थ कुसुमदन्त द्वार से पुत्र-धन-फल की प्राप्ति, पञ्चम वरुणद्वार से धन-सम्पत्ति, षष्ठ असुरद्वार से राजभय, सप्तम शोषद्वार से धननाश और अष्टम पापयक्ष्मा द्वार से रोगभय होता है।।१६५।।

वधबन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुणसम्पत्।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ॥१६६॥

संस्कृतभावार्थः—उत्तरदिशि अष्टद्वाराणां फलानि—प्रथमात् रोगद्वारात् वधबन्धनम्, द्वितीयात् सार्पद्वारात् रिपुवृद्धिः, तृतीयात् मुख्यद्वारात् पुत्रधनलाभः, चतुर्थात् भल्लाटद्वारात् सद्गुणसम्पत्तिः, पञ्चमात् सौम्यद्वारात् पुत्रधनलाभः, षष्ठात् भुजङ्गद्वारात् पुत्रवैरम्, सप्तमात् आदित्यद्वारात् स्त्रीजन्मदोषः, अष्टमात् दितिद्वारात् निर्धनता भवति।।१६६।।

उत्तर के ८ द्वारों का फल—प्रथम रोग द्वार से वध-बन्धन, द्वितीय सार्प द्वार से रिपुवृद्धि तृतीय मुख्य द्वार से पुत्र-धन लाभ, चतुर्थ भल्लाट द्वार से सद्गुण-सम्पत्ति, पञ्चम सौम्य द्वार से पुत्र-धन लाभ, षष्ठ भुजंग द्वार से पुत्रवैर, सप्तम आदित्य द्वार से स्त्रीजन्म दोष और अष्टम दिति द्वार से निर्धनता होती है।।१६६।।

रामदैवज्ञमते द्वारचक्रम्

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै-
र्नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत।
देहल्यां गुणभैर्मृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम् ॥१६७॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यनक्षत्रात् द्वारचक्रं विचार्य द्वारनिर्माणे लक्ष्मीः प्राप्यते, अष्टनक्षत्राणि कोणेषु कुर्यात् ततः उद्वासः फलम्, अष्टनक्षत्राणि शाखासु दद्याश्चेत् सुखप्राप्तिः, नक्षत्रत्रयं देहल्यां दत्तं चेत् गृहपतिमृत्युः भवति। चत्वारि नक्षत्राणि मध्ये कुर्यात् चेत् सुखलाभो भवति। इत्थं विचार्य द्वारनिर्माणे शुभफलानि प्राप्यन्ते।।१६७।।

रामदैवज्ञ के मत से द्वारचक्र—सूर्य के नक्षत्र से द्वारचक्र का विचार करे द्वार निर्माण करने से लक्ष्मीप्राप्ति, ८ नक्षत्र कोण में दें इनसे उद्वास (परदेश जाने की इच्छा)

८ नक्षत्र शाखा में दे; इनसे सुख फिर ३ नक्षत्र देहली में दें, इनमें गृहपति की मृत्यु, ४ नक्षत्र बीच में दें; इनमें सुख-प्राप्ति होता है। इस चक्र के अनुसार द्वार-निर्माण शुभ होता है।।१६७।।

द्वारस्थापने शुभनक्षत्राणि

द्वारस्थापनक्षत्राण्युच्यन्तेऽश्विनि चोत्तराः।
स्वातौ पूष्णि च रोहिण्यां द्वारशाखावरोपणम् ॥१६८॥

संस्कृतभावार्थः—अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, स्वाती, रोहिणी नक्षत्राणि द्वारस्थापनाय शुभानि भवन्ति।।१६८।।

द्वारस्थापन में तिथि का विचार—अश्विनी, तीनों उत्तरा, स्वाती, रोहिणी—ये नक्षत्र द्वारस्थापन के लिये शुभ होते है।।१६८।।

द्वारस्थापने तिथिविचारः

पञ्चमी धनदा चैव मुनिनन्दवसौ शुभम्।
प्रतिपत्सु न कर्त्तव्यं कृते दुःखमवाप्नुयात् ॥१६९॥
द्वितीयायां द्रव्यहानिः पशुपुत्रविनाशनम्।
तृतीया रोगदा ज्ञेया चतुर्थी भङ्गकारिणी ॥१७०॥
कुलक्षयं तथा षष्ठी दशमी धननाशिनी।
विरोधकृदमा पूर्णा नस्याच्छाखावरोपणम् ॥१७१॥

संस्कृतभावार्थः—पञ्चम्यां द्वारस्थापने धनलाभो भवति। सप्तम्याम् अष्टम्यां नवम्यां च शुभं प्रतिपदि दुःखप्राप्तिः, तृतीयायां रोगः, चतुर्थ्यां कार्यभङ्गः, षष्ठ्यां कुलनाशः, दशम्यां धननाशः, पर्वणोः विरोधश्च भवति।।१६९-१७१।।

द्वारस्थापन में तिथि का विचार—पञ्चमी तिथि में द्वार-स्थापन करने से धन-लाभ, इसके अतिरिक्त सप्तमी, अष्टमी, नवमी तिथियाँ भी शुभ हैं। प्रतिपदा तिथि को द्वार-स्थापन करने से दुःख-प्राप्ति होती है, अतः यह वर्जित है। तृतीया में रोग, चतुर्थी में भंग, षष्ठी में कुलनाश, दशमी में धननाश और पूर्णिमा, अमावस्या वैरकारक होती हैं।।१६९-१७१।।

तथान्यो मुहूर्तमुक्तावल्याम्

भवेत्पूष्णमैत्रे च पुष्ये च शाक्रे
करे दस्रचित्रानिलौचादितौ च।
गुरुश्चन्द्रशुक्रार्कसौम्ये च वारे
तिथौ नन्दपूर्णाजयाद्वारशाखा ॥१७२॥

संस्कृतभावार्थः—रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु इत्येतानि नक्षत्राणि रविसोमबुधगुरुशुक्रवासराः नन्दाजयापूर्णातिथयश्च द्वारस्थापनाय शुभा भवन्ति॥१७२॥

अन्य मत में द्वारस्थापन का मुहूर्त—रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती और पुनर्वसु नक्षत्र; रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार तथा नन्दा जया पूर्णा तिथियाँ द्वारस्थापना में शुभ होती हैं॥१७२॥

ध्रुवभे शुभवारे च स्थिरे लग्ने शुभे दिने।
द्वारं स्थाप्यं मृगं चित्र वर्गसम्पद्विवर्द्धनम् ॥१७३॥
चरे स्थिरे च नक्षत्रे बुधशुक्रदिने तिथौ।
शुभे कपाटयोगः स्याद्द्विस्वभावोदये गृहे ॥१७४॥

संस्कृतभावार्थः—ध्रुवनक्षत्रं शुभवारं स्थिरलग्नं शुभतिथिश्च द्वारस्थापनाय शुभा भवन्ति। तत्रापि मृगशिरा-चित्रा इत्यनयोः योगः कुलसम्पत्तिं वर्धयति। एवं चराचरनक्षत्रेषु बुधभृगुवारयोः शुभतिथिषु द्विस्वभावे लग्ने च द्वारस्थापनं शुभं भवति॥१७३-१७४॥

गुरु के मत से द्वारस्थापन—गुरु के मत से ध्रुव नक्षत्र शुभ वार स्थिर लग्न शुभ तिथि में द्वारस्थापन शुभ होता है। उसमें भी मृगशिरा और चित्रा नक्षत्र कुल-सम्पत्ति को बढ़ाने वाले हैं और चर स्थिर नक्षत्र, बुध, शुक्रवार, शुभ तिथि और द्विस्वभाव लग्न में कपाट-(दरवाजा)-स्थापना शुभ होती है॥१७३-१७४॥

माण्डव्यमते विचारः

सूत्र-शङ्कु-शिला-द्वारगृहच्छादनपूर्वकम् ।
कार्यस्तम्भप्रतिष्ठोक्ते धिष्ण्ये वारे तिथौ तथा ॥१७५॥

संस्कृतभावार्थः—सूत्रशंकुशिलान्यासद्वारस्थापनगृहाच्छादनादिकार्येषु स्तम्भप्रतिष्ठा-प्रकरणे वर्णिताणि तिथिवारनक्षत्राण्येव शुभानि भवन्ति॥१७५॥

द्वारस्थापन में माण्डव्य का मत—सूत्र, शंकु, शिलान्यास, द्वारस्थापन, गृहा-च्छादन आदि कार्य स्तम्भ-प्रतिष्ठा के प्रकरण में कहे गये तिथि, वार, नक्षत्रों में शुभ होते हैं॥१७५॥

नृपादिब्राह्मणान्तानां पञ्चपञ्चगृहाणां प्रमाणानि

उत्तममष्टाभ्यधिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन।
अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येण ॥१७६॥
षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुष्षष्टिः।
एवं पञ्च गृहाणि षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥१७७॥

षष्टिश्चतुर्भिर्हीना वेश्मानि पञ्च सचिवस्य।
स्वाष्टांशयुतो दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥१७८॥
षड्भिः षड्भिश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताऽशीति।
त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम् ॥१७९॥
नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम्।
नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥१८०॥
अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषां कोशरतितुल्यम्।
युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम् ॥१८१॥
चत्वारिंशद्धीनाम् चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्चयावदिति।
षड्भागयुतादैर्घ्यं दैवज्ञपुरोधसोर्भिषजः ॥१८२॥

श्लोक सं० १७६ से १८२ तक का अर्थ निम्नलिखित चक्र द्वारा समझें[१]।

---

१. **कश्यपमते**—
अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारान्नृपमन्दिरम्।
कार्य प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टोनितानि तु॥
विस्तारं पादसंयुक्तं दैर्घ्य तेषां प्रकल्पयेत्।
एवं पञ्च नृपः कुर्याद् गृहाणां च पृथक् पृथक्॥

ब्राह्मणादीनां पञ्चविधगृहनिर्माणविधानचक्रम्—

गृहपति	प्रथम		द्वितीय		तृतीय		चतुर्थ		पञ्चम		गृह
	हाथ	अंश	हाथ	अंश	हाथ	अंश	हाथ	अंश	हाथ	अंश	प्रमाण
राजा	१०८	०	१००	०	९२	०	८४	०	७६	०	विस्तार
	१३५	०	१२५	०	११५	०	१०५	०	९५	०	दीर्घता
मन्त्री	६०	०	५६	०	५२	०	४८	०	४४	०	विस्तार
	६७	१२	६३	०	५८	१२	५४	०	४९	१२	दीर्घता
युवराज	८०	०	७४	०	६८	०	६२	०	५६	०	विस्तार
	१०६	१६	९८	१६	९०	१६	८२	१६	७४	१६	दीर्घता
युवराज के अनुज	४०	०	३७	०	३४	०	३१	०	२८	०	विस्तार
	५३	८	४९	८	४५	८	४१	८	३७	८	दीर्घता
सामन्त	४८	०	४२	०	४०	०	३६	०	३२	०	विस्तार
	६७	१२	६२	०	५६	१२	५१	०	४५	१२	दीर्घता
राजमहिषी	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	विस्तार
	३३	१८	३१	१२	२९	६	२७	०	२४	१८	दीर्घता
सेनापति	६४	०	५८	०	५२	०	४६	०	४०	०	विस्तार
	७४	१६	६७	१६	६०	१६	५३	१६	४६	१६	दीर्घता

गत पृष्ठ के चक्र का शेषांश

ज्योतिषी वैद्य, पुरोहित	४०	०	३६	०	३२	०	२८	०	२४	०	विस्तार
	४६	१६	४२	०	३७	८	३२	१६	२८	०	दीर्घता
ब्राह्मण	३२	०	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	विस्तार
	४०	०	३५	०	३०	०	२५	०	२०	०	दीर्घता
क्षत्रिय	३५	१६	३०	८	२६	०	२१	१६	१७	८	विस्तार
	४४	१४	३७	२०	३२	१२	२६	२२	२१	१४	दीर्घता
वैश्य	३७	८	३२	१६	२८	०	२३	८	१८	१६	विस्तार
	४६	१६	४०	२०	३३	०	२९	४	२३	८	दीर्घता
शूद्र	४०	०	३५	०	३०	०	२५	०	२०	०	विस्तार
	५०	०	४३	१८	३७	१२	३१	६	२५	०	दीर्घता
कलाकार, कञ्चुकी, वेश्या	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	२०	०	विस्तार
	२८	८	२६	८	२४	८	२२	८	२०	८	दीर्घता
दूतादि	२०	०	१८	०	१६	०	१४	०	१२	०	विस्तार
	३९	४	३५	१६	३२	४	२८	१६	२५	४	दीर्घता

इति गृहप्रकरणम्

अथ गृहप्रवेशप्रकरणम्

वसिष्ठमते त्रिविधगृहप्रवेशः

अपूर्वसंज्ञं प्रथमप्रवेशं यात्रावसाने च स पूर्वसंज्ञम्।
द्वन्द्वाह्वयश्चाग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥१॥

संस्कृतभावार्थः—वसिष्ठमतेन नूतनगृहप्रवेशः अपूर्वसंज्ञकगृहप्रवेश इत्युच्यते। यात्रान्ते क्रियमाणः गृहप्रवेशः सपूर्वसंज्ञकः गृहप्रवेशः इत्युच्यते। अग्न्यादिप्रकोपादनन्तरं नष्टगृहस्य पुनर्निर्माणे पुनः प्रवेशे द्वन्द्वाह्वगृहप्रवेशः इत्युच्यते।।१।।

वसिष्ठ के मत से त्रिविध गृहप्रवेश—महर्षि वसिष्ठ के मत से नये गृह में प्रवेश करने को 'अपूर्वसंज्ञक' कहते हैं। यात्रा के अन्त में जो गृह प्रवेश होता है, उसको 'सपूर्वप्रवेश' कहते हैं और अग्नि आदि से जलने-टूटने के बाद जो घर बना हो उसमें जो प्रवेश को 'द्वन्द्वाह्व' कहते हैं, इस प्रकार तीन प्रकार का गृहप्रवेश होता है।

गृहप्रवेशे समयनिर्देशः

वधूप्रवेशो न दिवा प्रशस्तः राजप्रवेशो न निशि प्रशस्तः।
दिवा च रात्रौ च गृहप्रवेशः सत्कीर्तिदस्स्यात्त्रिविधः प्रवेशः ॥२॥

संस्कृतभावार्थः—दिने वधूप्रवेशः अशुभः, यात्रान्ते राज्ञकर्तृकः वा रात्रिप्रवेशः अपि अशुभः। सामान्यरूपेण गृहप्रवेशः दिने रात्रौ च शुभो भवति।।२।।

गृहप्रवेश का समय—दिन में वधूप्रवेश शुभ नहीं होता, यात्रा के अन्त में जो राजा द्वारा गृहप्रवेश होता है, वह रात्रि में शुभ नहीं है, सामान्य रूप से जो गृहप्रवेश होता है, वह दिन और रात दोनों समय शुभ होता है।।२।।

मतान्तरे गृहप्रवेशनिर्देशः

आदौ सौम्यायने कार्यं नववास्तुप्रवेशनम्।
राज्ञा यात्रानिवृत्तौ च यद्वा द्वन्द्वप्रवेशनम् ॥३॥
विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजां बलिक्रियाम्।
माघ-फाल्गुन-वैशाख-ज्येष्ठमासेषु शोभनः ॥४॥
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः।
प्रवेशे निर्णयः प्रोक्तः शास्त्रज्ञैः पूर्वसूरिभिः ॥५॥

गृहारम्भोदिते मासे धिष्ण्ये वारे विशेद् गृहम्।
विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारे तु सर्वदा[१] ॥६॥

संस्कृतभावार्थः—नवगृहप्रवेशः उत्तरायणे कार्यः। यात्रान्ते राज्ञः वा गृहप्रवेशः अपि उत्तरायणे शुभः। द्वन्द्वात्मकप्रवेशोऽपि उत्तरायणे शुभः। प्रथमदिने वास्तुपूजायां बलिदानं च कृत्वा माघ-फाल्गुन-वैशाख-ज्येष्ठमासेषु गृहप्रवेशः शुभः भवति। कार्तिकमार्गशीर्षयोः गृहप्रवेशः मध्यमफलं भवति।

गृहारम्भे उक्तः नक्षत्रवारसमयः उत्तरायणे भवति चेत् पाषाणमृत्तिकामयं गृहं प्रवेशाय शुभं भवति। तार्णमपि गृहं शुभवाराद्यालोचनपूर्वकं प्रवेष्टुं शक्यम्।।३-६।।

मतान्तर से गृहप्रवेश का विचार—नवीन घर में प्रवेश उत्तरायण में करना चाहिये। यात्रानिवृत्ति पर राजा का गृहप्रवेश भी उत्तरायण में शुभ होता है, द्वन्द्वात्मक प्रवेश भी उत्तरायण में ही करना चाहिये।

पहले दिन वास्तुपूजा और बलिदान करके माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ में गृह-प्रवेश होता है तथा कार्तिक, मार्गशीर्ष में गृह प्रवेश मध्यम होता है।

गृहारम्भ के लिये कहे गये नक्षत्र तथा वार के समय सूर्य उत्तरायण में हो तो ईंट, पत्थर, मिट्टी के घर में प्रवेश करना शुभ होता है। तृणनिर्मित गृह में कभी भी शुभ दिन-वार में प्रवेश किया जा सकता है।।३-६।।

गृहारम्भे विशेषविचारः

क्रूरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेशे।
शुक्ले च पक्षे सुतरां प्रवृद्ध्यै कृष्णे च तावद्दशमीं च यावत् ॥७॥
चित्रोत्तराधातृशशाङ्कमित्रवस्वन्त्यवारीश्वरभेषु नूनम्।
आयुर्धनारोग्यसुपुत्रपौत्रसुकीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रवेशः ॥८॥

संस्कृतभावार्थः—पापग्रहयुक्ते तद्विद्धे वा नक्षत्रे गृहप्रवेशो वर्ज्यः। शुभफलवृद्ध्यै शुक्लपक्षे प्रवेशः श्रेष्ठे भवति। कृष्णपक्षे दशम्या अनन्तरं प्रवेशो निषिद्धः। चित्रायां तिसृषु उत्तरासु रोहिण्यां मृगशिरसि अनुराधायां धनिष्ठायां रेवत्यां शतभिषजि च प्रवेशे धनायुष्या-रोग्यपुत्रपौत्रकुटुम्बवृद्धिर्भवति।।७-८।।

गृहारम्भ में विशेष विचार—जिस नक्षत्र पर पापग्रह हों और जो नक्षत्र पापग्रहों से विद्ध हों, ये सब उपर्युक्त त्रिविध प्रवेश में त्याज्य होते हैं। निरन्तर वृद्धि के लिये शुक्ल पक्ष में प्रवेश श्रेष्ठ माना गया है। कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि के बाद प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है।

---

१. वसिष्ठमते—
माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशः पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च।
चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः।।

चित्रा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती, शतभिषा नक्षत्रों में त्रिविध प्रवेश करने से धन, आयु, आरोग्य, पुत्र, पौत्र और वंश की वृद्धि होती हैं।

शुभयोगनिर्देशः

पौष्णे धनिष्ठास्वथ वारुणेषु स्वायंभुवर्क्षेषु त्रिषूत्तरासु ।
अक्षीणचन्द्रे शुभवासरे च तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः ॥९॥
शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः ।
व्यर्कारवारतिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च ॥१०॥
वस्वीज्यान्त्येन्दुवरुणत्वाष्ट्रमित्रस्थिरोडुषु ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मंगलप्रदः ॥११॥

संस्कृतभावार्थः—रेवतीधनिष्ठशतभिग्रोहिण्युत्तराषाढोत्तरीाद्रपदोत्तरफाल्गुनीनक्षत्राणि अक्षीण-इन्दुः रिक्ताभित्रतिथिः प्रवेशाय शुभा भवन्ति।

गुरुशुक्रोदये रविकुजवासरयोः रिक्ताभित्रतिथौ धनिष्ठापुष्यरेवतीमृगशिरश्शतभिष-क्चित्रानुराधोत्तराषाढोत्तरभाद्रपदोत्तरफाल्गुनीनक्षत्रेषु दिने रात्रौ वा गृहप्रवेशः शुभाय भवति।

गृहारम्भ के शुभ योग—रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणीं, तीनों उत्तरा ये नक्षत्र हों, चन्द्रमा क्षीण न हो, रिक्ता के अतिरिक्त तिथि हो तो गृहप्रवेश शुभ होता है।

बृहस्पति एव शुक्र उदयी हों रवि, मंगलवार तथा रिक्ता तिथियों को छोड़ कर धनिष्ठा, पुष्य, रेवती, मृगशिरा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा नक्षत्र हों तो ऐसे अवसर पर दिन अथवा रात्रि में प्रवेश शुभ होता है[1]।।९-११।।

लग्नविचारः

मेषे यानं घटे व्याधिर्धान्यहानिर्मृगे गृहम् ।
विशतां कर्कटे नाशः शेषलग्नेषु शोभनम् ॥१२॥
निन्दिता अपि शुभांशसमेतास्तौलिमेषमकराः सकुलीराः ।
कर्तुरौपचयगाश्च विलग्ने राशयः शुभफलाश्च भवन्ति ॥१३॥

संस्कृतभावार्थः—मेषलग्ने गृहप्रवेशे सुखाप्तिः शुभयात्रा, कुम्भे रोगः, मकरे धान्य-हानिः, कर्के नाशः भवति। अन्येषु फलं शुभ भवति। निन्दितलग्नेऽपि शुभनवांशयुक्ते अथवा तुलामेषमकरकर्कराशयः गृहस्वामिनः राशेः उपचयं प्राप्य लग्नगताः भवन्ति चेत् प्रवेशः शुभाय भवति।।१२-१३।।

गृहप्रवेश में लग्नविचार—मेष लग्न में गृहप्रवेश करने से सुखद, शुभ यात्रा, कुम्भ लग्न में रोग, मकर में धान्य हानि, कर्क में नाश—इनके अतिरिक्त शेष लग्न शुभ होते हैं।

निन्दित लग्न भी शुभ नवांशक से युक्त हों अथवा तुला, मेष, मकर, कर्क—ये राशियाँ भी यदि गृहपति की राशि से उपचय होकर लग्न में हों तो प्रवेश शुभ होता है।।१२-१३।।

लल्लमते विचारः

व्याधिहा धनहा चैव वित्तदो बन्धुनाशकृत् ।
पुत्रहा शत्रुहा स्त्रीघ्नःप्राणहा पिटकप्रदः ॥१४॥
सिद्धिदो धनदश्चैव भवेत्तज्जन्मराशिगः ।
लग्नस्थः क्रमशो राशिर्जन्मलग्नात् प्रवेशने ॥१५॥

संस्कृतभावार्थः—जन्मराशिलग्नाभ्यां द्वादशराशिगतप्रवेशलग्नफलम् अशुभं भवति। जन्मराशिलग्नौ एव प्रवेशस्यापि भवतश्चेत् रोगनाशः जन्मराशिलग्नभ्यां प्रवेशस्य राशि-लग्नौ द्वितीयौ चेत् धननाशः, तृतीयौ चेत् धनाप्तिः, चतुर्थौ चेत् बन्धुनाशः, पञ्चमौ चेत् पुत्रहानिः, षष्ठौ चेत् शत्रुनाशः, सप्तमौ चेत् स्त्रीनाशः, अष्टमौ चेत् प्राणहानिः, नवमौ चेत् पिटकप्राप्तिः, दशमौ चेत् कार्यसिद्धिः, एकादशौ चेत् धनलाभः, द्वादशौ चेत् अशुभं फलानि भवन्ति।।१४-१५।।

लल्ल का मत—जन्मराशि, जन्मलग्न से द्वादश राशिगत गृहप्रवेश लग्न का फल निन्दित है—यदि जन्म की राशि लग्न प्रवेश की हो तो रोगनाश, दूसरी हो तो धन-नाश, तीसरी धनद, चौथी बन्धु नाश, पाँचवी पुत्रहानि, छठी शत्रुनाश, सातवीं स्त्री-नाश, आठवीं प्राणनाश, नवीं फोड़ा फुन्सी, दशवीं कार्यसिद्धि, ग्यारहवीं धनलाभ और बारहवीं अशुभ।।१४-१५।।

रामदैवज्ञमते लग्नादिशुद्धिः

त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभैर्लग्नात्त्रिषष्ठायगतैश्च पापकैः ।
शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यर्काररिक्ताचरचैत्रदर्शे ॥१६॥

संस्कृतभावार्थः—लग्नात् त्रिकोणकेन्द्रगे द्वितीये भावे च शुभग्रहा स्थिताश्चेत्, तृतीय-षष्ठ-एकादशभावे पापखेटाः स्थिताश्चेत्, चतुर्थाष्टमभावे शुद्धग्रहाः स्थिताश्चेत् तथाच जन्मलग्नेशः अष्टमभावे नो चेत्, रविभौमवासरः रिक्तातिथयः चरलग्नाः चैत्रमासः तथा च अमावास्यां त्यक्त्वा गृहप्रवेशः शुभं भवति।।१६।।

---

१. **वैद्यनाथमते**—
त्र्युत्तरे रोहिणीयुग्मे रेवत्यां वासवद्वये।
पुष्ये त्वाष्ट्रद्वये मैत्रे प्रवेशोऽभिहितः करे।।
रत्नमालायाम्—
पुष्ये धनिष्ठामृदुवायुमूलस्थिराश्विनीविष्णुजलेशहस्ते।
एषु प्रवेशो बहुपुत्रपौत्रैश्चिरं वसेद् भूरिसमागमैश्च।।

रामदैवज्ञ के मत से लग्नशुद्धि—लग्न से त्रिकोण (५.९) केन्द्र (१.४.७.१०) तथा दूसरे, तीसरे शुभ ग्रहों (३.६.११) में पाप ग्रह हों ४।८ स्थान पर शुद्ध ग्रह हों और जन्मराशि या लग्न से अष्टम लग्न न हों, रवि, मंगलवार रिक्ता तिथि चरलग्न चैत्रमास और अमावास्या तिथि छोड़कर गृहप्रवेश शुभ होता है।।१६।।

वसिष्ठमते विशेषः

कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान्पूज्यानग्रतो पूर्णकुम्भान्।
रम्यं हर्म्यं तोरणं स्रग्वितानैः सम्यक्स्त्रीभिर्गीतवाद्यैर्विशेत्तत् ॥१७॥

संस्कृतभावार्थः—शुक्रं पृष्ठतः सूर्यं वामतश्च कृत्वा ब्राह्मणानभ्यर्च्य पूर्णकुम्भमग्रतः कृत्वा तोरणस्रग्वितानादिभूषणैः गृहमलंकृत्य स्त्रीणां मङ्गलगानपूर्वकं विविधवाद्यशब्दान् शृण्वन् गृहं प्रवेशयेत्।।१७।।

वसिष्ठ का मत—शुक्र को पृष्ठ भाग में और सूर्य को वाम भाग में करके ब्राह्मणों की पूजा कर पूर्ण कलश को आगे रखकर घर को तोरण, वन्दनवार, माला, वितान आदि उपकरणों से सुशोभित कर स्त्रियों के मंगल गानसहित विविध वाद्यों के शब्दों को सुनता हुआ घर में प्रवेश करना उत्तम होता है[१]।।१७।।

रामदैवज्ञमते वामरविविचारः

वामोरविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽर्के पञ्चमे प्राग्वदनादिमन्दिरे।
पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो नन्दादिके याम्यजलोत्तरानने ॥१८॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वमुखगृहप्रवेशे प्रवेशलग्नात् अष्टमस्थानात् पञ्चसु राशिषु स्थितः दक्षिणमुखगृहप्रवेशे पञ्चमस्थानराशितः पञ्चसु राशिषु, पश्चिममुखगृहप्रवेशे द्वितीयस्थानराशितः

१. रामदैवज्ञमते—
अग्रेऽम्बु पूर्णकलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद् वेश्ममध्ये भकूटेऽथ शुद्धे।

श्रीपतिरप्याह—
कृत्वा विप्रान् सजलकलशं चाग्रतो वामतोऽर्के
स्नातः स्रग्वी विमलवसनो मङ्गलैर्वेदघोषैः।
व्यस्तैः यात्राकथितशकुनैर्द्वारमार्गेण राजा
हर्म्यं पुष्पप्रकररुचिरं तोरणाढ्यं विशेच्च।।

तथान्यः—
रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात् पञ्चस्वर्के स्थिते क्रमात्।
पूर्वाशादिमुखं गेहं विशेद्वामो भवेद्यतः।।

ग्रन्थान्तरे—
प्रवेशे कलशेऽर्क्षात्पञ्चनागाष्टकक्रमात्।
अशुभं च शुभं ज्ञेयमशुभं च शुभं तथा।।

पञ्चसु राशिषु, उत्तरमुखगृहप्रवेशे एकादशस्थानराशितः पञ्चसु राशिषु स्थितः सूर्यः वामसंज्ञको भवति।

पूर्णा (५-१०-१५) तिथिषु पूर्वमुखगृहे, नन्दा (१-६-११) तिथिषु पश्चिमाभिमुखगृहे, जया (३-८-१३) तिथिषु उत्तरमुखगृहे प्रवेशो मङ्गलाय भवति।।१८।।

रामदैवज्ञ के मत से वाम रवि का विचार—पूर्वाभिमुख गृह में प्रवेश करने पर प्रवेश लग्न से जो अष्टम स्थान से पाँच राशि तक, दक्षिण मुख गृह के लिये पञ्चम स्थान की राशि से पाँच राशि तक, पश्चिमाभिमुख गृह के लिये द्वितीय स्थान की राशि की राशि से पाँच राशि तक और उत्तराभिमुख गृह के लिये एकादश स्थान की राशि से पाँच राशि तक सूर्य हों तो वाम रवि कहे जाते हैं।

पूर्णा (५।१०।१५।) तिथि में पूर्वमुख गृह में नन्दा तिथि (१।६।११) में दक्षिणमुख गृह में, भद्रा तिथि (२।७।१२) में पश्चिममुख गृह में, और जया तिथि (३।८।१३) में उत्तरमुख गृह में प्रवेश शुभ होता है।।१८।।

गृहप्रवेशे कुम्भचक्रम्

वक्त्रे भूरविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः
प्राच्यामुद्वसनं कृतायमगताः लाभः कृताः पश्चिमे।
श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनला कण्ठे भवेत्सर्वदा ॥१९॥

संस्कृतभावार्थः—गृहप्रवेशे समये कुम्भचक्रानुसारं शुभाशुभ फलं विचारयेत्। सूर्यनक्षत्रात् कलशचक्रमुखे प्रथमनक्षत्रे प्रवेशे अग्निदाहः। इतः पूर्वेषु चतुर्षु भेषु उद्वासः, दक्षिणे चतुर्षु नक्षत्रेषु लाभः, चतुर्षु च पश्चिमेषु लक्ष्मीप्राप्तिः, चतुर्षु उत्तरेषु कलहः, चतुर्षु गर्भस्थेषु गर्भहानिः, त्रिषु गुदे स्थिरता, त्रिषु च कण्ठस्थेषु चिरस्थिरता भवति।।१९।।

गृहप्रवेश में कुम्भचक्र—गृहप्रवेश के समय कुम्भचक्र बनाकर उसके अनुसार शुभाशुभ का निर्णय करके गृहप्रवेश करें। सूर्य के नक्षत्र से कलशचक्र के मुख में १ नक्षत्र रखें, इसमें प्रवेश करने से अग्निदाह, इसके पूर्व में ४ नक्षत्र—उद्वास (गृहपति परदेश में रहे), ४ नक्षत्र दक्षिण में लाभ, ४ नक्षत्र पश्चिम में लक्ष्मी-प्राप्ति, ४ नक्षत्र उत्तर में कलह, ४ नक्षत्र गर्भ (मध्य) में गर्भनाश, ३ नक्षत्र गुद (पेंदी) में स्थिरता और ३ नक्षत्र कण्ठ में सुस्थिरता होती है।।१९।।

गृहारम्भे कुम्भचक्रम्

सूर्यनक्षत्राद्गणना साभिजित्

स्थानानि	न०	फलानि
मुखे	१	अग्निदाहः

पूर्वे	४	उद्वासनम्
दक्षिणे	४	लाभ:
पश्चिमे	४	लक्ष्मीप्राप्ति:
उत्तरे	४	कलह:
गर्भे	४	विनाश:
अध:	३	स्थिरता
कण्ठे	३	स्थिरम्

गृहप्रवेशे निषेध:

अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम ।
गृहं न प्रविशेदेवं विपदामाकरं हि तत् ॥२०॥

संस्कृतभावार्थ:—द्वारछादनरहिते बलिब्राह्मणभोजनादि च अकारयित्वा प्रवेश: न कार्य:। एतेन हि विपत्तय: प्रभवन्ति।।२०।।

गृहप्रवेश में आवश्यक विचार—विना दरवाजा लगा, बिना छतवाला, बिना बलिदान तथा विना ब्राह्मणभोजन कराये गृह में प्रवेश नहीं करना चाहिये, ऐसा घर विपत्तियों का घर होता है।।२०।।

गृहप्रवेशे गृहपतिकर्तव्यम्

एवं सुलग्ने स्वगृहं प्रविश्य वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तम् ।
शिल्पज्ञ-दैवज्ञ-विधिज्ञ-पौरान् राजार्चयेद्भूमिहिरण्यवस्त्रैः ॥२१॥

संस्कृतभावार्थ:—शुभलग्ने वितानपुष्पाद्यलंकृतं वेदध्वनियुक्तं गृहं प्रविश्य तत: गृहस्वामी शिल्पिनं दैवज्ञं पुरोहितं पौरांश्च भूमिस्वर्णवस्त्रेत्यादिदानै: यथाशक्त्युपहारभूतै: सन्तोषयेत्।

गृहप्रवेश के समय के करणीय कर्म—उपर्युक्त विधि के अनुसार शुभ लग्न में चँदोवा (छाता) लगाकर फूल-मालाओं से सुसज्जित, वेदध्वनि से युक्त अपने गृह में प्रवेश करे, तदनन्तर राजा शिल्पज्ञ (मिस्त्री, बढ़ई, चित्रकार आदि), ज्योतिषी, पुरोहित तथा पुरवासियों को भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि उपहारस्वरूप दे[१]।।२१।।

१. **श्रीपतिमते**—

ततो नृपो विप्रसुहृत्पुरोधस: शिल्पज्ञ-भूगोलविदश्च भागिन:।
धनैश्च रत्नै: पशुभि: समर्चयेत् सदान्धदीनान् पुरवासिनस्तथा।।

कश्यपमते—

एवं य: प्रविशेद्राजा योगे दैवज्ञकीर्तिते।
काले शास्त्रोक्तविधिना शरीरसुखमश्नुते।।

जीर्णगृहप्रवेशविचार:

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि
मार्गोर्जयो: श्रावयकेऽपि सत्स्यात् ।
वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु
नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ॥२२॥

संस्कृतभावार्थ:—अग्निप्रभृतिविपदा नष्टस्य गृहस्य निर्माणानन्तरं तत्प्रवेशाय श्रावण-कार्तिकमार्गशीर्षमासा: स्वातीधनिष्ठाशतभिषङ्नक्षत्राणि शुभानि भवति। अत्र ग्रहोदयास्त-विचार: नापेक्षित:।।२२।।

जीर्ण गृहप्रवेश में समय का विचार—अग्नि आदि के कारण नष्ट भ्रष्ट गृह का यदि उसी स्थान पर पुन: निर्माण किया गया हो तो श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष मासों में स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्रों में प्रवेश शुभ है। इसमें ग्रहों के उदय-अस्त का विचार न करें।।२२।

वृत्तशते यात्रानिवृत्त-नृप-गृहप्रवेशविचार:

भूपानां मृदुभिर्ध्रुवैः प्रविशनं यात्रानिवृत्तौ शुभं
स्याद् भूयो गमनं चरर्क्षलघुभै रुद्रैर्मृतिर्भूपतेः ।
तीक्ष्णैर्भूपकुमारकस्य नृपतेः पत्न्या विशाखाह्वये
धिष्ण्ये हव्यभुजो गृहं प्रविशतां संदह्यते वह्निना ॥२३॥

संस्कृतभावार्थ:—यात्रासमाप्तौ राजा मृगशिरसि रेवत्यां चित्रायामनुराधायां उत्तराषाढायाम् उत्तराभाद्रपदायाम् उत्तरफाल्गुन्यां रोहिण्यां वा पुन: गृहं प्रविशेत्। स्वाती-पुनर्वसु-श्रवण-धनिष्ठा-शतभिषग्हस्ताश्विनीपुष्यार्द्रासु गृहप्रवेशे मृत्युर्भवति। मूलज्येष्ठाश्लेषानक्षत्रेषु गृहप्रवेशे राजकुमारस्य मृत्युर्भवति। विशाखानक्षत्रे गृहप्रवेशे राजपत्नी म्रियते। कृत्तिकायां प्रवेशेऽग्निभयं भवति।।२३।।

वृत्तशत के अनुसार यात्रानिवृत्ति पर राजा के गृहप्रवेश का विचार—यात्रा समाप्त होने पर राजा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, नक्षत्रों में पुन: गृहप्रवेश करें तो शुभ होता है। इसके अनन्तर स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, अश्विनी, पुष्य और आर्द्रा नक्षत्रों में प्रवेश करें तो मृत्यु होती है; यदि मूल, ज्येष्ठा, आश्लेषा नक्षत्रों में प्रवेश करें तो राजकुमार की मृत्यु होती है, विशाखा में प्रवेश करने से राजपत्नी की मृत्यु होती है और कृत्तिका में प्रवेश करने से अग्निभय होता है।।२३।।

ज्योति:प्रकाशे—

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके।
वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयो:।।

वास्तुप्रदीपे गृहप्रवेशविचार:

वैशाखमासेऽपि च फाल्गुनेऽपि
ज्येष्ठे प्रवेशः शुभदो गृहस्य।
यात्रानिवृत्तावथवा नवस्य
भूमीभुजां द्विर्भवनस्थिरेषु ॥२४॥

संस्कृतभावार्थः—फाल्गुन-वैशाख-ज्येष्ठमासेषु द्विस्वभावे स्थिरे वा लग्ने यात्रात: गृहागमने प्रवेश: शुभाय भवति।।२४।।

वास्तुप्रदीप के अनुसार गृहप्रवेश का विचार—फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ में द्विस्वभाव अथवा स्थिर लग्नों में यात्रा से लौटने के बाद अथवा नवीन गृह में प्रवेश शुभ होता है।।२४।।

माण्डव्यमते विशेषविचार:

सूत्र-शङ्कु-शिला-द्वार-तुलाच्छादनपूर्वकम् ।
कार्यस्तम्भप्रतिष्ठोक्ते धिष्ण्ये वारे तिथौ तथा ॥२५॥

अन्वय—सूत्रशंकुशिलान्यासद्वारस्थापनस्तम्भप्रतिष्ठादिकार्याणि उक्तेषु नक्षत्रतिथिवार-योगलग्नेष्वेव कर्तव्यानि। शुभमुहूर्ते कृतैरेव कर्मभि: शुभफलं वर्धते।।२५।।

माण्डव्य का मत—सूत्र, शङ्कु, शिलान्यास, द्वारस्थापन, गृहच्छादन, स्तम्भ-प्रतिष्ठा आदि में निर्दिष्ट नक्षत्र, तिथि, वार, योग, लग्नों में ही उक्त कार्य करें।।२५।।

इति गृहप्रवेशप्रकरणम्

•

अथ पशुगृहनिर्माण चरणिविचार:

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।
अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषे चरणिरुच्यते ॥१॥
पशुहानिः पशोरोगः पशुलाभः पशुक्षयः ।
पशुनाशः पशोर्वृद्धिः पशुभेदो बहुः पशुः ॥२॥

अन्वय—गृहस्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारयुक्तं भागमष्टभि: हत्वा यच्छेषं तदनुसारं चरणिफलम् अवगन्तव्यम्। एकशेषे पशुहानि:, द्विशेषे पशुरोग:, त्रिशेषे पशुलाभ:, चतुश्शेषे पशुलाभ:, पञ्चशेषे पशुनाश:, षट्शेषे पशुवृद्धि:, सप्तशेषे पशुभेद:, अष्टशेषे पशुसंख्या वर्धते।।१-२।।

गृहस्वामी के हाथ से पशुशाला के लिये निश्चित भूमि के दीर्घ विस्तार को जोड़कर आठ का भाग दें जो शेष हो तदनुसार चरणि का फल समझें।

यथा—१ शेष में पशुहानि, २ में पशुरोग, ३ में पशुलाभ, ४ में पशुक्षय, ५ में पशुनाथ, ६ में पशुवृद्धि, ७ में पशुभेद और ८ में बहुत पशु होते हैं।।१-२।।

वास्तुराजवल्लभे-अश्वगृहनिमार्णविधि:

तुरङ्गमाणां गृहवामभागे शाला चतुःषष्टिकरा विधेया
शतार्द्धतो मध्यमिका च दैर्घ्ये कनीयसी तैर्दशभिर्विहीना ।
व्यासे च ज्येष्ठा तिथिहस्तमाना त्रयोदशैकादशभिः क्रमेण
तद्बाह्यभित्तिश्च करप्रमाणा पञ्चार्धपञ्चाद्विधकरोदयं स्यात् ॥३॥

संस्कृतभावार्थः—गृहस्य वामभागे अश्वशाला निर्मातव्या। ६४ हस्तदीर्घा, १५ हस्तविस्तारा तथा बहिर्भित्ते: उन्नति: हस्तमिता उत्तमा, ५० हस्तदीर्घा १३ हस्तविस्तारा बहिर्भित्ते: उन्नति:, ५ हस्तमिता भवेच्चेत् मध्यमा, ४० हस्तदीर्घा ११ हस्तविस्तारा बहिर्भित्तेरुन्नति: चतुर्हस्तमिता भवेच्चेत् अशुभा अश्वशाला भवति।।३।।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार अश्वगृहनिर्माण-विधि—घर के वाम भाग में घुड़शाल बनानी चाहिये, ६४ हाथ लम्बी १५ हाथ चौड़ी उत्तम, ५० हाथ लम्बी १३ हाथ चौड़ी मध्यम और ४० हाथ लम्बी ११ हाथ चौड़ी अधम होती है। क्रमश: इनकी दीवालों की बाहरी ऊँचाई ५.५ हाथ, ५ हाथ, ४ हाथ होनी चाहिये।।३।।

अश्वबन्धनस्थानविचार:

तेजोहानिसमीहया विदधते पूर्वापरस्या नृणां
ते याम्योत्तरतो मुखाहि सततं कीर्तिर्यशो धान्यकम् ।
कर्तव्योहिषणं प्रतीहकलशः स्थानं द्विहस्तोदयं
तस्यास्तोरणमुच्छ्रितं च मुनिभिर्हस्तैः सुशोभान्वितम् ॥४॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वदिशि पश्चिमदिशि वा अश्वबन्धने गृहस्वामिनो तेजो हीयते, दक्षिणदिशि उत्तरदिशि वा अश्वबन्धने कीर्ति: धन्यधान्यादिश्च वृद्धिमयन्ते। अश्वस्य खाद्य-सामग्री खादनस्थानोपरि कलश: निर्मातव्य:। अश्वबन्धनस्थानं हस्तद्वयोन्नता निर्मायात्। तच्छोभायै सप्तहस्तोन्नतं तोरणं निर्मापयेत्।।४।।

घोड़े को बाँधने के स्थान का फल—पूर्व अथवा पश्चिममुख घोड़ों को बाँधने से गृहपति के तेज की हानि होती है, दक्षिण अथवा उत्तरमुख बाँधने से कीर्ति-यश-धन-धान्य की वृद्धि होती है। हिषण (घोड़ा के दाना खाने के स्थान) के ऊपर कलश बनाना चाहिये। घोड़ा के बाँधने का स्थान दो हाथ ऊँचा बनवाये और उसमें शोभा के लिये ७ हाथ ऊँचा तोरण (दरवाजे के बाहर का छाया हुआ भाग) बनवाना चाहिये।।४।।

अश्वप्रमाणनिर्देश:

षष्ट्या साधुहयोऽङ्गुलैर्निगदितो वेदाङ्गुलेनाधिकः
श्रीवत्सस्त्वहिलाद एव च मनोहारी द्विसप्ताङ्गुलः ।

रागाद्यङ्गुलकैस्तु वाजिविजयोऽशीत्या तथा वैभवः
शान्ताख्यस्तु युगाष्टमात्र उदये मानं हरेः सप्तधा ॥५॥

संस्कृतभावार्थः—६० अङ्गुलोन्नतो अश्वः साधुसंज्ञकः, ६४ अङ्गुलोन्नतः श्रीवत्ससंज्ञकः, ६८ अङ्गुलोन्नतः अहिलादसंज्ञकः, ७२ अङ्गुलोन्नतः मनोहारिसंज्ञकः, ७६ अङ्गुलोन्नतः विजयसंज्ञकः, ८० अङ्गुलोन्नतः वैभवसंज्ञकः, ८४ अङ्गुलोन्नतः शान्तश्च भवति; इत्थं सप्तभेदाः अश्वानामुक्ताः।।५।।

घोड़े की ऊँचाई का प्रमाण—६० अंगुल ऊँचा घोड़ा 'साधु', ६४ अंगुल ऊँचा 'श्रीवत्स', ६८ अंगुल ऊँचा 'अहिलाद', ७२ अंगुल ऊँचा 'मनोहारि', ७६ अंगुल ऊँचा 'विजय', ८० अंगुल ऊँचा 'वैभव' ८४ अंगुल ऊँचा 'शान्त' संज्ञा होती है। इस प्रकार घोड़ों के सात भेद होते हैं।।५।।

गजगृहनिर्माणप्रकारः

सिंहद्वारं पूर्वमानेन कार्यं त्रिद्व्येका वा मालिकास्तम्भशीर्षे।
स्यातां मध्ये तोडकौ रक्षणार्थं तुल्यौ भागेनाधिकौ वापि सार्द्धौ ॥६॥

संस्कृतभावार्थः—सिंहद्वारोपरि मालिकां निर्माय तन्मध्ये रक्षार्थं द्वौ अर्गलाकाष्ठं स्थापयेत्; अनयोः काष्ठयोः दैर्घ्यविस्तारं समानं अधिकन्यूनं वा भवेत्।।६।।

हाथी के गृह का निर्माण—पूर्वोक्त प्रकार से सिंहद्वार बनाकर उसके स्तम्भों के ऊपर एक मालिका (मंजिल) बनायें और उनके बीच में रक्षा के लिये दो तोड़क (अर्गलाकाष्ठ) लगायें, ये दोनों काष्ठ लम्बाई-चौड़ाई में समान हों अथवा अधिक-कम सवा गुना या ड्योढ़े हों अथवा सभी प्रकार के बनाये जा सकते हैं।।६।।

भागे दक्षिणवामके च करिणां शाला हरेर्द्वारतः
कर्तव्या सुदृढोन्नता च कलशैर्घण्टादिभिर्भूषिता।
सङ्कीर्णो रसतो नगैर्निगदितो मन्दो मृगश्चाष्टभिः
सर्वेषूत्तमभद्रजातिरुदितो नन्दैः करैरुच्छ्रितः ॥७॥

संस्कृतभावार्थः—सिंहद्वारात् दक्षिणतः वामतो वा गजशाला निर्मातव्या। इयं सुदृढ़ा, उन्नता, घण्टाकलशाद्रिभूषिता भवेत्। षड्हस्तोन्नतः हस्ती सङ्कीर्णः सप्तहस्तोन्नतो मन्दः, अष्टहस्तोन्नतो मृगः, नवहस्तोन्नतो भद्रः श्रेष्ठतमः भवति।।७।।

हाथी के गृह का निर्माण व हाथी की ऊँचाई का प्रमाण—सिंहद्वार के दाहिनी और बाईं ओर गजशाला बनानी चाहिये। यह सुदृढ ऊँची, घंटा, कलश आदि से सुसज्जित हो। गजविचार—६ हाथ ऊँचा हाथी 'सङ्कीर्ण', ७ हाथ ऊँचा 'मन्द', ८ हाथ ऊँचा 'मृग' और ९ हाथ ऊँचा 'भद्र' जाति का सर्वोत्तम होता है।।७।।

आलेख्यकर्मणि निषिद्धाः पशुपक्षिणः

वाराह-शार्दूल-शिवा-पृदाकवो
गृद्ध्राभिधोलूक-कपोत-वायसाः।
स श्येन-गोधादि-वकादि-पत्रिणो
विचित्रिता नो शरणे शुभावहाः ॥८॥

संस्कृतभावार्थः—वराहव्याघ्रशृगालसर्पगृध्रोलूककपोतकाकश्येनगोधानकादिशुपक्षिणां चित्रैः गृहालंकरणमशुभाय भवति।।८।।

पशु-पक्षियों के निषिद्ध आलेख—सूअर, बाघ, सियार, साँप, गीध, उल्लू, कबूतर, कौआ, बाज, गोह, बगुला आदि अशुभ पशु-पक्षियों के चित्र सजावट की दृष्टि से घर पर लिखना अशुभ होता है।

वास्तुराजवल्लभे ग्राह्यवृक्षाः

वृक्षा दुग्ध-सकण्टकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद् दूरतः
शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी।
यामादूर्ध्वमशेषवृक्षजनिता छाया न शस्ता गृहे
पार्श्वे कस्य हरे रवीशपुरतो जैनानु चण्ड्याः क्वचित् ॥९॥

संस्कृतभावार्थः—सदुग्धकण्टका वृक्षा सफला अपि गृहसमीपं न स्थापनीया। चम्पकपाटलकदलीजातीकेतक्यादयः शुभाः। प्रहरानन्तरं कस्यचित् वृक्षस्य छाया गृहोपरि पतति चेत् तत् शुभाय न भवति। ब्रह्ममन्दिरात् पृष्ठतः विष्णुसूर्यशिवमन्दिरस्य अग्रे जैनालयस्य पृष्ठे देवीमन्दिरं परितश्च गृहं न निर्मातव्यम्।।९।।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार ग्राह्य वृक्ष—दूध वाले वृक्ष (काटने पर जिनमें से दूध निकलता हो), काँटे वाले वृक्ष घर के समीप अच्छे नहीं होते; भले ही वे फल वाले ही क्यों न हों, उनका रोपण न करे। चम्पा, गुलाब, केला, जाती, केवड़ा ये शुभ होते हैं। एक पहर दिन के बाद घर के ऊपर यदि किसी वृक्ष की छाया पड़ती हो तो वह शुभ नहीं होती।

ब्रह्मा के मन्दिर के पार्श्व में; विष्णु, सूर्य, शिव के मन्दिर के सामने; जैन मन्दिर के पीछे और देवी के मन्दिर के किसी भाग में गृहनिर्माण नहीं करना चाहिए। वह गृहपति के लिये अशुभ होता है ।।९।।

सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं कुर्वन्ति ते कण्टकिनोऽरिभीतिम्।
प्रजाविनाशं फलिनः समीपे गृहस्य वर्ज्याः कलधौतपुष्पाः ॥१०॥

संस्कृतभावार्थः—वृक्षाः सदुग्धाः धनहानिकराः, सकण्टकाः, शत्रुभयदः, सफलाः सन्ताननाशका भवन्ति। सुवर्णाभपुष्पशालिनोऽपि वृक्षाः गृहस्य समीपे अशुभा भवन्ति।।१०।।

दुग्ध वाले वृक्ष धननाश, काँटे वाले शत्रुभय, फल वाले सन्ततिनाशकारक होते हैं। सुवर्ण वर्ण वाले फूल भी घर के समीप शुभ नहीं होते हैं ।।१०।।

प्रकारान्तेरण विचारः

दुष्टो भूतनिषेवितोऽपि विटपी नोच्छिद्यते शक्तितः
तद्वद्बिल्वशमी त्वशोकवकुलौ पुन्नागसच्चम्पकौ ।
द्राक्षा पुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णां वपेद्दाडिमीं
सौम्यादेः शुभदौ कपित्थकवटावौदुम्बराश्वत्थकौ ।।११।।

संस्कृतभावार्थः—निषिद्धवृक्षः भूतावासः भवति चेत् स न छेतव्यः। बिल्वशमी-केसराशोकपुन्नागचम्पकवृक्षा अपि न छेतव्याः। द्राक्षालताकुञ्जं चन्दनद्रुमं पिप्पलीं दाडिमीं च गृहस्य निकटे रोपयेत्। गृहेणोत्तरतः कपित्थः पूर्वस्मिन् वटः दक्षिणतः पाटलः पश्चिमतः अश्वत्थश्च शुभाय भवति।।११।।

प्रकारान्तर से वृक्षों का विचार—ऊपर जिन वृक्षों का घर के समीप लगाने का निषेध किया है और जिस पर भूत का निवास हो, उसको भी काटना नहीं चाहिये। बेल, शमी, अशोक, मौलसिरी, पुन्नाग और चम्पक वृक्ष को भी न काटें। द्राक्षा (मुनक्का-अंगूर) की बेल का मण्डप, चन्दन वृक्ष, पिप्पली की बेल, अनार का वृक्ष लगाना शुभ होता है। गृह के उत्तर में कैथ, पूर्व में बरगद, दक्षिण में गुलाब और पश्चिम में पीपल शुभ होता है ।।११।।

बृहत्संहितायां वृक्षविचारः

याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते ।
उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ।।१२।।

संस्कृतभावार्थः—दक्षिणे प्लक्षः, पश्चिमे वटः, उत्तरे उदुम्बरः, पूर्वस्मिन् अश्वत्थश्चाशुभः। उत्तरे प्लक्षः, पूर्वस्मिन् वटः, दक्षिणे उदुम्बरः, पश्चिमे अश्वत्थश्च शुभः।।१२।।

बृहत्संहिता के अनुसार वृक्षों का विचार—पाकड़ का वृक्ष दक्षिण में, वट वृक्ष पश्चिम में, गूलर उत्तर में और पीपल पूर्व दिशा में अशुभ होता है। पाकड़ उत्तर में, वट पूर्व में, गूलर दक्षिण में और पीपल पश्चिम दिशा में शुभ होता है। अर्थात् पहले जिस दिशा में जो वृक्ष अशुभ कहे गये हैं, वे ठीक उसके विपरीत दिशा में शुभ होते हैं ।।१२।।

आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय ।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारुण्यपि वर्जयेदेषाम् ।।१३।।
छिन्द्याद्यदि न तरूँस्तान् तदन्तरे पूजितान् वपेदन्यान् ।
पुन्नागाशोकारिष्टवकुलपनसान् शमीशालौ ।।१४।।

संस्कृतभावार्थः—कण्टकिभिः वृक्षैरासन्नैः शत्रुभयं भवति। क्षीरिभिः धननाशः फलिभिः सन्ताननाशः भवति। एतेषां काष्ठानां प्रयोगो भवति चेदपि गृहे अशुभं भवति। कण्टकिषु वृक्षेषु पुन्नागः अशोकः निम्बः, केसरः पनसः शमी शालः च अशुभा न भवन्ति।

बबूल, खैर आदि काँटे के वृक्ष घर के पास रहने से शत्रुभय होता है। दूध वाला वृक्ष घर के समीप होने से धननाश होता है। फलवृक्ष समीप होने से सन्ताननाश होता है। इतना ही नहीं यदि इनकी लकड़ी का भी घर में प्रयोग किया जाता है तो वह भी अशुभ होता है। यदि काँटेवाले वृक्षों के बीच में पुन्नाग, अशोक, नीम, मौलसिरी, कटहर, रूमी, काल—ये वृक्ष लगा दिये जायँ तो उपर्युक्त दोष नहीं होता[1]।।१३-१४।।

वाटिकादिरोपणमाहात्म्यम्

वाटिका वा तडागो वा कूपो वा यदि निर्मितः ।
गृहात्पूर्वे कुबेर्यां च वारुणे शम्भुकोणके ।।१५।।
सदा सवित्री भविता सदा दानं प्रयच्छति ।
सदा यज्ञं स पूज्येत यो रोपयति पादपम् ।।१६।।

संस्कृतभावार्थः—गृहात् पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु ईशानकोणे वा वाटिका तटाकः अथवा कूपः निर्मीयते चेत् गायत्रीपुरश्चरणस्य फलं लभ्यते। वृक्षारोपणादपि अधिकं फलं लतारोपणेन भवति।।१५-१६।।

वाटिकारोपण का माहात्म्य—जो घर के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-पश्चिम अथवा ईशान कोण में वाटिका, तालाब अथवा कुँआ बनवाता है, वह सदा गायत्री-पुरश्चरण करने से समान फल पाता है, सदैव दान देता है तथा हमेशा यज्ञ करता है, ऐसा समझे। वृक्षा-रोपण से भी लताओं को लगाने का फल अधिक होता है।।१५-१६।।

वास्तुप्रदीपे विशेषविचारः

क्षीरवृक्षा वटाश्वत्थरक्तपुष्पद्रुमास्तथा ।
सकण्टका शाल्मली च प्लक्षोदुम्बरसंज्ञकौ ।।१७।।

---

१. **गर्गमते**—

वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा।
न्यग्रोधं पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम्।।
अश्वत्थे तु भयं ब्रूयात् प्लक्षे ब्रूयात्पराभवम्।
न्यग्रोधे राजतः पीडा नेत्रामयमुदुम्बरे।।
वटः पुरस्ताद्धन्यः स्याद्दक्षिणे चाप्युदुम्बरम्।
अश्वत्थः पश्चिमे भागे प्लक्षस्तूत्तरतो भवेत्।।

यथा—वरं भूमिरुहा पञ्च न तु कोष्ठरुहा दश।
पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः कुर्वन्ति पितृतर्पणम्।।

अग्निकोणे सदा दुष्टा मृत्युपीडाप्रदायकाः ।
पुन्नागफलिनी निम्बदाडिमाशोकजातिकाः ॥१८॥
नागकेशर-संपुष्पं जपाकुसुमकेसरे ।
जयन्ती चन्दनं प्रोक्तं वचा चैवापराजिता ॥१९॥
मधुविल्वाम्रभृङ्गाश्च नागरं ककुपादिकाः ।
यत्र तत्र स्थिताश्चैते नारिकेलादयः शुभाः ॥२०॥

संस्कृतभावार्थः—क्षीरिणो वृक्षाः वटाश्वत्थरक्तपुष्पाः, कण्टकिनः, शाल्मली, प्लक्षः, उदुम्बरः, अग्निकोणे अशुभा भवन्ति, पीडां मृत्युं च प्रयोजयन्ति। पुन्नागः, फलिनो वृक्षाः, निम्बः, दाडिमः, अशोकः, जाती, नागकेसरः, जया, केसरः, जयन्ती, चन्दनः, वचा, अपराजिता, मधूकः, बिल्वः, आम्रः, भृङ्गः, नागरः, नारिकेलः सर्वदिक्षु शुभाः भवन्ति।

वास्तुप्रदीप के अनुसार वृक्षों की दिशा का फल—दूध वाले वृक्ष—बरगद, पीपल, लाल फूल वाला वृक्ष, काँटे वाले वृक्ष—सेमल, पाकड़, गूलर ये वृक्ष अग्निकोण में सदैव दुष्ट होते हैं। ये पीड़ा तथा मृत्युकारक भी होते हैं। पुन्नाग, फल वाला वृक्ष, नीम, अनार, अशोक, जाती, नागकेशर, अड़हुल, केसर, जयन्ती, चन्दन, वचा, अपराजिता, महुआ, बेल, आम, दालचीनी, नागर, नारियल—ये वृक्ष किसी दिशा में भी शुभ होते हैं ।।१७-२०।।

वृक्षारोपणात् स्वर्गप्राप्तिप्रकारः

अश्वत्थं च कदम्बं च कदली बीजपूरकम् ।
गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति ॥२१॥
सर्वत्र पनसः शस्तो दक्षिणे सकलाः खलाः ।
वृक्षा नारोपयेदेवं स सदा सुखभाग्भवेत् ॥२२॥
अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिञ्चिणीकम् ।
कपित्थविल्वामलकत्रयञ्च पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् ॥२३॥

संस्कृतभावार्थः—एकं पिप्पलं, निम्बं, वटं, दश पिचुमन्दान्, कपित्थं, विल्वं, आमलकी तिस्रः, पञ्च आम्रान् च रोपयन् बहुपुण्यभाक् नरकं न पश्यति।।२१-२३।।

वृक्षारोपण से स्वर्ग अथवा स्वर्ग की तरह सुखों की प्राप्ति—एक वृक्ष पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस इमली, कैथ, बेल, आँवला तीन और पाँच आम के वृक्ष रोपने वाला व्यक्ति पुण्यात्मा होता है, अतएव उसको नरक के दर्शन नहीं होते।

दिग्विभागेन वृक्षारोपणप्रकारः

ईशाने रोपयेद्धात्रीं नैर्ऋत्ये चिञ्चिणीद्रुमान् ।
आग्नेय्यां दाडिमं चैव वायव्ये विल्ववृक्षकम् ॥२४॥

प्लक्षोत्तरे पूर्ववटं प्रशस्तं ह्यदुम्बरं दक्षिणभागके च ।
अश्वत्थवृक्षं दिशि वारुणस्यां मध्ये तथाम्राविविधप्रकारान् ॥२५॥

संस्कृतभावार्थः—ऐशाने कोणे आमलकी, नैर्ऋत्ये चिञ्चा, आग्नेये दाडिमः, वायव्ये च बिल्वः रोपणीयः। उत्तरे प्लक्षः, पूर्वस्मिन् वटः, दक्षिणे उदुम्बरः, पश्चिमे च विभिन्नाः वृक्षाः रोपणीयाः।।२४-२५।।

दिशा के अनुसार वृक्षारोपण का फल—ईशान कोण में आँवला, नैर्ऋत्य कोण में इमली, अग्निकोण में अनार, वायव्यकोण में बेल के वृक्ष लगाने चाहिये। उत्तर में पाकड़, पूर्व में बरगद, दक्षिण में गूलर; पश्चिम में पीपल और बीच में अनेक जाति के आम के वृक्षों को लगाना चाहिये[१]।।२४-२५।।

मतान्तरेण गृहाऽऽरामनिर्माणप्रकारः

याम्यनैर्ऋत्ययोर्मध्ये तथा जम्बुकदम्बकौ ।
पनसश्च तथाप्रक्ष प्रशस्तौ शम्भुपूर्वयोः ॥२६॥
वाटिकायाः बहिः पूर्वे रोपयेद्वंशवृक्षकम् ।
उत्तरे च शमी बाह्ये पश्चिमे खदिरो बहिः ॥२७॥
दक्षिणे वकुलो बाह्येऽरिष्टनाशाय केवलम् ।
आम्राणां वाटिका चैव द्वितीयाश्वत्थवाटिका ॥२८॥
तृतीया वटवृक्षाणां चतुर्थी प्लक्षवाटिका ।
पञ्चमी निम्बवृक्षाणां षष्ठी जम्बुकवाटिका ॥२९॥
चिञ्चिणीवृक्षसंभूता सप्तमी परिकीर्तिता ।
एतासां वाटिकानाञ्च प्रशस्ता चाम्रवाटिका ॥३०॥
फलदा पुण्यदा चैव पापं संहरते ध्रुवम् ।
यत्करोति घनच्छायः पादपः पथि रोपितः ॥३१॥
न तत्करोत्यग्निहोत्रं न पुत्रा योषितोद्भवाः ।
अतः सर्वगुणोपेतान् वृक्षानारोपयेत् सुधीः ॥३२॥

संस्कृतभावार्थः—दक्षिणनैर्ऋत्ययोर्मध्ये जम्बूकदम्बौ, ईशानपूर्वयोर्मध्ये पनसः, उद्यानात् पूर्वदिशि वेतसः, उत्तरे शमी, पश्चिमे खदिरः, दक्षिण केसरः च रोपणार्हाः शुभाश्च भवन्ति। प्रथमम् उद्यानम् आम्राणां, द्वितीयम् अश्वत्थानां, तृतीयं वटानां, चतुर्थं प्लक्षाणां, पञ्चमं निम्बानां, षष्ठं जम्बूनां, सप्तमं चिञ्चानां भवेत्। सर्वेष्वेषु आम्रवनं श्रेष्ठम्। अग्नि-

---

१. मतान्तरे—
प्लक्षोत्तरे प्रशस्तश्च वटः पूर्वे च शोभनः।
उदुम्बरस्तथा याम्ये पिप्पलो वारुणे तथा।।

होत्रमकुर्वता अपुत्रेण च आम्रवनं निर्मातव्यं येन सः पुत्रिणां स्वर्गमाप्नुयात्। अतः उत्तमान् वृक्षान् रोपयित्वा सर्वजनीनं कार्यं करणीयम्।।२६-३२।।

मतान्तर से बगीचे का निर्माण व उसका फल—दक्षिण-नैर्ऋत्यकोण के बीच में जामुन, कदम्ब के वृक्ष ईशानकोण पूर्व के बीच में पनस (कटहर) आम के वृक्ष लगायें, बगीचे के बाहर पूर्व दिशा में बाँस, उत्तर में शमी, पश्चिम में खैर, दक्षिण में मौलसिरी का रोपण शुभ होता हैं।

पहला बगीचा आम का, दूसरा पीपल का, तीसरा बरगद का, चौथा पाकड़ का, पाँचवाँ नीम का, छठा जामुन का, सातवाँ इमली का होता है। इनमें आम का बगीचा सर्वश्रेष्ठ होता है; जो व्यक्ति अग्निहोत्र नहीं करता, जिसके कोई अपने पुत्र नहीं है, उसको आम का बगीचा लगाना चाहिये; क्योंकि बगीचे को लगाने वाला उसी प्रकार स्वर्ग को प्राप्त होता है, जिस प्रकार पुत्र द्वारा किये गये श्राद्धादि कर्मों से; अतः उत्तम वृक्षों को लगाकर परोपकार करना चाहिये ।।२६-३२।।

वराहमिहिरमते वृक्षारोपणकूपनिर्माणयोः फलम्

यो वाटिकां राजपथः समीपे स्विष्टां तथा कूपसमन्विताञ्च।
स्वर्गे च वासं लभते मनुष्यश्चतुर्युगं सर्वसुखैरुपेतः ।।३३।।

संस्कृतभावार्थः—यः राजमार्गं अन्यं मार्गं वा अभितः सुन्दरान् मनोहारिणो वृक्षान् रोपयति कूपांश्च निर्माति सः चतुर्षु युगेषु सुखं भुञ्जानः अन्तकाले स्वर्गं गच्छति।।३३।।

वराहमिहिर के अनुसार वृक्षारोपण व कूपनिर्माण का फल—जो मनुष्य राजमार्ग (सड़क) के दोनों ओर सुन्दर वृक्षारोपण करते हैं तथा कुआँ खुदवाते हैं, वे चार युगों तक सर्वसुखसम्पन्न स्वर्ग में निवास करते हैं ।।३३।।

वास्तुराजवल्लभे राजवाटिकाप्रकारः

वामे भागे दक्षिणे वा नृपाणां
त्रेधा कार्या वाटिका क्रीडनार्थम्।
एकद्वित्रिदण्डसंख्याशतं स्यात्
मध्ये धारामण्डपं तोययन्त्रैः ।।३४।।

संस्कृतभावार्थः—राजप्रासादात् दक्षिणदिशि वामतो वा तद्रञ्जनाय शतहस्तमितं तद्द्विगुणितं तत्त्रिगुणितं वा तटाकं निर्मायात्। अस्य मध्ये च प्रपामण्डलः तोययन्त्राणि च स्थापनीयानि।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार राजमहल की वाटिका का निर्माण—राजा-महाराजाओं के प्रासाद के दाहिनी या बाँयीं ओर उनके मनोविनोद के लिये १००, २०० अथवा ३०० हाथ की बावड़ी बनानी चाहिये, इसके बीच में जल प्रपातमण्डप और फुहारा लगाना चाहिये।।३४।।

राजोचितजलयन्त्रनिर्माणप्रकारः

क्षेत्रं सप्तविभागभाजितमतो भद्रं च भागत्रयं
तन्मध्ये जलवापिका जिनपदैरेकांशतो वेदिका।
स्तम्भैर्द्वादशभिश्च मध्यरचितः कोणेषु रूपान्वितः
कर्तव्यो जलयन्त्र एष विधिवद्भोगाय पृथ्वीभुजाम् ।।३५।।

संस्कृतभावार्थः—जलयन्त्रं कर्तुं क्षेत्रं प्रथमतः सप्तभिः सप्तधा विभज्य मध्ये भागत्रये परितः भद्रं निर्मायात्। मध्ये च चतुर्विंशतिभागेषु जलवापिका कारयितव्या। कोणेषु उत्कीर्णरूपैः अलङ्कारः कार्यः। एतादृशं जलयन्त्रं राज्ञां विनोदाय भवति।।३५।।

राजाओं के लिये उचित जलयन्त्र का निर्माण—जलयन्त्र (फुहारा) बनाने के स्थान को ७×७=४९ भागों में बाँटे, इसके बीच में चारों ओर तीन भाग में भद्र (चबूतरा), बीच के २४ भाग में जल वापिका (पानी की टंकी) बनाये, कोणों में नक्कासी करायें। इस प्रकार के फुहारे राजाओं के विलास के योग्य होते हैं।।३५।।

तस्यां चम्पककुन्दजातिसुमनोवल्ली च निर्मालिका।
जातीहेमसमानकेतकिरपि श्वेता तथा पाटला ।।३६।।
नारङ्गः करणी वसन्तलतिका चारक्तपुष्पादिकम्।
जम्बीरो बदरी च पूगमधूपा जम्बू च चूतद्रुमाः ।।३७।।
मालूरः कदली च चन्दनवटावश्वत्थपथ्याशिवाः।
चिञ्चाशोककदम्बनिम्बतरवः खर्जूरिका दाडिमा ।।३८।।
कर्पूरागुरुकिंशुका हयरिपुः पुन्नागको निम्बुकी।
प्रोक्ता नागलता च बीजनिभृता स्यात्तिन्दुकी लाङ्गली ।।३९।।

संस्कृतभावार्थः—एतस्य जलयन्त्रस्य वमीपे विद्यमाने उद्याने चम्पा, कुन्दः, जातिः, सुमनोवल्ली, निर्मालिका, केतकी, श्वेतपाटला, नारिकेलः, करणी, वसन्तलतिका, रक्तपुष्पम्, जम्बीरः, बदरी, पूगः, मधूकः, आम्रः, वेला, कदली, चन्दनः, वटः, पिप्पलः, हरीतकी, आमलकी, चिञ्चा, अशोकः, कदम्बः, निम्बः, खर्जूरः, दाडिमः कर्पूरः, अगुरुः, किंशुकः, हयरिपुः, पुन्नागकः, निम्बुकी, नागलता, तिन्दुकी, लाङ्गली वृक्षाः रोपणीयाः।।३६-३९।।

इस फुहारा के समीप लगाये गये बगीचे में, चम्पा, कुन्द, चमेली, बेला, नरमाली, जाती (पीले फूल के केतकी), सफेद गुलाब, नारियल, कनेर, वसंतलता, लालपुष्प, जम्बीरी नीबू, बेर, सुपारी, महुआ, आम, बेल, केला, चन्दन, बरगद, पीपल, हरीतकी, आंवला, इमली, अशोक, कदम्ब, नीम, खजूर, अनार, कपूर, अगर, किंशुक, सफेद कनेर, जायफल, नीबू, नागबेल, बिजौरा नीबू, तिन्दुकी, कलिहारी—इन वृक्षों को लगायें[1]।।३६-३९।।

१. **लतादिरोपणमन्त्रः**—'ॐ वसुधेति च सीतेति पुण्यदेति धरेति च। नमस्ते शुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्द्धतामिति' इस मन्त्र से वृक्षारोपण करें।

मण्डपादिनिर्माणप्रकारः

द्राक्षैलाशतपत्रिका च वकुला धत्तूरकङ्कोलकौ
सालास्तालतमालकौ मुनिवरौ मन्दारपारिद्रुमौ।
अन्ये भोग्यविचित्रखाद्यसकलास्तै रोपणीया बुधैः
यं प्राप्नोति च भूतले शुभतरुं तच्चम्पकान् वापयेत् ॥४०॥
वृक्षाणां प्रतिसेचनाय च घटीयन्त्रः सुसारो भवेत्
दोला स्त्रीजनखेलनाय रुचिरे वर्षावसन्तोत्सवे।
बाला-प्रौढवधू-सुमध्यवनितागानैर्मनोहारिभिः
ग्रीष्मे शारदकेऽथ शीतलजलक्रीडा शुभे मण्डपे ॥४१॥

संस्कृतभावार्थः—द्राक्षा-एला-शतपत्रा-बकुल-धत्तूर-कङ्कोल-शाल-ताल-तमाल-अगस्त्य-मन्दार-चम्पक-पारिजातादिवृक्षाः सुखदाः सर्वे भोग्याः रोपणीयाः। सारवृक्षैयोभिः वृक्षसेचनयन्त्रं कर्तव्यम्। वसन्तवर्षासु स्त्रीविलासाय क्रीडान्दालिका निर्मातव्याः। ग्रीष्मे शरदि च बाल-ध्रुव-प्रौढस्त्रीणां सर्वासां कृते जलविहाराय मण्डपः कर्तव्यः।।४०-४१।।

वाटिका में मण्डप आदि का निर्माण—दाख, इलायची, शतावरी, मौलसिरी, धतूरा, कंकोल, शाल, ताल, तमाल, अगस्तिया, मदार, पारिजात और भी जो भूतल में सुखभोग के योग्य वृक्ष-लतायें हों उनको लगाना चाहिये, चम्पक वृक्षों को भी लगायें। सारवृक्षों की लकड़ी से वृक्ष सिंचन यन्त्र (हजारा) बनायें, वसन्त और वर्षा ऋतु में स्त्रियों के खेलने के लिये झूला बनायें। ग्रीष्म और शरद ऋतु में बाला, युवती तथा प्रौढा स्त्रियों के जल-विहार के लिये मण्डप बनाने चाहिये।।४०-४१।।

वृक्षारोपणमुहूर्तः

लतागुल्मवृक्षरोपो हस्तपुष्याश्विनीध्रुवैः।
विशाखा-मृग-मूलाह्व-वारुणैश्च प्रशस्यते ॥४२॥
गुरौ केन्द्रे शुभे शुक्रे विधौ वारिणि वोदये।
शुभयुक्तेक्षिते वन्यौ सद्वारे वा शुभोदये ॥४३॥

संस्कृतभावार्थः—हस्तपुष्याश्विन्युत्तरफाल्गुन्युत्तराषाढोत्तरभाद्रपदारोहिणीविशाखामृगशिरोमूलशतभिषङ्नक्षत्रेषु शुक्रे गुरौ च केन्द्रगे शुभस्थानस्थे चन्द्रमसि जलचरराशिस्थे लग्नस्थे वा, चतुर्थस्थानके शुीग्रहाणां दृष्टौ योगे वा शुभे वासरे शुभलग्ने लतागुल्मवृक्षादीन् मन्त्रोच्चारपूर्वकं रोपयेत्।।४२-४३।।

वृक्षारोपण का मुहूर्त—हस्त, पुष्य, अश्विनी, तीनों उत्तरा, रोहिणी, विशाखा, मृगशिरा, मूल, शतभिषा नक्षत्रों में, गुरु केन्द्र में, शुक्र उत्तम स्थान में, चन्द्रमा जलचर राशि में अथवा जलचर लग्न में, चतुर्थ स्थान में शुभ ग्रहों का योग तथा दृष्टि, शुभ वार और शुभ लग्न में लता, गुल्म, वृक्ष आदि लगाना शुभ होता है।।४२-४३।।

बृहस्पतिमते

सोमवारयुते मूले चापलग्ने मतान् द्रुमान्।
स्थापयेज्जीवलग्ने च रेवत्यां गुरुवासरे ॥४४॥

संस्कृतभावार्थः—सोमवासरे मूलनक्षत्रे धनुर्लग्ने च वृक्षारोपणं कर्तव्यम्। गुरुवारे रेवत्यां धनुषि मीने वा लग्ने वृक्षारोपणं शुभाय भवति।।४४।।

बृहस्पति के मत से वृक्षारोपण का समय—सोमवार के दिन मूल नक्षत्र हो तो धनु लग्न में वृक्षारोपण शुभ होता है। दूसरा योग—गुरुवार के दिन रेवती नक्षत्र हो और बृहस्पति लग्न में हो तो बड़े वृक्षों को लगायें।।४४।।

शक्तियामलोक्तवृक्षचक्रम्

सूर्यभाद्दिनभं यावद् वृक्षचक्रं विधीयते।
त्रयं मूले भवेद्रोगस्त्वचि त्रीणि धनागमः ॥४५॥
वेदश्शाखासु नाशः स्यात् पत्रे युग्मं दरिद्रता।
शीर्षे त्रीणि शभुं प्रोक्तं पूर्व एकन्तु मृत्युदम् ॥४६॥
सुतनाशं पञ्च याम्ये पश्चिमे द्वे धनप्रदे।
स्याद् वेद उत्तरे लाभ इत्युक्तं शक्तियामले ॥४७॥

संस्कृतभावार्थः—वृक्षचक्रे सूर्यनक्षत्रात् दिननक्षत्रपर्यन्तं गणना कार्या। शक्तियामलानुसारं अस्य चक्रोक्तमेव फलं वक्तव्यम्।।४५-४७।।

शक्तियामल के अनुसार वृक्षचक्र—वृक्षचक्र में सूर्य के नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनें। शक्तियामल के अनुसार इसका फल निम्नलिखित चक्र में देखें—

वृक्षचक्रम्

नक्षत्र	३	३	४	२	३	१	५	२	४
स्थान	मूल	त्वचा	शाखा	पत्र	शीर्ष	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
फल	रोग	धनलाभ	नाश	दरिद्रता	शुभ	मृत्यु	पुत्रनाश	धनद	लाभ

प्रकारान्तरेण विचारः

तिथिवारसमायुक्तं सूर्यभादिन्दुभं युतम्।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषाङ्के रोपणं फलम् ॥४८॥
एके शरे त्रिफलितं निष्फलं वेदपक्षयोः।
वसौ षष्ठे भवेल्लाभो सप्तमे नवमे मृतिः ॥४९॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यनक्षत्रात् चन्द्रनक्षत्रपन्तं गणनां कृत्वा तिथिवारसंख्यां योजयित्वा

नवभिर्भाजने शिष्टाङ्कानुसारं वृक्षारोपणफलं वक्तव्यम्। १-३-५ शेषे वृक्षः समृद्धः भवति। २-४ शेषे वृक्षारोपणं निष्फलं भवति। ६-८ शेषे लाभः, ७-९ शेषे मृत्युर्भवति।

प्रकारान्तर से वृक्षोरोण का फल—सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनकर उसमें तिथि और वार की संख्या को जोड़कर ९ का भाग दें, शेष अंक के अनुसार वृक्षारोपण का फल इस प्रकार होता है। यथा—१-३-५ शेष में वृक्ष फलता है; २-४ में निष्फल, ६-८ में लाभ और ७-९ में मृत्युदायक होता है।

इति वृक्षादिरोपणप्रकरणम्

•

अथ दकार्गलम्

विष्णुधर्मोत्तरपुराणे जलाशयमाहात्म्यवर्णनम्

उदकेन विना वृत्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा।
तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥१॥
अग्निष्टोमसमः कूपः सोऽश्वमेधसमो मरौ।
कूपः प्रवृत्तपानीयः सर्वं हरति दुष्कृतम् ॥२॥
कूपकृत्स्वर्गमासाद्य सर्वान् भोगान् समश्नुते।
तत्रापि भोगनैपुण्यं स्थानाभ्यासात् प्रकीर्तितम् ॥३॥

संस्कृतभावार्थः—विष्णुधर्मोत्तरपुराणानुसारं जलाशयप्रशंसायां लिखितं यत् भुवि स्वर्गे च जलं विना जीवनमसम्भवमिति धर्मात्मना विदुषा पुरुषेण अनेकत्र जलाशयाः निर्मातव्याः। कूपनिर्माणफलम् अग्निष्टोमयज्ञफलतुल्यं भवति। मरुस्थले कूपखनने तत्फलं अश्वमेधीयफलतुल्यं भवति। पर्याप्तजलसमृद्धकूपनिर्माणे सर्वपापनाशो भवति। कूपनिर्माता स्वर्गं गत्वा सर्वविधं सुखं भुङ्क्ते। स्थानवैलक्षण्येन भोगवैलक्षण्यं भवति।।१-३।।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार जलाशय का महत्त्व—विष्णुधर्मोत्तर पुराण में जलाशय (दकार्गल) की प्रशंसा में लिखा है कि भूलोक तथा स्वर्गलोक में पानी के बिना जीवन असम्भव है। इसलिये धर्मात्मा एवं विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह अनेक स्थानों पर जलाशयों का निर्माण कराये। कुँआ खुदवाने का फल अग्निष्टोम यज्ञ के समान है, वह भी यदि मरुस्थल में खुदवाया जाय तो उसका अश्वमेधयज्ञ के बराबर फल होता हैं। पर्याप्त जल वाला कूप खुदवाने वाले के समस्त पापों का हरण कर लेता है। कुँआ का निर्माण कराने वाला पुरुष स्वर्ग में जाकर सब प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। उसमें भी भोग की निपुणता स्थानविशेष के आधार पर कही गयी है।

वराहमिहिरमते विचारः

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥४॥
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव ॥५॥

संस्कृतभावार्थः—इदं दकार्गलप्रकरणं धर्मयशोदायकं भवति। यथा पुरुषशरीरे शिरा-

जालं विसृतं भवति तथैव भूमावपि जलशिराः भवन्ति। यद्यपि आकाशात् पतितं तोयं एकरसवर्णस्वादं भवति तथापि भूमिगतवैलक्षण्येन तत् भिन्नरसवर्णस्वादं भवति। अतः भूमिस्वभावेन जलस्वभावं विचारयेत्।।४।।

वराहमिहिर-मतानुसार जल के रस एवं वर्ण का विचार—यह दकार्गल (जलाशय) प्रकरण धर्म और यश को देता है। जिस प्रकार पुरुषों के शरीर में शिराजाल ऊपर-नीचे फैला हुआ है, उसी प्रकार भूमि की ऊँची-नीची शिरायें होती हैं। यद्यपि आकाश से गिरने वाला जल एक ही वर्ण, रस, स्वाद वाला होता है; फिर भी वह भूमि की विशेषता के कारण विभिन्न रस-वर्ण वाला हो जाता है। अतः भूमि के अनुसार जल के रस, वर्ण आदि का विचार करना चाहिये[१]।।४-५।।

दिगीशाः शिरानामानि च

पुरुहूतानलयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्करा देवाः।
विज्ञातव्याः क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः॥६॥
दिक्पतिसञ्ज्ञा च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी।
एताभ्योऽन्याः शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः॥७॥
पातालादूर्ध्वशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च।
कोणदिगुत्था न शुभाः शिरा निमित्तान्यतो वक्ष्ये॥८॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वादीनां दिशां स्वामिनः क्रमेण इन्द्रादयो देवता भवन्ति। यथा पूर्वस्याः इन्द्रः, आग्नेयाः अग्निः, दक्षिणदिशः यमः, नैर्ऋत्यदिशः निर्ऋतिः, पश्चिमदिशः वरुणः, वायव्याः वायुः, उत्तरस्याः कुबेरः, ऐशान्याः शिवश्च अधिपतिर्भवति। स्वामिनामभिरेव शिरानामान्यपि भवन्ति। यथा पूर्वदिक्स्था शिरा ऐन्द्री ततश्च क्रमेण आग्नेयी याम्या इत्यादि-शिरानाम्नि बोध्यानि। अष्टशिरामध्ये महाशिरेति नवमी शिरा भवति। एता अतिरिच्यापि अन्याः शतधा शिराः भवन्ति। पाताले ऊर्ध्वशिरा शुभं भवति। चतसृषु दिक्षु स्थिताः शिराः शुभा भवन्ति। कोणस्थाश्च शुभाः।।६-८।।

दिशाओं के स्वामी व शिरायें—पूर्वादि दिशाओं के स्वामी क्रम से इन्द्र आदि देवता होते हैं। यथा—पूर्व का इन्द्र, अग्निकोण का अग्नि, दक्षिण का यम, नैर्ऋत्यकोण का निर्ऋति, पश्चिम का वरुण, वायव्यकोण का वायु, उत्तर का कुबेर, ईशानकोण का शिव। इन स्वामियों के नामों के अनुसार ही शिरायें होती हैं। यथा—पूर्व दिशा की शिरा ऐन्द्री, अग्निकोण की आग्नेयी, दक्षिण की याम्या, इसी प्रकार अन्य भी समझें। इस प्रकार ८ दिशाओं की आठ शिरायें भी होती हैं। मध्य से महाशिरानामक ९वीं शिरा

१. ग्रन्थान्तरे—
सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टमिष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम्।।

होती है। इनके अतिरिक्त भी अन्य सैकड़ों शिरायें होती हैं। पाताल में ऊर्ध्व शिरा शुभ होती है। चारों दिशाओं की शिरायें भी शुभ होती हैं। कोणों से सम्बन्धित शिरायें शुभ नहीं होतीं।।६-८।।

शिराचिह्ननिर्देशः

यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात्।
सार्द्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र॥९॥
चिह्नमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोऽथ मृत् पीता।
पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः॥१०॥

संस्कृतभावार्थः—अजले देशे वेतसो दृष्टश्चेत् ततः पश्चिमदिशि हस्तत्रयमितदूर-स्थाने सपादपञ्चहस्तनिम्नस्थाने जलप्रवाहो भवति। तत्र पश्चिमशिरा वहति। तत्र च अर्ध-पुरुषनिम्नस्थाने पाण्डुरवर्णः मण्डूकः लिङ्गं भवति। तत्र नीचैः पीता मृत्तिका, ततश्च नीचैः पाषाणः ततश्च नीचैः जलं भवति।।९-१०।।

शिराओं के चिह्न—जलरहित देश में यदि वेत की झाड़ी दिखायी दे तो उसकी पश्चिम दिशा में ३ हाथ दूरी पर १-१/२ पुरुष (५-१/४ हाथ) नीचे जल बह रहा है, समझें। वहाँ पर पश्चिमा शिरा बहती है। उसके चिह्न ये हैं—उस स्थान पर आधा पुरुष गहरे में पाण्डुर वर्ण का मेंढक रहता है, उसके नीचे पीले वर्ण की मिट्टी, उसके नीचे पत्थर और उसके नीचे जल होता है[१]।।९-१०।।

जम्ब्वाश्चोदग्घस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा।
मृल्लोहगन्धिका पाण्डुरा च पुरुषेऽत्र मण्डूकः॥११॥

संस्कृतभावार्थः—अजले देशे जम्बूवृक्षोऽस्ति चेत् ततः उत्तरस्यां हस्तत्रयदूरदेशे द्विपुरुषनिम्नदेशे पूर्वा शिरा वहति। पुरुषमिते निम्नभागे लोहगन्धा मृत् ततः शुभ्रा मृत् ततश्च मण्डूकः अस्य लक्षणम्।।११।।

जलरहित देश में जामुन का वृक्ष हो तो उस वृक्ष की उत्तर दिशा में ३ हाथ दूरी पर २ पुरुष नीचे पूर्वा शिरा बहती है। उसका लक्षण यह है—१ पुरुष गहरा खोदने

१ सारस्वतमते—
निर्जले वेतस दृष्ट्वा तस्माद्व वृक्षादपि त्रयम्।
पश्चिमायां दिशि ज्ञेयमधः सार्धेन वै जलम्।।
नरोऽत्र षष्टिर्द्विगुणा चाङ्गुलानां प्रकीर्तितः।
तत्र खात्वाऽपुरुष भेकः पाण्डुरवर्णकः।।
मृत् पीता पुटभेदश्च पाषाणाऽधस्ततो जलम्।
शिरा पश्चिमदिक्स्थात्र वहतीति विनिर्दिशेत्।।

पर लोहे के गन्ध वाली मिट्टी मिलेगी, उसके बाद सफेद रंग की और उसके नीचे मेढक रहता है।।११।।

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत् समीपस्थः।
तस्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु ॥१२॥
अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः।
मृद्भवति चात्र नीला दीर्घं कालं च बहुतोयम् ॥१३॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वदिशि जम्बूसमीपे वल्मीकश्चेत् तस्मात् वृक्षादधः हस्तत्रयात् दक्षिणतः पुरुषद्वये स्वादुजलं लभ्यते। अर्धपुरुषे मत्स्यः ततः नीचैः कपोतवर्णः पाषाणः ततः कृष्णा मृत् ततः च चिरस्थापि जलं प्राप्यते।।१२-१३।।

पूर्व दिशा में जामुन के वृक्ष के पास में यदि बल्मीक हो तो उसे वृक्ष से ३ हाथ दक्षिण २ पुरुष नीचे खोदने से मीठा जल निकलता है। वहाँ के लक्षण इस प्रकार होते हैं—पहले आधे पुरुष नीच खोदने से मछली दिखायी देती है। उसके नीचे कबूतर के रंग का पत्थर निकलता है। उसके बाद नीले रंग की मिट्टी और उसके बाद चिरकाल स्थायी बहुत जल निकलता है[१]।।१२-१३।।

पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे।
पुरुषे सितोऽहिरश्माञ्जनोपमोऽधः शिरा सुजला ॥१४॥

संस्कृतभावार्थः—जलहीने देशे उदुम्बरश्चेत्ततश्च पश्चिमतः हस्तत्रयदूरस्थाने पुरुषद्वये स्वादुजलं भवति। अर्धपुरुषे श्वेतसर्पः ततः अञ्जनश्यामः पाषाणः ततश्च शिरेति लक्षणम्।

यदि जलरहित देश में गूलर का पेड़ हो तो उस से पश्चिम की ओर ३ हाथ दूरी पर २ पुरुष नीचे सुस्वादु जल निकलता है। इसका लक्षण यह है—पहले आधे पुरुष नीचे सफेद साँप निकलेगा, उसके बाद अञ्जन-जैसा काला पत्थर दीख पड़ेगा, उसके नीचे शिरा होगी, उसमें से सुस्वादु जल निकलता है।।१४।।

उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको यदि ततोऽर्जुनाद्धस्तैः।
त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात् ॥१५॥
श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद् धूसरा ततः कृष्णा।
पीता सिता ससिकता ततो जलं निर्दिशेदमितम् ॥१६॥

---

१. सारस्वतमते—
जम्बूवृक्षात् पूर्वभागे वल्मीको यदि दृश्यते।
तरोर्दक्षिणतो हस्तांस्त्रींस्त्यक्त्वाऽधो जलं वदेत्।।
नरद्वयेऽर्धपुरुषे मत्स्योऽश्मा पक्षिसन्निभः।
ततोऽपि मृत्तिका नीला ततो मृष्टं जलं वदेत्।।

संस्कृतभावार्थः—अर्जुनवृक्षात् उत्तरदिशि वल्मीकश्चेत् ततः पश्चिमदिशि हस्तत्रयदूरस्थाने पुरुषत्रये जलं भवति। अर्धपुरुषे श्वेतगोधा ततः पुरुषे धूसरा मृत् ततः कृष्णा ततः पीता सिता ससिकता ततः नीचैः जलं लभ्यते।।१५-१६।।

अर्जुन वृक्ष की उत्तर दिशा में यदि वल्मीक दिखायी दे तो उससे पश्चिम ३ हाथ दूरी पर साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है। वहाँ ये लक्षण होते हैं—पहले आधा पुरुष नीचे सफेद गोह दिखायी देगा; उसके १ पुरुष नीचे धूसर मिट्टी उसके नीचे पीली मिट्टी, बाद में बालू सहित सफेद मिट्टी और उसके नीचे बहुत जल निकलेगा।

वल्मीकोपचितायां निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरैः।
पुरुषद्वये सपादे स्वादु जल भवति चाशोष्यम् ॥१७॥
रोहितमत्स्योऽर्धनरे मृतकपिला पाण्डुरा ततः परतः।
सिकता सशर्कराऽथ क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥१८॥

संस्कृतभावार्थः—निर्गुण्ड्याः समीपे वल्मीकश्चेत् ततः दक्षिणदिशि हस्तत्रयदूरस्थाने सपादपुरुषत्रये नीचैः अशोष्यं जलं भवति। प्रथमतः अर्धपुरुषे मत्स्यः ततः कपिला मृत्, ततः पाण्डुरा मृत्, ततः ससिकता मृत् ततश्च जलम्।।१७-१८।।

मेवड़ी के वृक्ष के पास बल्मीक हो तो उससे दक्षिण दिशा में ३ हाथ दूरी पर सवा दो (२१) पुरुष नीचे बहुत अगाध स्वादु जल होता है। इसका लक्षण—पहले आधा पुरुष नीचे खोदने से रोहित मछली मिलेगी, उसके नीचे कपिल वर्ण की मिट्टी; उसके नीचे पाण्डुर वर्ण की मिट्टी, उसके नीचे बालू सहित मिट्टी और उसके नीचे जल मिलेगा।

पूर्वेण यदि बदर्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात्।
पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्द्धनरे ॥१९॥

संस्कृतभावार्थः—तदर्याः पूर्वत्र वल्मीकात् पश्चिमदिशि हस्तत्रयदूरस्थाने पुरुषत्रये जलं भवति। अर्धपुरुषे श्वेतः गृहगोधिः ततो जलमिति लक्षणम्।।१९।।

बेर के वृक्ष से पूर्व में वल्मीक हो तो उससे पश्चिम की ओर ३ हाथ दूरी पर ३ पुरुष नीचे जल होता है। पहले आधा पुरुष नीचे सफेद गिरगिट दिखायी देगा[१]।।१९।।

---

१. सारस्वतमते—
पूर्वभागे बदर्याश्चेद्वल्मीको दृश्यते जलम्।
पश्चाद्धस्तत्रये वाच्यं खाते तु पुरुषत्रये।।
अधः खातेऽर्धपुरुषे दृश्यते गृहगोधिका।
श्वेतवर्णा ततोऽधःस्थं जलं भवति निर्मलम्।।
पलाशयुक्ता बदरी यत्र दृश्या ततोऽपरे।
हस्तत्रयादधस्तोयं सपादे पुरुषत्रये।।
नरे तु डुण्डुभः सर्पो निर्विषश्चिह्नमेव च।
अधस्तोयञ्च सुस्वादु दीर्घकालं प्रवाहितम्।।

सपलाशा बदरी चेद्दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति।
पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च डुण्डुभश्चिह्नम्॥२०॥

संस्कृतभावार्थः—अनले क्षेत्रे पलाशः बदरी च भवेतां चेत् ततः पश्चिमे हस्तत्रय-दूरे सपादपुरुषत्रये नीचैः जलं भवति। पुरुषे डुण्डुभः ततः जलमिति लक्षणम्।।२०।।

यदि जलरहित स्थान में पलाश (ढाक) सहित बेर का वृक्ष हो तो उस वृक्ष से पश्चिम ३ हाथ दूरी पर सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है। उस स्थान का लक्षण यह है—वहाँ १ पुरुष नीचे डुण्डुभ निर्विष साँप निकलेगा।।२०।।

बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन।
पुरुषैस्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्द्धनरे च मण्डूकः॥२१॥

संस्कृतभावार्थः—बिल्वोदुम्बरयोगे ततः दक्षिणदिशि हस्तद्वये सार्धपुरुषत्रये जलं भवति अर्धपुरुषे कृष्णः मण्डूकः ततो जलमिति लक्षणम्।।२१।।

जहाँ बेल और गूलर साथ उगे हों उससे दक्षिण की ओर २ हाथ दूरी पर ३ $^1/_2$ हाथ नीचे जल होता है। उससे पहले आधा पुरुष नीचे काला मेंढक मिलेगा।।२१।।

काकोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन्।
पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च॥२२॥
आपाण्डुपीतिका मृद् गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः।
पुरुषार्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति॥२३॥

संस्कृतभावार्थः—कृष्णोदुम्बरसमीपे वल्मीकश्चेत् तयोर्मध्ये सपादपुरुषत्रये पश्चिमशिरा भवति। प्रथमतः पीतवर्णा मृत् ततः श्वेतः पाषाणः ततः अर्धपुरुषे श्वेतमूषकः ततः श्वेतः पाषाणः ततश्च जलमिति लक्षणम्।।२२-२३।।

काला गूलर के समीप वल्मीक हो तो उसी के बीच ३ $^1/_4$ में पुरुष नीचे पश्चिम शिरा होती है। उसके लक्षण—पहले पीले वर्ण की मिट्टी, उसके नीचे सफेद वर्ण का पत्थर और उसके नीचे आधा पुरुष गहराई पर सफेद मूषक, नीचे सफेद वर्ण का पत्थर दिखाई देगा, उसके नीचे जल।।२२-२३।।

जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः।
प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम्॥२४॥
मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता दृश्यते ततस्तस्मिन्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यकः पयोऽल्पं च सक्षारम्॥२५॥

संस्कृतभावार्थः—अजले देशे कम्पिल्लश्चेत् ततः हस्तत्रये ततः पुरुषत्रये नीचैः शिरा वहति। प्रथमतः नीलकमलवर्णा मृत् ततः कपोतवर्णामृत् ततः हस्ते अजगन्धः मत्स्यः ततश्च अल्पं सक्षारं जलं लभ्यते।।२४-२५।।

यदि निर्जल स्थान में कम्पिल (कबीले) का वृक्ष हो तो उससे पूर्व ३ हाथ के बाद ३-१/४ पुरुष नीचे शिरा बहती है। सबसे पहले नीचे कमल जैसी मिट्टी, उसके बाद कबूतर के रंग की मिट्टी दिखायी देगी; फिर १ हाथ गहरा खोदने पर बकरा की गन्ध से युक्त मछली दिखायी देगी, इसमें थोड़ा और खारा जल निकलेगा[1]।

श्योनाकतरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य।
कुमुदा नाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति॥२६॥

संस्कृतभावार्थः—अजले देशे श्योनाकतरोः वायव्यकोणे हस्तद्वये कुमुदानामिका शिरा वहति। ततः पुरुषत्रये जलं वहति।।२६।।

जिस निर्जल स्थान में सोनापाठा का वृक्ष हो पश्चिमोत्तर (वायव्य) कोण २ हाथ के बाद कुमुदा नाम की शिरा होती है। वहाँ ३ पुरुष नीचे जल होता है।

आसन्नो वल्मीको दक्षिणपार्श्वे विभीतकस्य यदि।
अध्यर्धे भवति शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम्॥२७॥

संस्कृतभावार्थः—विभीतकात् दक्षिणदिशि वल्मीकश्चेत् ततः हस्तद्वयात् परं सार्धपुरुषे शिरा भवति। तत्र खनने जलं लभ्यते।।२७।।

बहेड़ा के वृक्ष के समीप दक्षिण दिशा में वल्मीक हो तो वृक्ष के पूर्व २ हाथ के बाद १-१/२ पुरुष नीचे शिरा रहती है, वहाँ तक खोदने पर जल निकलता है[2]।।२७।।

तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा भवेद्धस्ते।
तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः॥२८॥
श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभोऽश्मा।
अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते॥२९॥

संस्कृतभावार्थः—विभीतकसमीपे पश्चिमदिशि वल्मीकश्चेत् ततः उत्तरदिशि हस्ते सार्धपुरुषचतुष्टये शिरा वहति। पुरुषे श्वेतः विश्वम्भरो नाम प्राणी, ततः केसररक्तः पाषाणः ततः पश्चिमदिशि शिरति लक्षणम्। वर्षत्रये इहस्थं जलं शुष्यति।।२८-२९।।

---

१. **सारस्वतमते**—
निर्जले यत्र कम्पिल्लो दृश्यस्तस्मात् करत्रये।
प्राच्यां त्रिभिर्नरैर्वारि सा भवेद्दक्षिणा शिरा।।
अधो नीलोत्पलाभासा मृत् कापोतप्रभा क्रमात्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यो जलमल्पमशोभनम्।।

२. **सारस्वतमते**—
विभीतकस्य याम्यायां वल्मीको यदि दृश्यते।
करद्वयान्तरे पूर्वे सार्धे च पुरुषे जलम्।।

उसी बहेड़ा की पश्चिम दिशा में बल्मीक हो तो उस वृक्ष से उत्तर १ हाथ भूमि छोड़कर ४-१/२ पुरुष नीचे शिरा बहती है। वहाँ के लक्षण—१ पुरुष गहरा खोदने पर सफेद विश्वम्भर नामक जीव दिखायी देगा, उसके बाद कुंकुम जैसा लाल पत्थर होगा, उसके बाद पश्चिम दिशा में बहती हुई शिरा होगी, जो ३ वर्ष बीतने पर समाप्त हो जाती है।।२८-२९।।

सकुशासित ऐशान्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य।
मध्ये तयोर्नैरर्धपञ्चमैस्तोयमक्षोभ्यम् ॥३०॥
प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभा मही रक्ता।
कुरुविन्दः पाषाणश्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥३१॥

संस्कृतभावार्थः—कोविदारवृक्षात् ऐशान्यां संकुशः श्वेतः वल्मीकश्चेत् कोविदार-वल्मीकमध्ये सार्धपुरुषचतुष्टये सर्वथा अशोष्यं जलं भवति। पुरुषे सर्पः भवति, भूमिः कमलरक्ता स्यात् ततः हरितपाषाणो लभ्येत ततः जलमिति लक्षणम्।।३०-३१।।

जिस भूमि पर कचनार का वृक्ष हो, उस वृक्ष के ईशान कोण में कुश से युक्त सफेद रंग का वल्मीक हो तो उस कचनार और वल्मीक के बीच में पुरुष नीचे अक्षोभ (कभी न सूखने वाला) जल रहता है। वहाँ के लक्षण—१ पुरुष गहराई में साँप निकलेगा, वहाँ की भूमि कमल के सदृश लाल रंग की होगी, उसके बाद हरे रंग का पत्थर होगा।।३०-३१।।

यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृक्षस्तदुत्तरे तोयम्।
वाच्यं पुरुषैः पञ्चभिरत्रापि भवन्ति चिह्नानि ॥३२॥
पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च।
पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौम्या च शिरा शुभाम्बुवहा ॥३३॥

संस्कृतभावार्थः—सप्तवर्णवृक्षात् उत्तरदिशि हस्ते पुरुषपञ्चके जलं लभ्यते। प्रथमतः अर्धपुरुषे हरितमण्डूकः ततः हरितालवर्णा भूमिः ततः मेघवर्णः पाषाणः भवति ततः उत्तराशिरा वहति यतः स्वादुजलं लभ्यते।।३२-३३।।

यदि वल्मीक के पास छतिवन का वृक्ष हो तो वृक्ष के उत्तर १ हाथ दूरी पर ५ पुरुष नीचे जल निकलेगा। लक्षण—पहले १/२ पुरुष नीचे हरे रंग का मेंढक मिलेगा, उसके बाद हरिताल के वर्ण की भूमि मिलेगी, उसके बाद मेघ के रंग का पत्थर मिलेगा और उसके नीचे उत्तरा शिरा होगी, जिसका जल मधुर होगा[1]।।३२-३३।।

---

१. सारस्वतमते—
भुजङ्गगृहसंयुक्तो यत्र स्यात् सप्तपर्णकः।
ततः सौम्ये हस्तमात्रात् पञ्चभिः पुरुषैरधः।।

सर्वेषां वृक्षाणामधःस्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः।
तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥३४॥
पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत् पीतिका ततः श्वेता।
दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चाऽत्र ॥३५॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र वृक्षे मण्डूकः भवति ततः उत्तरदिशि हस्ते सार्धपुरुषचतुष्टये जलं भवति। लक्षणम्—पुरुषे नकुलः ततः नीला मृत् ततः श्वेता ततः मण्डूकः ततः पाषाणः ततश्च जलं भवति।।३४-३५।।

जिन वृक्षों के नीचे मेंढक हो उन वृक्षों की उत्तर दिशा में १ हाथ दूरी पर ४-१/२ पुरुष नीचे जल रहता है। लक्षण—१ पुरुष गहरा खोदने पर नेवला, उसके बाद नीली मिट्टी, उसके बाद सफेद मिट्टी उसके बाद मेढक जैसा पत्थर और उसके नीचे जल निकलेगा[1]।।३४-३५।।

यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करञ्जस्य।
हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे ॥३६॥
कच्छपकः पुरुषार्द्धे प्रथमं चोद्भिद्यते शिरा पूर्वा।
उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माधस्ततस्तोयम् ॥३७॥

संस्कृतभावार्थः—करञ्जात् दक्षिणदिशि सर्पसहितः वल्मीको भवति चेत् ततः दक्षिण-दिशि हस्तद्वये सार्धपुरुत्रये शिरा भवति। लक्षणम्—अर्धपुरुषे कच्छपः ततः जलप्रवाहः लभ्यते, तत्र च उत्तरशिरा लभ्यते। अत्र स्वादुजलं लभ्यते। ततः नीचैः हरितपाषाणः ततश्च पर्याप्तं जलं भवति।।३६-३७।।

यदि करञ्ज वृक्ष की दक्षिण दिशा में साँप वाला वल्मीक दिखायी दे तो वृक्ष से दक्षिणं दिक्षा में २ हाथ के बाद ३-१/२ पुरुष नीचे शिरा रहती है। लक्षण—पहले पुरुष प्रमाण का आधा खोदने पर कछुआ मिलेगा, उसके बाद पूर्व की ओर जल प्रवाह दिखायी देगा, इसी के साथ उत्तरा शिरा मिलेगी, इसका जल मीठा होगा, इसके नीचे हरे रंग का पत्थर मिलेगा, उसके नीचे पर्याप्त जल होता है।

वाच्यं जलं नरार्धे तु मण्डूको हरितो भवेत्।
हरितालनिभा भूश्च मेघाभोऽश्मा ततः शिरा।।
उत्तरा सुजला ज्ञेया दीर्घा मृष्टाम्बुवाहिनी।

---

१. सारस्वतमते—
तरूणां यत्र सर्वेषामधस्थो दर्दुरो भवेत्।
वृक्षादुदग्दिशि जलं हस्तात् सार्धैः नरैरधः।।
चतुर्भिः पुरुषे खाते नकुलो नीलमृत्तिका।
पीतश्वेता ततो भेकसदृशोऽश्मा प्रदृश्यते।।

उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम्।
परिहृत्य पञ्च हस्तानर्धाष्टमपौरुषान् प्रथमम्॥३८॥
अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलत्थवर्णोऽश्मा।
माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम्॥३९॥

संस्कृतभावार्थः—मधूकात् उत्तरदिशि ससर्पो वल्मीकश्चेत्ततः पश्चिमदिशि हस्तपञ्चके सार्धपुरुषसप्तके जलं भवति। लक्षणम्—आदौ हस्ते सर्पः भवति। ततः धूसरा भूमिः ततः कुलत्थवर्णः अश्मा ततः पूर्वा शिरा भवति। अत्र सफेन जलं लभ्यते।

महुआ वृक्ष से उत्तरा दिशा में साँप का वल्मीक हो तो वृक्ष से पश्चिम ५ हाथ दूरी के बाद ७$^1/_2$ पुरुष नीचे जल रहता है। लक्षण—पहले १ पुरुष नीचे साँप मिलेगा, उसके नीचे धूमिल वर्ण की भूमि होगी, उसके नीचे कुलथी के वर्ण का पत्थर मिलेगा, वहाँ पर माहेन्द्री नाम की पूर्वा शिरा होती हैं, इसमें सर्वदा फेनयुक्त जल रहता है।

वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत्।
परुषं पञ्चभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा॥४०॥

संस्कृतभावार्थः—तिलकवृक्षात् दक्षिणदिशि वल्मीकः तत्समीपे कुशदूर्वादयः रूढाः स्युश्चेत् वृक्षात् हस्तपञ्चके पुरुषपञ्चके पूर्वा शिरा भवति॥४०॥

यदि तिलक वृक्ष से दक्षिण की ओर श्रेष्ठ वल्मीक हो, उसके आस-पास कुश और दूब उगी हो तो तिलक वृक्ष से पश्चिम ५ हाथ के बाद ५ पुरुष नीचे पूर्वा शिरा से जल प्राप्त होता है[1]॥४०॥

सर्पावासः पश्चाद्यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम्।
परतो हस्तत्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरीयोनैः॥४१॥
कौवेरी चात्र शिरा वहति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम्।
कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका पीता॥४२॥

संस्कृतभावार्थः—कदम्बात् पश्चिमदिशि ससर्पो वल्मीकश्चेत् दक्षिणदिशि हस्तत्रये दूरे पादोनपुरुषषट्के जलं लभ्यते तत्र उत्तरशिरा भवति। अत्रं जलं लोहगन्धं भवति। लक्षणम् पुरुषे पीतो मण्डूको भवति मृत् च पीता भवति॥४१-४२॥

यदि कदम्बवृक्ष से पश्चिम दिशा में सर्पयुक्त वल्मीक हो तो दक्षिण दिशा में ३ हाथ दूरी के बाद पौने ६ पुरुष नीचे जल होता है, वहाँ उत्तर शिरा होती है, इस जल में लोहे की गन्ध आती है। लक्षण—१ पुरुष गहरा खोदने पर पीला मेंढक मिलेगा और वहाँ की मिट्टी पीले वर्ण की होगी॥४१-४२॥

१. सारस्वतमते—
तिलकाद्दक्षिणे स्निग्धः कुशदूर्वासमायुतः।
वल्मीकाच्चोत्तरे पञ्च हस्तात् सन्त्यज्य पश्चिमे।
नटः पञ्चभिरम्भोऽधः शिरा पूर्वात्र विद्यते॥

वल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नारिकेलो वा।
पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या॥४३॥

संस्कृतभावार्थः—तालो नारिकेलो वा वल्मीकसहितश्चेत् ततः पश्चिमेन हस्तषट्के दूरदेशे पुरुषचतुष्टये दक्षिणशिरा भवति॥४३॥

ताड़ या नारियल का वृक्ष यदि वल्मीक से युक्त हो तो उनमें पश्चिम दिशा में ६ हाथ दूरी के बाद ४ पुरुष गहराई में दक्षिण शिरा बहती है॥४३॥

याम्येन कपित्थस्याहिसंश्रयश्चेदुदग्जलं वाच्यम्।
सप्त परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च॥४४॥
कर्बुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत् पुटभिदपि च पाषाणः।
श्वेता मृत् पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति॥४५॥

संस्कृतभावार्थः—कपित्थवृक्षात् दक्षिणदिशि ससर्पो वल्मीकश्चेत्तस्माद्वृक्षात् उत्तरदिशि हस्तसप्तके दूरे पुरुषपञ्चके जलं भवति। लक्षणम्—पुरुषे कर्बुरः सर्पः ततः कृष्णा मृत् ततः बृहत् पाषाणः ततः श्वेता मृत् ततश्च पश्चिमोत्तरशिराद्वयं लभ्यते॥४४-४५॥

यदि कैथ के वृक्ष से दक्षिण दिशा में साँप वाला वल्मीक हो तो उस वृक्ष से उत्तर ७ हाथ छोड़कर पाँच पुरुष नीचे जल होता है। लक्षण—पहले १ पुरुष गहरा खोदने पर चितकबरा साँप मिलेगा और काली मिट्टी होगी उसके बाद एक बड़ा पत्थर होगा, उसके आगे सफेद मिट्टी मिलेगी, वहाँ १ पश्चिमा शिरा और १ उत्तरा शिरा होगी।

अश्मन्तकस्य वामे वदरी वा दृश्यतेऽहिनिलयो वा।
षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धे पुरुषत्रये तोयम्॥४६॥
कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः ससिकता मृत्।
आदौ च शिरा याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च॥४७॥

संस्कृतभावार्थः—अश्मन्तकवृक्षात् उत्तरदिशि बदरी, ससर्पवल्मीको वा भवति चेत् तस्माद्वृक्षात् हस्तषट्के दूरे सार्धपुरुषत्रये जलं भवति। लक्षणम्—पुरुषे कच्छपः ततः धूसरः अश्मा ततः ससिकता मृत् ततः दक्षिणशिरा ततश्च ऐशान्यशिरा भवति।

अश्मन्तक वृक्ष की बायीं ओर उत्तर में बेर का वृक्ष अथवा साँप वाला वल्मीक हो तो उस वृक्ष के उत्तर में ६ हाथ के बाद ३$^1/_2$ पुरुष नीचे जल होता है। लक्षण—१ पुरुष नीचे खोदने में कछुआ मिलेगा, उसके बाद भूरे रंग का पत्थर होगा, उसके नीचे बलुही मिट्टी, उसके बाद पहले दक्षिणाशिरा और उसके बाद ऐशानीशिरा होती है॥४६-४७॥

वामेन हरिद्रतरोर्वल्मीकश्चेज्जलं भवति पूर्वे।
हस्तत्रितये सत्र्यंशैः पुम्भिः पञ्चभिर्भवति ॥४८॥
नीलो भुजगः पुरुषे मृत् पीता मरकतोपमश्चाश्मा।
कृष्णाः भूः प्रथमा वारुणी शिरा दक्षिणेनान्या ॥४९॥

संस्कृतभावार्थः—हरिद्रायाः उत्तरतः वल्मीकश्चेत् वृक्षात् पूर्वभागे हस्तत्रयदूरे पादोन-पुरुषषट्के जलं लभ्यते। लक्षणम्—पुरुषे नीलः सर्पः ततः पीता मृत् ततः मरकतमणितुल्यः अश्मा ततः कृष्णा मृत् ततः वारुणीशिरा ततश्च दक्षिणशिरा लभ्यते।।४८-४९।।

हरिद्रा (हल्दू) वृक्ष के उत्तर में यदि वल्मीक हो तो वृक्ष के पूर्व में ३ हाथ के बाद ५ १/२ पुरुष नीचे जल रहता है। लक्षण—१ पुरुष नीचे नीला साँप, फिर पीली मिट्टी, उसके बाद मरकत मणि के आकार का पत्थर मिलेगा, बाद में काली मिट्टी होगी। यहाँ पहले वारुणी शिरा बाद में दक्षिणा शिरा मिलेगी।।४८-४९।।

जलपरिहीने देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चेन्निमित्तानि।
वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे ॥५०॥
भार्ङ्गी त्रिवृता दन्ती सूकरपादी च लक्ष्मणा चैव।
नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः ॥५१॥

संस्कृतभावार्थः—अजले देशे उक्तलक्षणानुसारं जलं निर्दिशेत्। उक्तभूमौ वीरणां दूर्वा वा भवति चेत् तत्र मृत् कोमला भवति। तत्र पुरुषे एव जलं लभ्यते। भार्ङ्गी, निशोथः, दन्ती, सूकरपादी, लक्ष्मणा, नवमालिका वृक्षकेभ्यः दक्षिणदिशि हस्तद्वयदूरे पुरुषत्रये जलं भवति।।५०-५१।।

जलरहित जिस स्थान में निम्नोक्त लक्षण हों वहाँ जल है, ऐसा निर्देश करें। यदि उक्त भूमि पर वीरणा नामक तृण और दूब वहाँ की भूमि अति कोमल होती है। वहाँ १ पुरुष नीचे जल रहता है। भांगीं, निशोथ, जमालगोटा, केवाच, लक्ष्मणा, नेवारी, ये सब वृक्ष जहाँ हों उस स्थान से दक्षिण २ हाथ के बाद ३ पुरुष नीचे जल रहता है।।५०-५१।।

स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामनविकटद्रुमाः समीपजलाः।
सुषिरा जर्जरपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः ॥५२॥

संस्कृतभावार्थः—स्निग्धानां लम्बशाखानां वामनविकटानां द्रुमाणां समीपे जलं भवति। सुषिराणां जर्जरपत्राणां रूक्षाणां वृक्षाणां समीपतः जलं न भवति।।५२।।

जो वृक्ष चिकना, फैली शाखाओं से युक्त, अत्यन्त छोटा, विस्तीर्ण हो, उसके समीप जल रहता है तथा जो वृक्ष भीतर से खोखला, फटा हुआ तथा सूखे पत्तों वाला हो उसके समीप जल नहीं रहता है।।५२।।

तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकबिल्वतिन्दुकाङ्कोलाः।
पिण्डारशिरीषाञ्जनपरूषका वञ्जुलोऽतिबला ॥५३॥
एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम्।
हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरेण ॥५४॥

संस्कृतभावार्थः—तिलकाम्रातकवरुणभल्लातकबिल्वतिन्दुकङ्कोलपिण्डारशिरीषा-ञ्जनपरूषकवञ्जुलातिबलवृक्षाणां स्निग्धपत्राणां वल्मीकनिकटस्थानां उत्तरदिशि हस्तत्रयदूरे पुरुषचतुष्टये जलं भवति।।५३-५४।।

तिलक, आम्रातक, वरुण, भिलावा, बेल, तेंदुआ, अंकोल, पिंडार, शिरीष, अञ्जन, फालसा, वञ्जुल (तिनिश अथवा बेत), अतिबला ये वृक्ष हरे-भरे पत्तों से युक्त हों और इनके समीप बल्मीक हो तो इनसे उत्तर दिशा में ३ हाथ के बाद ४ पुरुष नीचे जल होता है।।५३-५४।।

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं चास्मिन् ॥५५॥

संस्कृतभावार्थः—अतृणायां भुवि तृणतो नीचैः, सतृणायां भुवि तृणरहितदेशात् नीचैः जलं धनं वा भवति।।५५।।

तृणरहित भूमि पर जहाँ तृण हों अथवा तृण वाली भूमि पर जहाँ तृण न हो उसके नीचे जल शिरा होती है अथवा धन रहता है।।५५।।

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात्।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥५६॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र कण्टकिनो वृक्षाः अकण्टकानां मध्ये अकण्टकाः भवन्ति सकण्टकानां मध्ये कण्टकी च भवति चेत् ततः पश्चिमदिशि हस्तत्रये दूरे पुरुषत्रये जलं धनं वा लभ्यते।।५६।।

जहाँ पर कांटे वाले वृक्ष कांटों से रहित हों, बिना कांटे वाले पलास आदि के बीच में हों अथवा कांटे वाले वृक्षों के बीच में बिना कांटे वाले वृक्ष हों। उसके पश्चिम दिशा में ३ हाथ के बाद ३ पुरुष नीचे खोदने पर जल अथवा धन मिलता है।।५६।।

नदति मही गम्भीरं यस्मिंश्चरणाहता जलं तस्मिन्।
सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौवेरी चात्र च शिरा स्यात् ॥५७॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र भूमौ पादघाते गम्भीरो ध्वनिर्भवति ततः सार्धपुरुषत्रये उत्तराशिरा वहति तत्र च जलं लभ्यते।।५७।।

जिस स्थान पर भूमि को पैर से मारने पर गम्भीर शब्द करे, उसी स्थान पर ३ १/२ पुरुष नीचे उत्तरा शिरा बहती है, वहाँ जल रहता है।।५७।।

वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा च स्यात्।
विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा॥५८॥

संस्कृतभावार्थः—यस्य वृक्षस्य शाखा अवगम्य पीतवर्णा भवति ततः पुरुषत्रये जलं लभ्यते॥५८॥

जिस वृक्ष की एक शाखा झुककर पीले वर्ण की हो जाय तो उसके नीचे ३ पुरुष खोदने पर जल निकलता है॥५८॥

फलकुसुमविकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः।
भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता॥५९॥

संस्कृतभावार्थः—यस्य द्रुमस्य फलमूलयोर्विकारो लक्ष्यते, तस्मात् पूर्वदिशि हस्तत्रयदूरे पुरुषचतुष्टये शिरा लभ्यते। तत्र पीता मृत् ततः नीचैश्च पाषाणो भवति॥५९॥

जिस वृक्ष के फल-फूल में विकार उत्पन्न हो जाय, उस वृक्ष के पूर्व में ३ हाथ दूरी के बाद ४ पुरुष नीचे शिरा होती है। वहाँ की मिट्टी पीली, उसके नीचे पत्थर होता है॥५९॥

यदि कण्टकारिका कण्टकैर्विना दृश्यते सितैः कुसुमैः।
तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च॥६०॥

संस्कृतभावार्थः—कण्टकारिका अकण्टका श्वेतपुष्पा च भवति चेत् ततः नीचैः पुरुषत्रये जलं लभ्यते॥६०॥

यदि भटकटैया का पौधा कांटे से रहित हो और उसके फूल सफेद हों तो उसके नीचे ३ पुरुष पर जल होता है॥६०॥

खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जित देशे।
तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्य त्रिपुरुषैर्वारि॥६१॥

संस्कृतभावार्थः—अजले देशे द्विशिरस्का खर्जूरी भवेत् चेत्ततः पश्चिमदिशि हस्तद्वये पुरुषत्रये जलं भवति॥६१॥

जिस निर्जल देश में दो शिर का खजूर का वृक्ष हो, उस खजूर के वृक्ष के पश्चिम भाग से २ हाथ के बाद ३ पुरुष नीचे खोदने से जल निकलेगा[1]॥६१॥

यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात् पलाशवृक्षो वा।
सव्येन तत्र हस्तद्वयेऽम्बु पुरुषद्वये भवति॥६२॥

१. सारस्वतमते—
खर्जूरी द्विशिरस्का स्यान्निर्जले चेत् करद्वये।
निर्देश्यं पश्चिमे वारि खात्वाऽधः पुरुषत्रयम्॥

संस्कृतभावार्थः—कर्णिकारः पलाशो वा सितपुष्पः यत्र भवति ततः दक्षिणतो हस्तद्वयदूरे पुरुषद्वये जलं भवति॥६२॥

यदि कठचम्पा फूल का वृक्ष या पलाश का वृक्ष जहाँ सफेद फूल का हो, वहाँ उन वृक्षों से दक्षिण २ हाथ की दूरी के बाद २ पुरुष नीचे जल होता है।

यस्यामूष्मा धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण॥६३॥

संस्कृतभावार्थः—यतः भुवः ऊष्मा उद्गच्छति धूम इव च दृश्यते तत्र पुरुषद्वये महान् तोयप्रवाहः भवति॥६३॥

जिस भूमि पर ऊष्मा (भाप) निकल रही हो अथवा जहाँ धुआँ जैसा दिखायी दे, वहाँ २ पुरुष नीचे अत्यधिक जलयुक्त शिरा होती है॥६३॥

यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति।
स्निग्धमति पाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र॥६४॥

संस्कृतभावार्थः—यत्रोत्पन्नानि तृणादीनि स्वयं शुष्यन्ति, यत्र वा स्निग्धताऽधिका पत्राणि च पीतानि भवन्ति ततः पुरुषद्वये महाशिरा भवति। अत्र बहुजलं लभ्यते॥६४॥

जिस भूमि पर उत्पन्न अन्न या घास स्वयं सूख जाती हो, या जिस भूमि पर चिकनापन वाला अन्न अधिक होता हो, पत्ते पीले पड़ जाते हों उस भूमि पर २ हाथ नीचे महाशिरा होती है। इससे पर्याप्त जल मिलता है॥६४॥

मरुभूमौ शिराविज्ञानविचारः

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि।
ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति॥६५॥

संस्कृतभावार्थः—यथा मरौ शिराज्ञानं तथा अत्र विधयः वर्णयन्ते। उष्ट्रग्रीवेन कुटिला शिरा अधिकभूमिं वहन्ति॥६५॥

मरुभूमि में शिराविज्ञान का विचार—जिस प्रकार मरुभूमि के भीतर रहने वाली शिराओं का ज्ञान हो सके उस विधि का यहाँ वर्णन किया जा रहा है। जिस प्रकार ऊँट की गर्दन टेढ़ी होती है, उसी प्रकार भूमि के भीतर स्थित शिरायें भी होती हैं॥६५॥

पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात्।
उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पञ्चभिः पुरुषैः॥६६॥
चिह्नं दर्दुर आदौ मृत् कपिला तत्परं भवेद्धरिता।
भवति च पुरुषेऽधोऽश्मा तस्य तलेऽम्भो विनिर्देश्यम्॥६७॥

संस्कृतभावार्थः—पीलोः ऐशान्यां वल्मीकश्चेत् ततः पश्चिमभागे हस्तचतुष्टये

पुरुषपञ्चके जलं लभ्यते। तत्र उत्तराशिरा भवति। लक्षणम्—पुरुषे मण्डूकः ततः कपिला मृत ततः हरिता मृत् ततश्च पाषाणः अनन्तरं जलं भवति।।६६-६७।।

पीलु वृक्ष के ईशान कोण में वल्मीक हो तो उसके पश्चिम ४ हाथ के बाद ५ पुरुष नीचे जल रहता है। वहाँ उत्तर दिशा में बहने वाली शिरा होती है। लक्षण—पहले १ पुरुष नीचे मेंढक, उसके बाद कपिल वर्ण की मिट्टी, उसके नीचे हरे रंग की मिट्टी, उसके बाद पत्थर और उसके नीचे जल होगा।।६६-६७।।

पीलोरेव प्राच्यां वल्मीकोऽतोऽर्धपञ्चमैर्हस्तैः।
दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ॥६८॥
प्रथमे पुरुषे भुजगः सितासितो हस्तमात्रमूर्त्तिश्च।
दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भूरिपानीयम् ॥६९॥

संस्कृतभावार्थः—पीलोः पश्चिमतः वल्मीकश्चेत् ततः दक्षिणदिशि हस्तचतुष्टये पुरुषसप्तके जलं लभ्यते। लक्षणम्—पुरुषे कर्बुरः सर्पमूर्तिः जीवत्सर्पो वा ततः दक्षिणशिरा भवति जलं च सक्षारं भवति।।६८-६९।।

यदि पीलु वृक्ष से पश्चिम वल्मीक हो तो वृक्ष से दक्षिण दिशा में ४ हाथ के बाद ७ पुरुष नीचे जल होता है, ऐसा कहें। लक्षण—पहले १ पुरुष खोदने पर भूरे रंग की साँप की मूर्ति अर्थात् भूरा साँप दिखायी देगा, उसके बाद दक्षिण दिशा में शिरा होगी, इसका जल खारा होता है[1]।।६८-६९।।

उत्तरतश्च करीरस्याहिगृहं दक्षिणे जलं स्वादु।
दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयं पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः ॥७०॥

संस्कृतभावार्थः—करीरात् उत्तरदिशि ससर्पो वल्मीकश्चेत् ततः दक्षिणदिशि सपादहस्तचतुष्के पुरुषदशके स्वादु जलं लभ्यते। पुरुषे पीतो मण्डूकः दृश्यते।।७०।।

यदि करील वृक्ष से उत्तर दिशा में सर्पयुक्त वल्मीक हो तो उस वृक्ष से दक्षिण में हाथ के बाद १० पुरुष नीचे मीठा जल जानना चाहिये, लक्षण—वहाँ १ पुरुष नीचे खोदने से पीले वर्ण का मेढक दिखायी देगा।।७०।।

---

१. सारस्वतमते—
ऐशान्यां पीलुवृक्षस्य वल्मीकश्चेज्जलं वदेत्।
चतुर्भिः सरलैर्हस्तैः पश्चिमे नरपञ्चमे।।
प्रथमे पुरुषे भेकः कपिला हरिता च मृत्।
पाषाणस्य तले सौम्यां शिरां बहुजलां वदेत्।।
उदक्करीराद्वल्मीको दृश्यते चेज्जलं वदेत्।
चतुर्भिर्दक्षिणैर्हस्तैः सार्धदशनरादतः।।
नरे भेकः पीतवर्णो दृश्यते चिह्नमत्र हि।।

रोहीतकस्य पश्चादहिवासश्चेत्त्रिभिः करैर्याम्ये।
द्वादशपुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शिरा ॥७१॥

संस्कृतभावार्थः—रोहितकात् पश्चिमदिशि ससर्पो वल्मीकश्चेत् ततः दक्षिणदिशि हस्तत्रये दूरे पुरुषद्वादशके सक्षारं जलं वहती शिरा पश्चिममुखा भवति।।७१।।

रोहीतक (रोहिड़ा) वृक्ष से पश्चिम यदि सर्पयुक्त वल्मीक हो तो उस वृक्ष से दक्षिण दिशा में ३ हाथ के बाद १२ पुरुष नीचे क्षार जल की शिरा पश्चिम की ओर बहती रहती है।।७१।।

इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते।
खात्वा चतुर्दशनरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे ॥७२॥

संस्कृतभावार्थः—अर्जुनात् पूर्वदिशि वल्मीकश्चेत् ततः पश्चिमतः हस्तदूरे पुरुषचतुर्दशके शिरा भवति। लक्षणम्—पुरुषे कपिलवर्णा गोधा दृश्यते।।७२।।

अर्जुन वृक्ष से पूर्व में यदि वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पश्चिम में १ हाथ के बाद १४ पुरुष नीचे शिरा होती है। लक्षण—पहले १ पुरुष नीचे कपिल वर्ण की गोह दिखायी देगी।।७२।।

यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भववामतो भुजङ्गगृहम्।
हस्तद्वये तु याम्ये पञ्चदशनरावसानेऽम्बु ॥७३॥
क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे ताम्रसन्निभश्चाश्मा।
रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र ॥७४॥

संस्कृतभावार्थः—सुवर्णवृक्षात् उत्तरदिशि ससर्पो वल्मीकश्चेत् तस्मात् वृक्षात् दक्षिणदिशि हस्तद्वयदूरे पुरुषपञ्चदशके सक्षारं जलं भवति। लक्षणम्—आदौ पादपुरुषे नकुलः ततः रक्तोऽश्मा ततः रक्ता भूमिः तत्र च दक्षिणशिरा वहति।।७३-७४।।

यदि अमलतास वृक्ष की उत्तर दिशा में सर्पयुक्त वल्मीक हो तो उस वृक्ष से दक्षिण दिशा में २ हाथ के बाद १५ पुरुष नीचे क्षार जल होता है। लक्षण—पहले १/४ पुरुष नीचे नेवला उसके बाद लाल रंग का पत्थर और लाल वर्ण की भूमि होगी, यहाँ दक्षिण शिरा बहती है।।७३-७४।।

बदरीरोहितवृक्षौ सम्पृक्तौ चेद्विनापि वल्मीकम्।
हस्तत्र्येऽम्बु पश्चात् षोडशभिर्मानवैर्भवति ॥७५॥
सुरसं जलमादौ दक्षिणा शिरा वहति चोत्तरेणान्या।
पिष्टनिभः पाषाणो मृत् श्वेता वृश्चिकोऽर्धनरे ॥७६॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र बदरीरोहितौ सम्पक्तौ वल्मीकश्चेन्न स्यात्तदा ताभ्यां वृक्षाभ्यां

पश्चिमतः हस्तत्रये पुरुषषोडशके स्वादुजलं भवति। अत्र प्रथमा दक्षिणदिशि अन्या च शिरा उत्तरदिशि भवति। लक्षणम्—तत्र तुषावर्णाः पाषाणाः श्वेता मृत् अर्धपुरुषे वृश्चिकश्च भवति।

जहाँ वेर और रोहिडा का वृक्ष एक साथ उगे हों, वल्मीक हो या न हो तो उन वृक्षों से पश्चिम में ३ हाथ के बाद १६ पुरुष नीचे मीठा जल होता है, यहाँ प्रथमा शिरा दक्षिण की ओर और द्वितीया शिरा उत्तर की ओर होती है। लक्षण—वहाँ धान के छिलकों के रंग का पत्थर, सफेद मिट्टी और आधा पुरुष नीचे बिच्छू मिलेगा।

सकरीरा चेद्बदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः।
अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी बहुजला च शिरा ॥७७॥

संस्कृतभावार्थः—कबीरबदर्यौ सम्पृक्ते चेत् ततः पश्चिमेन हस्तत्रये पुरुषाष्टादशके जलं भवति। तत्र ऐशान्यां बहुजला शिरा वहति।।७७।।

यदि बेर और करीर वृक्ष साथ हो तो उनसे पश्चिम ३ हाथ दूरी के बाद १८ पुरुष नीचे जल रहता है। वहाँ ईशान कोण में विशेष जल वाली शिरा बहती है।।७७।।

पीलुसमेता बदरी हस्तत्रयसम्मिते दिशि प्राच्याम्।
विंशत्या पुरुषाणामशोष्यमम्भोऽत्र सक्षारम् ॥७८॥

संस्कृतभावार्थः—पीलबदर्यौ सम्पृक्ते चेत ततः पूर्वेण हस्तत्रये विंशतौ पुरुषेषु अशोष्यं सक्षारं जलं लभ्यते।।७८।।

पीलु वृक्ष से युक्त बेर का वृक्ष हो तो उनसे पूर्व में ३ हाथ दूरी के बाद २० पुरुष नीचे कभी नहीं सूखने वाला किन्तु खारा जल रहता है।।७८।।

ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ यत्र ककुभबिल्वौ वा।
हस्तद्वयेम्बु पश्चान्नरैर्भवेत् पञ्चविंशत्या ॥७९॥

संस्कृतभावार्थः—अर्जुनकरीरौ बिल्वार्जुनौ वा सम्पृक्तौ चेत् ततः पश्चिमेन हस्तद्वये पञ्चविंशतिपुरुषेषु जलं लभ्यते।।७९।।

जहाँ अर्जुन और करौल वृक्ष एक साथ हों अथवा जहाँ अर्जुन और बेल का वृक्ष साथ हो तो उन वृक्षों से पश्चिम में २ हाथ के बाद २५ पुरुष नीचे जल होता है।।७९।।

वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति।
कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या ॥८०॥

संस्कृतभावार्थः—वल्मीकोपरि पूर्वा पीतकुशो वा भवति चेत् वल्मीकोपरि एव कूपो निर्मातव्यः। तत्र एकविंशतौ पुरुषेषु जलं लभ्यते।।८०।।

यदि वल्मीक के ऊपर दूव या कुश पीले वर्ण के हों तो वल्मीक के ऊपर ही कुआँ खोदना चाहिए। वहाँ २१ पुरुष नीचे जल रहता है।।८०।।

भूमिः कदम्बकयुता वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा।
हस्तद्वये याम्ये नरैर्जलं पञ्चविंशत्या ॥८१॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र कदम्बवृक्षो भवति तत्र दूर्वासहितो वल्मीको दृष्टश्चेत् कदम्बवृक्षात् दक्षिणदिशि हस्तद्वये पञ्चविंशतौ पुरुषेषु जलं लभ्यते।।८१।।

जिस भूमि पर कदम्ब वृक्ष हो वहाँ द्रव्ययुक्त वल्मीक दिखायी दे तो कदम्ब वृक्ष से दक्षिण में दो हाथ के बाद २५ पुरुष नीचे जल रहता है।।८१।।

वल्मीकत्रयमध्ये रोहितकपादपो यदा भवति।
नानावृक्षैः सहितस्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥८२॥
हस्तचतुष्के मध्यात् षोडशभिश्चाङ्गुलैरुदग्वारि।
चत्वारिंशत् पुरुषान् खात्वाऽश्माऽधः शिरा भवति ॥८३॥

संस्कृतभावार्थः—वल्मीकत्रयमध्ये रोहितवृक्षो अन्यैस्त्रिभिर्वृक्षैः परिवृत्तो भवति चेत्तत्र जलं भवति। वल्मीकत्रयमध्ये यो रोहितको वृक्षः ततः उत्तरदिशि हस्तचतुष्टये षोडशाङ्गुलि-सहिते दूरे चत्वारिंशतिपुरुषेषु अश्मो भवति। ततश्च शिरा लभ्यते।।८२-८३।।

यदि तीन वल्मीकों के बीच में रोहिड़ा वृक्ष हो और अन्य तीन से अधिक वृक्षों से घिरा हो तो उस स्थान में जल होता है। तीन वल्मीक के बीच में जो रोहिड़ा का वृक्ष है, उससे उत्तर में ४ हाथ और १६ अंगुल के बाद ४० पुरुष नीचे खोदने पर पत्थर मिलेगा, उसके नीचे शिरा मिलेगी।।८२-८३।।

ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिन् शमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः।
पश्चात् पञ्चकरान्ते शतार्धसङ्ख्यैर्नरैः सलिलम् ॥८४॥

संस्कृतभावार्थः—ग्रन्थिमयी शमी यत्र ततः उत्तरदिशि वल्मीकश्चेत्ततः पश्चिमदिशि हस्तपञ्चके दूरे पञ्चाशत्पुरुषेषु जलं लभ्यते।।८४।।

अनेक गाँठों वाला जहाँ शमी वृक्ष हो उसके उत्तर यदि शमी वृक्ष हो तो उस वृक्ष से पश्चिम ५ हाथ दूरी के बाद ५० पुरुष नीच जल होता है।

एकस्थाः पञ्च यदा वल्मीका मध्यमो भवेच्छ्वेतः।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा नरषष्ट्या पञ्चवर्जितया ॥८५॥

संस्कृतभावार्थः—यद्येकत्र पञ्च वल्मीकेषु एकः मध्ये श्वेतश्च भवति तदा तत्र शिरा भवति। इयं च शिरा पञ्चपञ्चाशत्पुरुषेषु भवति।।८५।।

यदि एक स्थान में ५ वल्मीक हों तो उनमें पाँचवाँ बीच का माना जाता है, वह पाँचवाँ यदि सफेद वर्ण का हो तो उसमें शिरा होती है, यह शिरा ५५ पुरुष नीचे होती है।।८५।।

सपलाशा यत्र शमी पश्चिमभागेऽम्बु मानवैः षष्ट्या।
अर्धनरेऽहिः प्रथमं सबालुका पीतमृत् परतः ॥८६॥

संस्कृतभावार्थः—पलाशशम्यौ सम्पृक्ते चेत्तत: पश्चिमदिशि हस्तपञ्चके दूरे षष्टिपुरुषेषु जलं भवति। लक्षणम्—आदौ अर्धपुरुषे सर्पः ततः ससिकता पीता मृत् भवति।।८६।।

जहाँ पलाश वृक्षयुक्त शमी वृक्ष हो, उस शमी से पश्चिम में ५ हाथ के बाद ६० पुरुष नीचे जल होता है। लक्षण—पहले १/२ पुरुष खोदने पर सर्प मिलता है, उसके बाद बालू-सहित पीली मिट्टी मिलती है[1]।।८६।।

वल्मीकेन परिवृतः श्वेतो रोहितको भवेद्यस्मिन्।
पूर्वेण हस्तमात्रे सप्तत्या मानवैरम्बु ॥८७॥

संस्कृतभावार्थः—सवल्मीकः श्वेतः रोहितकः यत्र तत्र पूर्वदिशि हस्ते सप्ततिपुरुषेषु जलं लभ्यते।।८७।।

जहाँ सफेद रोहिडा का वृक्ष वल्मीक से युक्त हो, वहाँ उस वृक्ष से पूर्व दिशा में १ हाथ के बाद ७० पुरुष नीचे जल रहता है।।८७।।

श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः।
नरपञ्चकसंयुतया सप्तत्याहिर्नरार्धे च ॥८८॥

संस्कृतभावार्थः—श्वेतात् कण्टकिश्च शमीवृक्षात् दक्षिणदिशि हस्ते पञ्चसप्ततिपुरुषेषु जलं भवति। लक्षणम्—अर्धपुरुषे सर्पो भवति।।८८।।

जहाँ सफेद और अधिक काँटेदार शमी वृक्ष हो वहाँ उस वृक्ष से दक्षिण १ हाथ के बाद ७५ पुरुष नीचे जल रहता है। लक्षण—१/२ पुरुष खोदने पर सर्प मिलेगा[2]।।८८।।

जाङ्गलदेशे विशेषः

मरुदेशे यच्चिह्नं न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम्।
जम्बूवेतसपूर्वैर्ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः ॥८९॥

संस्कृतभावार्थः—यानि लक्षणानि मरौ जलान्वेषणायोक्तानि न तानि जाङ्गलभूमौ योजनीयानि। मरुदेशापेक्षया जाङ्गले द्विगुणिते अगाधदेशे जलं लभ्यते।।८९।।

जिन लक्षणों के आधार पर मरु देश में जल-प्राप्ति का निर्देश दिया है, उनका अनुकरण जङ्गल (स्वल्प जल वाले) देश में न करें। यहाँ मरुदेश की अपेक्षा जल दूनी गहरायी में मिलेगा—ऐसा निर्देश दें।।८९।।

जम्बूस्त्रिवृता मौर्वी शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा।
वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती गरुडवेगा च ॥९०॥
सूकरिकमाषपर्णीव्याघ्रपदाश्चेद् यद्यहेर्निलये।
वल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥९१॥

संस्कृतभावार्थः—जम्बू-त्रिवृत्ता-मूर्वा-शिशुमारी-सरिवा-हरीतकी-श्यामलता-वाराही-ज्योतिष्मती-गरुड़वेगा-सूकरिका-माषपर्णी-व्याघ्रपदी इत्यौषधिभिः सह वल्मीकसमीपदेशे भवन्ति चेत् ततः उत्तरदिशि हस्तत्रये पुरुषत्रयनिम्नदेशे जलं भवति।।९०-९१।।

जामुन, निशोथ, मूर्वा, शिशुमारी, सरिवन, हरीतकी, श्यामा, वाराहीकन्द, मालकांगुनी, गरुडवेगा, सूकरिका, माषपर्णी, व्याघ्रपदी—ये औषधियाँ जिस स्थान पर सर्पयुक्त वल्मीक हो, उससे उत्तर दिशा में ३ हाथ के बाद ३ पुरुष नीचे जल निकलेगा।

एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ तु पञ्चभिः पुरुषैः।
एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥९२॥

संस्कृतभावार्थः—९०तम ९१तम श्लोकयोः उक्तं लक्षणं जाङ्गलेषु चेत् पुरुषपञ्चके जलं लभ्यते मरौ चेत् पुरुषसप्तके जलं लभ्यते।।९२।।

उक्त पद्य में जल-प्राप्ति का निर्देश अधिक जल वाले स्थानों के लिये है। यदि उक्त लक्षण जांगल देश में प्राप्त हो तो वहाँ ५ पुरुष नीचे कहे और ये ही लक्षण यदि मरुभूमि में दिखायी दे तो ७ पुरुष नीचे जल बतलाना चाहिये।।९२।।

वक्तव्य—'बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोगवान्। जाङ्गलोऽल्पाम्बुशाखी च पित्तासृङ्मारुतोत्तरः' अर्थात् अत्यधिक जल वाले प्रदेश को 'आनूप' और कम पानी वाले देश को 'जाङ्गल' कहा गया है। इस परिभाषा तथा श्लोक सं० ९८ के अनुसार निश्चित ही उपर्युक्त श्लोक का पाठ भ्रामक किंवा नीचे-ऊपर हो गया है, ऐसा लगता है। वास्तव में उक्त श्लोक को इस प्रकार पढ़ें और समझें; क्या युक्तिसंगत है—

एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ सप्तभिः पुरुषैः।
एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे पञ्चभिः कथयेत् ॥

अब इसका अर्थ इस प्रकार होगा—जांगल भूमि में ७ पुरुष गहराई और मरुदेश में ५ पुरुष गहरायी में जल मिलेगा।

---

१. सारस्वतमते—
शमीपलाशसंयुक्ता यत्र स्यात्तत्र पश्चिमे।
पञ्चहस्ताज्जलं वाच्यं षष्ट्यात्र पुरुषैरधः।।
अत्रार्धपुरुषे सर्पः पीता मृत्स्यात् सबालुका।
तदधोऽम्भो विनिर्देश्यं दीर्घकालं प्रवाहितम्।।

२. सारस्वतमते—
श्वेतातिकण्टका यत्र शमी स्यात्तत्र दक्षिणे।
हस्तेन पञ्चसप्तत्या नराणां निर्दिशेज्जलम्।।
खातेऽर्धपुरुषे सर्पो दृश्यतेऽञ्जनसप्रभः।
सुरसं च जलं ज्ञेयं चिरकालप्रवाहितम्।।

एकनिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना।
तस्यां यत्र विकारो भवति धरित्र्यां जलं तत्र॥९३॥

संस्कृतभावार्थः—एकवर्णा मही तृणलतादिरहिता अविकारा चेत् तत्र पुरुषपञ्चदशके जलं भवति॥९३॥

जहाँ पर एक रंग की भूमि हो, तृण, लता, गुल्म, वृक्षों से हीन हो उस भूमि पर जहाँ कुछ परिवर्तन दिखायी दे। वहाँ १५ पुरुष नीचे जल होता है[१]॥९३॥

यत्र स्निग्धा निम्ना सबालुका सानुनादिनी वा स्यात्।
तत्रार्धपञ्चकैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्यदि वा॥९४॥

संस्कृतभावार्थः—स्निग्धनिम्नससिकता सशब्दभृत् यत्र ततः सार्धपुरुषचतुष्टये पुरुषपञ्चके वा जलं भवति॥९४॥

जहाँ की मिट्टी चिकनी, बैठी हुई, बालू वाली और शब्द करती हो, उस स्थान पर ४½ या ५ पुरुष नीचे जल होता है॥९४॥

स्निग्धतरूणां याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च।
तरुगहनेऽपि हि विकृतो यस्तस्मात् तद्वदेव वदेत्॥९५॥

संस्कृतभावार्थः—स्निग्धतरुभ्यः दक्षिणदिशि पुरुषचतुष्टये बहुजलं भवति। येषां पुष्पफलेषु विकारः तस्मात् वृक्षात् दक्षिणदिश्यपि पुरुषचतुष्टये जलं भवति॥९५॥

जहाँ हरे-भरे वृक्ष हों, उनसे दक्षिण दिशा में ४ पुरुष नीचे बहुत जल होता है। उनमें भी जिनके फल-फूलों में विकार उत्पन्न हुआ हो, उस वृक्ष से भी दक्षिण दिशा में ४ पुरुष नीचे जल होता है॥९५॥

नमते यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जाङ्गलानूपे।
कीटा वा यत्र विना लयेन बहवोऽम्बु तत्रापि॥९६॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र जाङ्गलानूपे भूमिः पदा नमति तत्र सार्धपुरुषे जलं मिलति। कीटाश्च विनावासं निवसन्ति तत्रापि सार्धपुरुषे जलं भवति॥९६॥

जहाँ भूमि पैर से दबाने पर दब जाय वह जांगल भूमि हो या बहूदक वहाँ १½ पुरुष नीचे जल होता है। जहाँ कीड़े बिना घर के निवास करें, वहाँ भी १½ पुरुष नीचे जल होता है॥९६॥

---

१. सारस्वतमते—
एकवर्णा मही यत्र वृक्षगुल्मतृणादिभिः।
वल्मीकैश्चापि रहिता तस्यां तत्र विपर्ययः॥
पञ्चभिः पुरुषैस्तत्र जलं भूमावधः स्थितम्।

उष्णा शीता च मही शीतोष्णाम्भस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः।
इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात्॥९७॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र भूमिरुष्णा क्वचित् क्वचिच्च शीतला अथवा सर्वत्र शीतला एकस्मिन् भागे ऊष्णा तत्र सार्धपुरुषत्रये जलं भवति। इन्द्रचाप मत्स्यः वल्मीको वा दृश्यते चेत् तत्रापि पुरुषचतुष्टये जलं लभ्यते॥९७॥

जहाँ भूमि उष्णा हो किन्तु उसी के एक ओर शीतल हो, अथवा सर्वत्र शीतल हो किसी एक भाग में उष्णा हो तो वहाँ ३-१/२ पुरुष नीचे जल होता है। अथवा जांगल और आनूप देश में जहाँ पर इन्द्रधनुषाकार या मछली के आकार की भूमि हो या जहाँ वल्मीक हो वहाँ ४ पुरुष नीचे जल होता है॥९७॥

वल्मीकानां पङ्क्त्या यद्येकोभ्युच्छ्रितः शिरा तदधः।
शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राम्भः॥९८॥

संस्कृतभावार्थः—वल्मीकश्रेण्यां क्वचित् वल्मीकः उन्नतश्चेत् तदधः पुरुषचतुष्टये शिरा भवति, यत्र सस्यं स्वयं शुष्यति न च रोहति तत्रापि पुरुषचतुष्टये जलं भवति॥९८॥

जहाँ वल्मीकों की कतार हो और एक वल्मीक अधिक ऊँचा हो तो उस ऊँचे वल्मीक के नीचे ४ हाथ पर शिरा होती है। अथवा जहाँ अन्न अपने से सूख जाते हों या बीज न उगें, वहाँ भी ४ हाथ नीचे जल होता है[१]॥९८॥

न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः।
वटपिप्पलसमवाये तद्वद् वाच्यं शिरा चोदक्॥९९॥

संस्कृतभावार्थः—वटपलाशोदुम्बरेषु सम्पृक्तेषु हस्तत्रये एव नीचैः जलं भवति। तत्र उत्तरशिरा वहति। यत्र वटाश्वतयोः सम्पर्कस्तत्रापि हस्तत्रये जलं भवति॥९९॥

बरगद, पलाश, गूलर—ये वृक्ष जहाँ एक साथ हों, वहाँ पर ३ हाथ नीचे जल होता है। वहाँ उत्तर शिरा बहती है और जहाँ बरगद, पीपल के पेड़ उगे हों वहाँ भी ३ हाथ पर जल होता है[२]॥९९॥

---

१. मनुमते—
वल्मीकपङ्क्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितस्तदधोजलम्।
न रोहते शुष्यते वा यत्र सस्यं चतुष्करात्॥
जलं तत्रैव निर्देश्यं भूमौ निःसंशयं तदा।

२. सारस्वतमते—
पलाशोदुम्बरौ यत्र स्यातां न्यग्रोधसंयुतौ।
वटपिप्पलकौ वाथ समेतौ तदधो जलम्॥
करैस्त्रिभिरुदक् चाम्भः शिरां शुभजलां वदेत्।

दिग्विभागेन कूपलक्षणम्

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवेत् कूपः ।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः ॥१००॥
नैर्ऋत्यकोणे बालक्षयं च वनिताभयं च वायव्ये ।
दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः ॥१०१॥

संस्कृतभावार्थः—ग्रामस्य नगरस्य वा अग्निकोणे कूपश्चेत् तद्भयदायकं भवति। स कूपः प्रतिदिनं सन्तापदो भवति। यदि ग्राह्मनगरयोः नैर्ऋत्यकोणे कूपः तदा बालानां भयं भवति। वायव्ये चेत् कूपः स्त्रीविनाशः स्यात् अतः इमाः विदिशस्तिस्रः विहाय अन्यस्यां विदिशि चतुर्दिक्षु वा कूपः शुभाय भवति।।१००-१०१।।

दिशा के अनुसार कूप का फल—ग्राम अथवा नगर के अग्निकोण में यदि कूप हो तो वहा सदा भयदायक होता है। वह कूप सबके लिये प्रतिदिन सन्तापदायक होता है। यदि ग्राम अथवा नगर के नैर्ऋत्यकोण में कूप हो तो बालकों का क्षय करता है। वायव्य कोण में कूप हो तो स्त्रियों का विनाश करता है। अतः उक्त तीन विदिशाओं को छोड़कर शेष एक विदिशा ४ दिशाओं में कूप खुदवाना चाहिये। ये सुखद होते हैं।

मनुप्रोक्तं दकार्गलम्

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत् कृतं तदवलोक्य ।
आर्याभिः कृतमेतद् वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥१०२॥

संस्कृतभावार्थः—वराहमिहिराचार्येण सारस्वतमुनिमतेन दकार्गलं कथितम्, इतः परं मनुकृतं दकार्गलं विविधवृत्तेषु वर्णयामि।।१०२।।

मनु के अनुसार दकार्गल—आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि यह मैंने जो दकार्गल (जलाशय-प्रकरण) कहा है, यह सारस्वत मुनि का मत था। इसके आगे अब मनुकृत दकार्गल का विविध छन्दों में वर्णन करता हूँ।।१०२।।

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्ल्यो
निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति ।
पद्मेक्षुरोशीरकुलाः सगुण्ड्राः काशाः
कुशा वा नलिका नलो वा ॥१०३॥
खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः
क्षीरान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः ।
छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः
स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः ॥१०४॥
विभीतको वा मदयन्तिका वा
यत्रास्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः ।

स्यात् पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्य-
स्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥१०५॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र वृक्षपत्राणि लतागुल्मादयः स्निग्धाः अच्छिद्रा भवन्ति ततः पुरुषत्रये शिरा भवति। यत्र च पद्मेक्षुः गुण्ड्रसहिताः भवन्ति अथवा कुशकाशनलाः खर्जूरजम्बूवेतसार्जुनवृक्षैः सह भवन्ति अथवा यत्र क्षीरी लतागुल्मादिभिरन्वितो भवति अथवा छत्रनागकेसरौ कमलनीपकरञ्जसिन्दुवाराः सह भवन्ति अथवा विभीतकमदयन्तिके सह भवतः तत्रापि पुरुषत्रये जलं भवति। पर्वतस्योपरि पर्वते तन्मूलतः पुरुषत्रये जलं लभ्यते।

जिस भूमि के वृक्षों, गुल्मों, लताओं के पत्र आदि चिकने तथा छिद्ररहित हों उस स्थान में ३ पुरुष नीचे शिरा रहती है। अथवा जहाँ पर स्थल कमल, गोखरू, खस—ये वनौषधियाँ, गुन्दसहित हों, या कुश, काश, नरकट—ये तृण एवं खजूर, जामुन, अर्जुन, वेतस—ये वृक्ष हों या क्षीरी वृक्ष हों या एक जड़ वाले गुल्म-लता हों या छत्र, हस्तिकर्ण (नागकेसर) हों या कमल, नीप, करंज, सिन्दुवारवृक्ष हों या बहेड़ा, मैनफल हों, वहाँ भी ३ पुरुष नीचे जल होता है। और जहाँ पर्वत के ऊपर पर्वत रहता है, वहाँ दूसरे पर्वत के मूल से ३ पुरुष नीचे जल होता है[1]।।१०३-१०५।।

या मौञ्जिकैः काशकुशैश्च युक्ता
नीला च मृद्यत्र सशर्करा च ।
तस्यां प्रभूतं सुरसं च तोयं
कृष्णाऽथवा यत्र च रक्तमृद् वा ॥१०६॥

संस्कृतभावार्थः—मुञ्जकुशकाशयुक्ता नीलमृत्स्ना ससिकता भूमिः यत्र तत्र स्वादु जलं भवति। यस्याः मृत् कृष्णा रक्ता वा तत्रापि स्वादु जलं भवति।।१०६।।

जो भूमि मूँज, काश, कुश से युक्त हो, जिस पर नीली मिट्टी तथा बालू दिखायी देती हो, उस भूमि के नीचे मीठा जल होता है। जिस भूमि की मिट्टी काली या लाल रंग की हो, वहाँ भी सुस्वादु जल निकलता है।।१०६।।

१. सारस्वतमते—
गुल्मपादपवल्ल्यः स्यु पत्रैश्चाखण्डितैर्युताः।
तदधो विद्यते वारि खाते तु पुरुषत्रये।
पद्मेक्षुरोशीरकुला गुन्द्राः काशः कुशोऽथवा।
नलिकानलखर्जूरजम्बूवेतसकार्जुनाः।।
यत्र स्युर्द्रुमवल्ल्यश्च क्षीरयुक्ताः फलान्विताः।
छत्रेभनागनापश्च शतपत्रविभीतकाः।।
सिन्दुवारा नक्तमालाः सुगन्धा मदयन्तिकाः।
यत्रैते स्युस्तत्र जलं खातेऽम्भः पुरुषत्रये।
गिरेरुपरि यत्रान्यः पर्वतः स्यात्ततो जलम्।
तस्यैव मूले पुरुषैस्त्रिभिर्वाऽधो विनिर्दिशेत्।।

भूमिगुणवर्णनम्

सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मृष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥१०७॥

संस्कृतभावार्थः—ससिकतायां ताम्रायामपि भूमौ कषायजलं भवति। कपिलायां सक्षारं नीलायां स्वादु श्वेतायां लवणयुक्तश्च जलं भवति।।१०७।।

भूमि के गुणों से जल का विचार—जो भूमि बालूयुक्त तथा ताम्रवर्ण की हो वहाँ कषाय स्वादयुक्त जल होता है। कपिल वर्ण की भूमि में खारा जल और नीलवर्ण की भूमि में मीठा जल होता है।।१०७।।

शाकाश्वकर्णार्जुनविल्वसर्जाः श्रीपर्ण्यरिष्टाधवशिंशपाश्च।
छिद्रैश्च पत्रैर्द्रुमगुल्मवल्ल्यो रूक्षाश्च दूरेऽम्बु निवेदयन्ति ॥१०८॥

संस्कृतभावार्थः—शाकाश्वकर्णार्जुनबिल्वसर्जश्रीपर्णीनिम्बधवशिंशपावृक्षाः यत्र सच्छिद्रपत्रलतागुल्मसहिता दृश्यन्ते तत्र नीचैस्तरां जलं भवति।।१०८।।

शाक, अश्वकर्ण, अर्जुन, बेल, सर्जरस, श्रीपर्णी, नीम, धव, शीशम—ये वृक्ष जहाँ छेद वाले, पत्ते, द्रुम, गुल्म और वल्ली सहित हों, वहाँ बहुत नीचे जल रहता है।।१०८।।

सूर्याग्निभस्मोष्ट्रखराऽनुवर्णा या
निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा।
रक्ताङ्कुराः क्षीरयुताः करीरा
रक्ता धरा चेज्जलमश्मनोऽधः ॥१०९॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यान्युष्ट्रगर्दभवर्णा भूमिः निर्जला भवति, करीरवृक्षः रक्तांकुरयुक्तः क्षीरा चेत् भूमिश्च रक्ता चेत् तत्र पाषाणादधः जलं भवति।।१०९।।

जो भूमि सूर्य, अग्नि, भस्म, ऊँट, गधा के वर्ण की हो वह निर्जल होती है और जहाँ करीर वृक्ष लाल अंकुरों तथा दूध से युक्त हों, वहाँ की भूमि यदि लाल रंग की हो तो वहाँ पत्थर के नीचे जल होता है।।१०९।।

वैदूर्यमुद्गाम्बुदमेचकाभा पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा।
भृङ्गाञ्जनाभा कपिलाथवा या ज्ञेया शिला भूरिसमीपतोया ॥११०॥

संस्कृतभावार्थः—वैदूर्यमुद्गमेघकृष्णपाषाणां पक्वेन्दुम्बरवर्णानां, अञ्जनवर्णानां कपिलानां च पाषाणानां समीपे बहुजलं भवति।।११०।।

जो पत्थर वैदूर्य मणि तथा मूँगे के सदृश मेघ के समान काला हो, जो पत्थर पके गूलर के समान हो, जो पत्थर टुकड़ा करने पर सुरमा के सदृश हो और जो कपिल वर्ण का हो उसके समीप में बहुत जल होता है।।११०।।

पारावतक्षौद्रघृतोपमा या क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा।
या सोमवल्ल्याश्च समानरूपा साप्यासु तोयं कुरुतेऽक्षयं च ॥१११॥

संस्कृतभावार्थः—कपोतमधुघृतवर्णानां सोमलतासदृशां अश्मनां समीपे शीघ्रमेव बहुजलं लभ्यते।।१११।।

जो पत्थर कबूतर, शहद, घी के रंग का हो अथवा जो सोमलता के सदृश हो, वहाँ शीघ्र ही पर्याप्त जल निकलता है।।१११।।

ताम्रैः समेता पृषतैर्विचित्रैरापाण्डुभस्मोष्ट्रखराऽनुरूपा।
भृङ्गोपमाङ्गुष्ठिकपुष्पिका का सूर्याग्निवर्णा च शिला वितोया ॥११२॥

संस्कृतभावार्थः—ताम्रबिन्दुयुक्ताः नानावर्णचिह्निताः पीतवर्णाः उष्ट्रगर्दभवर्णाः भृङ्गवर्णाः अङ्गुष्ठिकासूर्याग्निवर्णाश्च पाषाणा यत्र तत्र जलं भवति।।११२।।

जो पत्थर ताम्रवर्ण के बिन्दुओं से अथवा नाना वर्ण के लक्षणों से चिह्नित हो या जिसका पीला वर्ण, ऊँट या गधा के सदृश वर्ण वाला हो या भौंरे के रंग का या अंगुष्ठिका के फूल जैसा या सूर्य, अग्नि के वर्ण जैसा हो उसके नीचे जल प्राप्त होता है।।११२।।

चन्द्रातपस्फटिकमौक्तिकहेमरूपा
याश्चन्द्रनीलमणिहिङ्गुलकाञ्चनाभाः।
सूर्योदयांशुहरितालनिभाश्च याः स्यु-
स्ताः शोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत् ॥११३॥

संस्कृतभावार्थः—स्फटिकमुक्तासुवर्णमहेन्द्रनीलहिङ्गलाञ्जनसूर्यहरितालवर्णाश्मसु समीपस्थेषु जलं भवति इति मुनिवचनम्।।११३।।

जो पत्थर, स्फटिक, मोती, सुवर्ण, इन्द्रनील, हिंगुल, अञ्जन अथवा सूर्य की कान्ति के समान अथवा हरिताल सदृश हो, ये सभी उत्तम होते हैं। अर्थात् इनके समीप जल की प्राप्ति होती है, यह मुनिवचन है।।११३।।

एता ह्यभेद्याश्च शिलाः शिवाश्च यक्षैश्च नागैश्च सदाभिजुष्टाः।
येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृष्टिर्न भवेत् कदाचित् ॥११४॥

संस्कृतभावार्थः—उक्ताः शिलाः अभेद्याः कल्याणकारिण्यः यक्षनागादिसेविता भवन्ति। इमाः यस्य राज्ञो देशे भवन्ति तत्र जलस्य वर्षस्य वाऽभावो न भवति।।११४।।

पूर्वोक्त श्लोक में कहीं गयी शिलायें तोड़ने योग्य नहीं होती हैं। ये कल्याणकारक होती हैं। यक्ष, नागों द्वारा ये सेवित होती हैं। ये शिलायें जिस राजा के राज्य में होती हैं, वहाँ कभी अवृष्टि (वर्षा का अभाव) नहीं होती है।।११४।।

रामदैवज्ञमते कूपदिग्विभागः

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाश-
स्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशा मृतिश्च
सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥११५॥

संस्कृतभावार्थः—वास्तुपुरुषस्य मध्ये कूपश्चेत् धननाशः, ऐशान्यां पुष्टिः, पूर्वस्मिन् ऐश्वर्यवृद्धिः, आग्नेय्यां पुत्रनाशः, दक्षिणे स्त्रीनाशः, नैर्ऋत्यां मृत्युः, पश्चिमे सम्पत्तिः, वायुकोणे शत्रुपीडा, उत्तरदिशि सुखलाभश्च भवति।।११५।।

रामदैवज्ञ के मत से कूप का विचार—वास्तु के मध्यभाग में कुआँ हो तो धननाश, ईशान कोण में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य-वृद्धि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण में स्त्रीनाश, नैर्ऋत्य में मृत्यु, पश्चिम में सम्पत्ति, वायव्य कोण में शत्रुपीड़ा और उत्तर में सुख होता है।।११५।।

कूपेऽर्कभान्मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः
स्वादूदकं पूर्वदिशि त्रिभिस्त्रिभिः ।
स्वल्पं जलं स्वादुजलं जलक्षयं
स्वादूदकं क्षारजलं च मिश्रितम् ॥११६॥

संस्कृतभावार्थः—कूपारम्भ कूपचक्रं निर्मातव्यम्। सूर्यनक्षत्रान्नक्षत्रत्रयं कूपमध्ये भवन्ति। येषु कूपारम्भे मधुरं जलं भवति। ततश्च नक्षत्रत्रये अल्पं जलं ततश्च नक्षत्रत्रये स्वादुजलं ततः नक्षत्रत्रये पश्चिमदिशि सक्षारं जलं ततः नक्षत्रत्रये वायव्यकोणे उत्तमजलं ततः नक्षत्रत्रये उत्तरदिशि मधुरं जलं ततः नक्षत्रत्रये ऐशान्यां क्षारजलं प्राप्यते इति पूर्वाचार्यमतम्।

कूपनिर्माण प्रारम्भ करते समय कूपचक्र बनाना चाहिये। यथा—सूर्यनक्षत्र से ३ नक्षत्र कुएँ के मध्यभाग में इनमें कूपारम्भ से स्वादिष्ट जल, ३ नक्षत्र पूर्व में थोड़ा जल, ३ नक्षत्र अग्निकोण में स्वादुजल, ३ दक्षिण में जलनाश, ३ नक्षत्र नैर्ऋत्यकोण में स्वादु जल, ३ नक्षत्र पश्चिम में क्षारजल, ३ वायव्यकोण में उत्तम जल, ३ नक्षत्र उत्तर में मधुरजल, ३ नक्षत्र ईशानकोण में क्षारजल होता है, यह पूर्वाचार्यों का मत है[1]।।११६।।

1. **वसिष्ठमते**—
ऐश्वर्यपुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत् ।
संपच्छत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्रागादितः क्रमात्।।
कूपे कृते मध्यमे तु धनहानिश्च वास्तुनः।
तस्मात्सम्यग्विचार्यैवं कूपं कुर्याच्च बुद्धिमान्।।
कूपेऽर्कभात्क्रमान्मध्यभागतस्त्रिस्त्रिभानि च।
शुभाशुभानि चोक्तानि ब्राह्मात्कैश्चिदीरितम्।।
'ब्राह्मभात् कैश्चिदीरितम्' रोहिणी नक्षत्र से भी कूपचक्र का विचार लिखा है।

सूर्यभात् कूपचक्रम्

दिशा	न०	फलानि
मध्ये	३	स्वादुजलम्
पूर्वे	३	निर्जलम्
आग्नेये	३	आशुजलम्
दक्षिणे	३	निर्जलम्
नैर्ऋत्ये	३	अमृतजलम्
पश्चिमे	३	निर्जलम्
वायव्ये	३	जलहानिः
उत्तरे	३	मधुरजलम्
ईशाने	३	क्षारजलम्

ज्योतिःप्रकाशोक्तकूपचक्रम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कूपचक्रं वरानने ।
रोहिण्यादिलिखेच्चक्रं मध्ये त्रयप्रतिष्ठितम् ॥११७॥
पूर्वादिदिक्षु सर्वासु त्रित्रिमार्गेण दीयते ।
मध्ये शीघ्रजलं स्वादु पूर्वे भूमिश्च खण्डिता ॥११८॥
आग्नेय्यां सुजलं प्रोक्तं दक्षिणे निर्जलं तथा ।
नैर्ऋत्ये चामृतं वारि पश्चिमे शोभनं जलम् ॥११९॥
वायव्येऽपि जलं हन्ति चोत्तरे स्वादुकं जलम् ।
ईशान्ये कटुकं क्षारमल्पतीक्ष्णस्य संभवम् ॥१२०॥

संस्कृतभावार्थः—इदानीं कूपचक्रमुच्यते। रोहिणीतः दिननक्षत्रपर्यन्तं गणने प्रथमानि त्रीणि नक्षत्राणि मध्ये भवति, तत्र स्वादुजलं भवति। पूर्वभागे नक्षत्रत्रये जलं न भवति, आग्नेय्यां नक्षत्रत्रये स्वच्छं जलं भवति। दक्षिणे नक्षत्रत्रये जलं न भवति। नैर्ऋत्यदिशि नक्षत्रत्रये अमृतोपमं जलं भवति। पश्चिमे नक्षत्रत्रये स्वच्छजलं भवति। वायुकोणे नक्षत्रत्रये जलं न भवति। उत्तरे नक्षत्रत्रये मधुरं जलं भवति, ऐशान्यां नक्षत्रत्रये सक्षारं जलं भवति।

ज्योतिःप्रकाश के अनुसार कूपचक्रम्—अब कूपचक्र का वर्णन करता हूँ। रोहिणी नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिने, प्रथम ३ नक्षत्र मध्य में ३-३ पूर्व आदि आठ दिशा-विदिशाओं में रखें। क्रमशः फल ३ स्वादु जल, ३ खंडित जल, ३ सुजल, ३ निर्जल, ३ अमृत जल, ३ शोभन जल, ३ जलहानि, ३ स्वादु जल, ३ कटु-क्षार अल्प एवं तीक्ष्ण जल होता है।।११७-१२०।।

रोहिणीनक्षत्रात् कूपचक्रम्

दिशा	न०	फलानि
मध्ये	३	स्वादुजलम्
पूर्वे	३	खण्डितजलम्
आग्नेये	३	स्वादुजलम्
दक्षिणे	३	जलहानि:
नैर्ऋत्ये	३	स्वादुजलम्
पश्चिमे	३	क्षारजलम्
वायव्ये	३	शीतलजलम्
उत्तरे	३	मिष्टजलम्
ईशाने	३	क्षारजलम्

भौमभात् कूपचक्रम्

शशिशराब्धित्रित्र्यब्धिगुणाब्धये वधजलेषु ससिद्धिरभङ्गदम्।
रुजमसिद्धियशाऽर्थप्रसिद्धये जलविभंगकरं कुजभादिषु॥१२१॥

संस्कृतभावार्थ:—कूपचक्रे मङ्गलनक्षत्राद्गणने प्रथमनक्षत्रात्प्राप्तजलात् मृत्युभयम्, तत: पञ्चसु नक्षत्रेषु सिद्धि:, तत: चतुर्षु भेषु विवादाभाव:, तत: त्रिषु रोग:, तत: त्रिषु कार्यहानि:, तत: चतुर्षु यश:, तत: त्रिषु धनप्रसिद्धिप्राप्ति: तथा च तत: अन्तिमेषु नक्षत्रेषु जलहानिर्भवति।

मङ्गल के नक्षत्र से कूपचक्र—कूपचक्र में मङ्गल के नक्षत्र से गिनें—१ नक्षत्र में प्राप्त जल से वध, ५ नक्षत्र में सिद्धि, ४ नक्षत्र में अभङ्ग, ३ नक्षत्र में रोग, ३ नक्षत्र में असिद्धि, ४ नक्षत्र में यश, ३ नक्षत्र में अर्थप्रसिद्धि, ४ नक्षत्र में जलहानि होती है।।१२१।।

भौमभात् कूपचक्रम्

न०	१	५	४	३	३	४	३	४
फलानि	जले वधभयम्	सिद्धि:	अभङ्ग:	रोग:	असिद्धि:	यश:	अथ प्रसिद्धि	जलभङ्ग:

मुहूर्तकल्पद्रुमोक्तकूपचक्रम्

राहुभाच्च त्रयं पूर्वे त्रयमाग्नेयत: स्यात्।
मध्ये चत्वारि ऋक्षान्ते फलं वाच्यं शुभाशुभम्॥१२२॥

राहुभात् कूपचक्रम्

दिशा	न०	फलानि
पूर्वे	३	शोक:
आग्नेये	३	जललाभ:
दक्षिणे	३	स्वामिमरणम्
नैर्ऋत्ये	३	दु:खम्
पश्चिमे	३	सुखसौभाग्यम्
वायव्ये	३	जलवृद्धि:
उत्तरे	३	निर्जलम्
ईशाने	३	जलसिद्धि:
मध्ये	४	सजलम्

पूर्वे शोककरं राहुराग्नेय्यां जलदं सदा।
दक्षिणे स्वामिमरणं नैर्ऋत्यां दु:खदायकम्॥१२३॥
पश्चिमे सुखसौभाग्यं वायव्ये जलवर्द्धनम्।
उत्तरे निर्जलं विद्यादीश्वरे जलसिद्धिदम्॥१२४॥
मध्ये च सजलं वाच्यं नान्यथा रुद्रभाषितम्।
स्वयं रूपी सदा राहु: पाल्यते तत्क्षणे भुवि॥१२५॥

संस्कृतभावार्थ:—शिववचनानुसारं कूपचक्रे राहुनक्षत्राद्गणिते पूर्वस्मिन् नक्षत्रत्रये शोक:, अग्निकोणे त्रिषु भेषु जललाभ:, दक्षिणत: त्रिषु स्वामिमृत्यु:, नैर्ऋत्यां त्रिषु दु:खप्राप्ति:, पश्चिमे त्रिषु सुखसौभाग्यलाभ:, वायुकोणे त्रिषु जलवृद्धि:, उत्तरे त्रिषु जलाभाव:, ऐशान्यां त्रिषु जललाभ: मध्ये च चतुर्षु भेषु जलप्राप्तिर्भवति।।१२२-१२५।।

मुहूर्तकल्पद्रुम के अनुसार कूपचक्र—कूपचक्र में राहु के नक्षत्र से गिनें—३ नक्षत्र में ३-३ अग्निकोण आदि सभी दिशा-विदिशाओं में और ४ नक्षत्र मध्य में देकर शुभाशुभ फल कहें।

पूर्व के नक्षत्रों में कूपारम्भ करने से शोक, अग्निकोण में जल, दक्षिण में गृहपति की मृत्यु, नैर्ऋत्यकोण में दु:ख, पश्चिम में सुख-सौभाग्य, वायव्यकोण में जलवृद्धि, उत्तर में निर्जल, ईशानकोण में जलसिद्धि और मध्य में सजल—यह शिवजी का वचन है।।१२४-१२५।।

कूपमुहूर्ताः

हस्तात्तिस्रो वासवं वारुणश्च
मित्रं पित्र्यं त्रीणि चैवोत्तराणि ।
प्राजापत्यं चापि नक्षत्रमाहुः
कूपारम्भे श्रेष्ठ्यमाद्यैर्मुनीन्द्रैः ॥१२६॥

संस्कृतभावार्थः—हस्तचित्रास्वातीधनिष्ठाशतभिषगनुराधामघोत्तरफाल्गुन्युत्तराषाढ़ोत्तर-भाद्रपदारोहिणीनक्षत्रेषु कूपारम्भः शुभाय भवतीति मुनीनां मतम्।।१२६।।

कूपारम्भ के मुहूर्त—हस्त, चित्रा, स्वाति, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, मघा, तीनों उत्तरा और रोहिणी—ये नक्षत्र कूपारम्भ के लिये मुनिसम्मत हैं।।१२६।।

ब्रह्मयामलोक्तं तडागचक्रम्

तडागचक्रं वक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले ।
सूर्यभाच्चन्द्रभं यावद् गणयेत्सततं बुधैः ॥१२७॥
दिक्षु ऋक्षद्वयं न्यस्य मध्ये पञ्च नियोजयेत् ।
षड्ऋक्षे वारिवाहे च फलं तत्र विचारयेत् ॥१२८॥
पूर्वे तु बहुशोकं स्यादाग्नेय्यां च जलं बहु ।
दक्षिणे वारिनाशं च नैर्ऋत्यां चामृतं जलम् ॥१२९॥
पश्चिमे च जलं स्वादु वायव्ये वारिशोषणम् ।
उत्तरे च स्थिरं तोयमीशान्ये कुत्सितं जलम् ॥१३०॥

सूर्यनक्षत्रात् तडागचक्रम्

दिशा	न०	फलानि
पूर्वे	२	बहुशोकम्
आग्नेये	२	बहुजलम्
दक्षिणे	२	जलनाशम्
नैर्ऋत्ये	२	अमृतजलम्
पश्चिमे	२	स्वादुजलम्
वायव्ये	२	जलशोषणम्
उत्तरे	२	स्थिरजलम्
ईशाने	२	कुत्सितजलम्
मध्ये	५	शीघ्रजलम्
वारिवाहे	६	जलस्यातिपूर्णता

मध्ये छिद्रजलं याति वारिवाहेति पूर्णता ।
एवं तडागचकस्य फलं ज्ञेयं मनीषिभिः ॥१३१॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यनक्षत्रात् चन्द्रनक्षत्रपर्यन्तं गणने द्वे नक्षत्रे अष्टसु विदिक्षु पञ्च नक्षत्राणि मध्ये षट् वारिवाहे संस्थाप्य फलं विचारयेत्। एतत्फलं चक्रानुसारं पश्येत्।

ब्रह्मयामल के अनुसार तड़ागचक्र—ब्रह्मयामलोक्त तडागचक्र का वर्णन करता हूँ—सूर्यनक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र तक गिनें २-२ नक्षत्र आठों दिशा-विदिशाओं में, ५ नक्षत्र मध्य में, ६ नक्षत्र वारिवाह मे स्थापित करके फल का विचार करना चाहिये, शेष चक्र में देखें।।१२७-१३१।।

ध्रुवं वसु जलं पुष्यं नैर्ऋतं मैत्रसंज्ञकम् ।
नक्षत्रं शुभदं ज्ञेयं तडागे सर्वदा बुधैः ॥१३२॥

संस्कृतभावार्थः—उत्तरासु तिसृषु रोहिण्यां धनिष्ठायां पूर्वाषाढ़ायां पुष्ये मूले मृगशिरसि रेवत्यां चित्रायामनुराधायां च तड़ागः निर्मातव्यः तेन शुभं भवति।।१३२।।

तड़ागमुहूर्त-विचार—तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढ़ा पुष्य, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, नक्षत्रों में तालाब का निर्माण शुभ होता है।।१३२२७-२७-२७-।।

वापीमुहूर्तविचारः

स्वात्यश्विपुष्यहस्तेषु मैत्रे चैव पुनर्वसौ ।
रेवत्यां वारुणे चैव वापीकार्यं प्रशस्यते ॥१३३॥

संस्कृतभावार्थः—स्वात्यश्विनीपुष्यहस्तानुराधापुनर्वसुरेवतीशतभिषक्षु वाप्यारम्भः मङ्गलाय भवति।।१३३।।

बावड़ी (वापी) बनाने का मुहूर्त—स्वाती, अश्विनी, पुष्य, हस्त, अनुराधा, पुर्नवसु, रेवती, शतभिषा नक्षत्रों में बावड़ी का निर्माण शुभ होता है।

निर्वारचक्रम्

निवरि पूर्वतस्त्रीणि त्रीणि च सर्वतः ।
मध्ये चत्वारि देयाति राहुभाच्चन्द्रभं बुधैः ॥१३४॥

संस्कृतभावार्थः—राहुनक्षत्रात् चन्द्रनक्षत्रपर्यन्तं गणने पूर्वादिदिक्षु प्रतिदिशं नक्षत्रत्रयं मध्ये नक्षत्रचतुष्टयं स्थापयित्वा चक्रं निर्मातव्यम्। फलं यथाचक्रं वक्तव्यम्।।१३४।।

निर्वार (जमवट) का बनाने का मुहूर्त व फल—निर्वार (जमवट) चक्र में राहु के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनकर पूर्व आदि दिशाओं में ३-३ नक्षत्र और मध्य में ४ नक्षत्र रखें।।१३४।।

राहुभात् निर्वारचक्रम्

दिशा	पूर्वे	आग्नेये	दक्षिणे	नैर्ऋत्ये	पश्चिमे	वायव्ये	उत्तरे	ईशाने	मध्ये
न०	३	३	३	३	३	३	३	३	४
फलानि	सौख्यम्	बहु-भयम्	दुःखम्	दुःखम्	बहु भयम्	बहु भयम्	धन-वृद्धिः	बहु-भयम्	सौख्यम्

मध्ये पूर्वे जलं सौख्यं चोत्तरे धनवर्द्धनम् ।
याम्यनैर्ऋत्ययोर्दुःखं भयं बहुपरेऽन्यदिक् ॥१३५॥

संस्कृतभावार्थः—मध्यनक्षत्रैः जललाभः, पूर्वनक्षत्रैः सुखं, उत्तरभैः धनं, दक्षिणगैः दुःखं, निर्ऋतिकोणगैः दुःखम् अन्यदिग्भवैः भयमनुभूयते।।१३५।।

निर्वारचक्र का क्रमशः फल—मध्य में जल, पूर्व में सुख, उत्तर में धनवृद्धि, दक्षिण में दुःख, नैर्ऋत्यकोण में कष्ट, शेष दिशाओं में भय होता है।।१३५।।

वापीकूपाद्यारम्भः

चित्रा स्वातिपुनर्वसू मृगशिरो मूलाश्विनीरोहिणी-
हस्ताः पुष्यधनिष्ठकं शतभिषक् मित्रोत्तरारेवती ॥१३६॥
एतेषु श्रवणान्वितेषु मकरे लग्ने च कुम्भे झषे
वापीकूपजलाशयादिखननं शस्तं प्रशस्ते दिने ॥१३७॥

संस्कृतभावार्थः—चित्रास्वातीपुनर्वसुमृगशिरोमूलाश्विनीरोहिणीहस्तपुष्यधनिष्ठाशतभिषगनुराधासु तिसृषूत्तरासु रेवत्याञ्च श्रवणयुजि मकरकुम्भमीनलग्नेषु शुभदिने वापीकूपतड़ागादिनिर्माणेन मङ्गलं भवति।।१३६-१३७।।

वापी, कूप तथा तालाब-निर्माण का मुहूर्त—चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, मूल, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रेवती—ये नक्षत्र यदि श्रवण के साथ हों; मकर, कुम्भ, मीन, लग्न में शुभ दिन होने से बावड़ी, कुआँ तथा तालाब आदि का निर्माण शुभ होता है।।१३६-१३७।।

शुभनक्षत्राणि

रेवती रोहिणी मैत्रपूर्वाषाढोत्तरात्रये ।
सौम्यवारुणपुष्येषु तोयारम्भः शुभावहः ॥१३८॥

संस्कृतभावार्थः—रेवती-रोहिणी-अनुराधा-पूर्वाषाढोत्तराषाढोत्तरफाल्गुन्युत्तरभाद्रपदा-मृगशिरशतभिषक्पुष्यभेषु वापीकूपतड़ागादिनिर्माणं मङ्गलाय भवति।।१३८।।

वापी, कूप तथा तालाब के निर्माण में शुभ नक्षत्र—रेवती, रोहिणी, अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, शतभिषा, पुष्य—इन नक्षत्रों में वापी-कूपादि का आरम्भ करना चाहिये ।।१३८।।

सर्वतोयाश्रयारम्भः कर्तव्यो विबलैः खलैः ।
लग्नस्थे ज्ञेऽथवा जीवे लग्नभेऽब्जे सिते खगे ॥१३९॥
ध्रुववासवयुग्मार्कपुष्यमैत्रमघासु च ।
वापीकूपतडागादि वारिबन्धनमोक्षणम् ॥१४०॥

संस्कृतभावार्थः—पापग्रहेषु दुर्बलेषु सर्वविद्यास्तटाकाः आरब्धव्याः, लग्नस्थे बुधे गुरौ च अथवा लग्नस्थे चन्द्रे दशमगे शुक्रे, तिसृषूत्तरासु रोहिणीधनिष्ठाशतभिषग्हस्तपुष्य-मृगशिरोरेवतीचित्रानुराधामघानक्षत्रेषु वाप्यादिनिर्माणं वारिबन्धमोक्षणं च शुभाय कल्पते।

पापग्रहों के निर्बल होने पर सभी प्रकार के जलाशयों का प्रारम्भ करना चाहिये, लग्न में बुध अथवा गुरु हो अथवा लग्न में चन्द्रमा और शुक्र दशम हों तो तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, पुष्य, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और मघा नक्षत्र हो तो बावड़ी, कुआँ, तालाब, वारिबन्ध मोक्षण (बँधे हुए जल को खोलना) शुभ होता है।।१३९-१४०।।

इति दकार्गलप्रकरणम्

•

अथ वृक्षायुर्वेदाध्यायः

बृहत्संहितायां वृक्षारोपणप्रयोजनम्

प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः ।
यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ॥१॥

संस्कृतभावार्थः—वृक्षलतागुल्मादिरहितस्य जलाशयस्य शोभा न भवति। अतः जलाशयेषु राजमार्गेषु चावश्यं वृक्षाः आरोपणीयाः।।१।।

वृक्ष आयुर्वेद—वृक्ष, लता, गुल्म आदि के बिना जलाशय शोभित नहीं होते, अतः जलाशयों, राजमार्गों के समीप वृक्षारोपण अवश्य करना चाहिये।।१।।

मृदुभूमेः प्राशस्त्यम्

मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत् ।
पुष्पितांस्तांश्च मृद्नीयात् कर्मैतत्प्रथमं भुवः ॥२॥

संस्कृतभावार्थः—मृद्वी भूमिः सर्वविधवृक्षारोपणाय हिता भवति। ईदृश्यां भुवि प्रथमतः तिलाः रोपणीयाः। ततः पुष्पोद्गमसमये तान् वृक्षात् तत्रैव समर्घमृदि मिश्रयेत्। अयं मृदः आद्यः संस्कारः।।२।।

ईंट, पत्थर, बालू आदि से रहित; अतएव मुलायम भूमि सभी प्रकार के वृक्षों को लगाने के लिये अच्छी होती है। ऐसी भूमि में सर्वप्रथम तिलों के लगाना चाहिये, जब इनमें फूल लगने लगें तो इनका वहीं मर्दन कर मिट्टी में मिला दें। यह भूमि का प्रथम संस्कार होता है।।२।।

प्रथमरोपणीयवृक्षाः

अरिष्टाऽशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः ।
माङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ॥३॥

संस्कृतभावार्थः—निम्बाशोकनागकेसरशिरीषप्रियङ्गवः अङ्गणे उद्याने वा प्रथमतो रोपणीयाः, एते हि माङ्गलिका भवन्ति।।३।।

सर्वप्रथम रोपण-हेतु योग्य वृक्ष—नीम, अशोक, नागकेसर, शिरीष, प्रियङ्गु—इन वृक्षों को घर के समीप अथवा बगीचे में सबसे पहले लगायें, क्योंकि ये मांगलिक वृक्ष होते हैं।।३।।

काण्डरोप्यवृक्षविधानम्

पनसाशोककदलीजम्बूलकुचदाडिमाः ।
द्राक्षापालीवताश्चैव बीजपूरातिमुक्तकाः ॥४॥
एते द्रुमाः काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः ।
मूलोच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीयाः परं ततः ॥५॥

संस्कृतभावार्थः—पनसाशोककदलीजम्बुलकुचदाडिमद्राक्षापालीवतबीजपूरातिमुक्ताः शाखायां गोमयलिप्ताः सन्तः काण्डत एव रोपणीयाः। अन्ये वृक्षाः समूलखातम् उत्खाय अन्यस्कन्धे वा रोपणीयाः। अयं विधिरेव कलमविधिः कथ्यते।

कटहल, अशोक, केला, जामुन, बड़हर, दाड़िम, मुनक्का (अंगूर), पालीवत, बिजौरा नीबू, अतिमुक्तक इन वृक्षों की शाखा को गोबर से लीप कर लगाना चाहिये। अन्य वृक्षों को जड़सहित उखाड़कर अथवा दूसरे की शाखा को दूसरे से जोड़कर लगाना चाहिये। इस प्रकार को कलम करना और ऐसे वृक्षों के फलों को कलमी फल कहते हैं।

विचारणीय—उक्त श्लोक में कदली=केला की शाखा को लगाने के लिये कहा गया है। जो सर्वथा असम्भव है, क्योंकि केला की शाखा होती ही नहीं, अतः निश्चय ही यहाँ कोई पाठभेद होगा।

कालानुसारि वृक्षाऽऽरोपणनियमाः

अजातशाखान् शिशिरे जातशाखान् हिमागमे ।
वर्षागमे च सुस्कन्धान् यथा दिक्स्थान् प्ररोपयेत् ॥६॥

संस्कृतभावार्थः—यस्मिन् वृक्षे लतांकुरादि न भवति तं शिशिरे, शाखाहीनं हेमन्ते, शाखिनं वर्षासु च रोपयेत्।।६।।

ऋतु अथवा मास के अनुसार वृक्षारोपण का समय—जिस वृक्ष में लता, अंकुर न हो उसको शिशिर (माघ-फाल्गुन) में, जिसमें शाखादि हों उनको हेमन्त (मार्गशीर्ष-पौष) में एवं बड़ी शाखाओं से युक्त वृक्षों को वर्षा (श्रावण-भाद्रपद) में लगाना चाहिये[1]।।६।।

१. काश्यपमते—
अजातशाखा ये वृक्षाः शिशिरे तांश्च रोपयेत्।
जातशाखाश्च हेमन्ते रोपणीया विधानतः।
सुस्कन्धाः शाखिनो ये तान् प्रावृट्काले तु रोपयेत्।।
घृतं क्षीरं तथा क्षौद्रमुशीरतितमोमयैः।
विडङ्गलेपनं मूलात् सङ्क्रामणविरोपणम्।।
अन्तरं विंशतिर्हस्ता वृक्षाणामुत्तमं स्मृतम्।
मध्यमं षोडशं ज्ञेयमधमं द्वादशं स्मृतम्।।

उत्खातप्रतिरोपणविधिः

घृतोशीरतिलक्षौद्रविडंगक्षीरगोमयैः ।
आमूलस्कन्धलिप्तानां संक्रामणविरोपणम् ॥७॥

संस्कृतभावार्थः—घृतोशीरतिलमधुगोमयक्षीरविडङ्गानां सम्मेल्य पेषणे लेपो भवति, तं लेपं उत्खातवृक्षेषु आमूलशाखं लेपयित्वा अन्यस्थाने संक्रमणं कर्तव्यम्।।७।।

वृक्षों के स्थान-परिवर्तन की विधि—अब एक स्थान से उखाड़कर दूसरे देश में ले जाकर लगाने की विधि का वर्णन किया जा रहा है। घी, खश, तिल-मधु, गाय का गोबर और दूध, वायविडंग—इन सब वस्तुओं को पीसकर लेप-सा बनाकर जड़ से लेकर प्रतिशाखा-पर्यन्त उखाड़े हुए पेड़ों से लेपन करके दूसरे स्थान में ले जाकर रोपण करना चाहिये।।७।।

वृक्षारोपणविचारः

शुचिर्भूत्वा तरोः पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनैः ।
रोपयेद् रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ॥८॥

संस्कृतभावार्थः—शुचिः सन् वृक्षं स्नानगन्धादिभिः सम्पूज्य अन्यत्र नयेत्, एवं करणे पूर्वपत्राण्यपि न शुष्यन्ति।।८।।

वृक्ष को सूखने से बचाने की विधि—स्वयं स्नान आदि कृत्य द्वारा पवित्र होकर वृक्ष का स्नान, गन्ध, अक्षत आदि से पूजन करके वृक्ष को लगायें; ऐसा करने से उखाड़ने से पहले वाले पत्र भी नहीं सूखते हैं।।८।।

रोपितवृक्षाणां सेचनविधिः

सायं प्रातश्च घर्मर्त्तौ शीतकाले दिनान्तरे ।
वर्षासु च भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः ॥९॥

संस्कृतभावार्थः—पुना रोपिताः वृक्षाः ग्रीष्मे सायं प्रातः, शीते मध्याह्ने, वर्षासु भुवः शोषे च सेक्तव्याः।।९।।

वृक्षों को सींचने का समय—उखाड़कर पुनः लगाये हुए वृक्षों को ग्रीष्म ऋतु में प्रातः-सायं दोनों समय, शीतकाल में दिन के मध्य में और वर्षा ऋतु में भूमि के सूखने पर अर्थात् जब वर्षा न हो तब सींचें।।९।।

आनूपदेशजवृक्षसेचनप्रकारः

जम्बूवेतसवानीरकदम्बोदुम्बरार्जुनाः ।
वीजपूरकमृद्वीकालकुचाश्च सदाडिमा ॥१०॥
वञ्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनसस्तथा ।
तिमिरोऽम्रातकश्चेति षोडशानूपजाः स्मृताः ॥११॥

संस्कृतभावार्थः—जम्बूवेतसवानीरकदम्बोदुम्बरार्जुनबीजासूरनिम्बुकद्राक्षादाडिमति-निशकरञ्जतिलकपनसतिमिराम्रातकाः अनूपदेशवृक्षाः, अतः एतेषामधिकसेचनमनावश्यकम्।

आनूप देश के वृक्षों की प्रकृति—जामुन, बेत, वानीर, कदम, गूलर, अर्जुन, विजौरा नीबू, मुनक्का, बड़हर, अनार, बेत, तिनिस, करञ्जुआ, तिलक, कटहल, तिमिर, आम्रातक, (आमड़ा)—ये सोलह आनूप देश के वृक्ष कहे जाते हैं। इनको अधिक सींचने की आवश्यकता नहीं होती है।।१०-११।।

वृक्षरोपणे मध्यान्तरविचारः

उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोडशान्तरम् ।
स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥१२॥

संस्कृतभावार्थः—वृक्षाद्वृक्षस्य विंशतिहस्तमितदूरता उत्तमा, षोड़शस्तु मध्यमा, द्वादशसु अधमा च भवति। इदं प्रमाणं महतां वृक्षाणाम्।।१२।।

वृक्षों के बीच में अन्तर का प्रमाण—एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की दूरी २० हाथ, यह उत्तम दूरी है, १६ हाथ की दूरी मध्यम है और १२ हाथ की दूरी अधम कही गयी है। यह प्रमाण बड़े वृक्षों का है।

तेषां फलम्

अभ्यासजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम् ।
मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः ॥१३॥

संस्कृतभावार्थः—निकटरोहिता वृक्षाः परस्परं मूलेन शाखाभिः छायाश्च अभिभवं प्राप्नुवन्तः सम्यक् फलानि न फलन्ति, अतः दूरता कार्या।।१३।।

वृक्षों की दूरी का कारण एवं फल—पास-पास में लगे हुए पेड़ एक-दूसरे को अपनी छाया से ढक देते हैं और इसी प्रकार नीचे जड़ें भी आपस में मिल जाने से अपना आहार भली-भाँति ग्रहण न कर सकने के कारण अच्छे फल नहीं दे सकते। अतएव उक्त विधि से इनकी दूरी की व्यवस्था की गयी है।।१३।।

वृक्षाणां रोगज्ञानप्रकारः

शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्त्रता ।
अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥१४॥

संस्कृतभावार्थः—शीतवातातपैः वृक्षे रोगो भवति, येन वृक्षाः पीताः भवन्ति, पत्राणि सम्यक् न रोहन्ति शाखाः शुष्यन्ति रसश्च स्रवते।।१४।।

वृक्षों में रोग के लक्षण—सर्दी, वायु, धूप, (लू लगना) के प्रभाव से वृक्षों में अनेक प्रकार के रोग (विकार) उत्पन्न हो जाते हैं; जिनके कारण पेड़ों का पीला पड़

जाना, किसलयों का ठीक प्रकार से विकास न होना, शाखाओं का सूखना और रस का स्राव होता है[१]।।१४।।

वृक्षाणां चिकित्साप्रकारः

चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम्।
विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥१५॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र भागे वृक्षः रोगग्रस्तः तं शस्त्रेण छित्वा विड़ङ्गघृतपङ्कलेपेन लेपयित्वा क्षीरेण जलेन च सेक्तव्यम्।।१५।।

वृक्षों की चिकित्सा का वर्णन—वृक्ष जिस अंग में आहत हों, उसको शस्त्र से काटकर वायविडंग, घी, कीचड़ इन सबको मिलाकर उस स्थान पर लेपकर उसको दूध तथा जल मिलाकर सींचना चाहिये।।१५।।

फलनाशचिकित्सावर्णनम्

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुदगैस्तिलैर्यवैः।
भृतशीतपयःसेकः फलपुष्पसमृद्धये ॥१६॥

संस्कृतभावार्थः—फलनाशे कुलत्थमाषमुद्गतिलयवानां भृतशीतपयसा क्वाथं कृत्वा फलसमृद्धये सेकः कार्यः।।१६।।

फल व फूल की वृद्धि-हेतु चिकित्सा—पेड़ों के जब फल झड़ जाते हों तो ऐसी स्थिति में कुलथी, उड़द, मूँग, तिल और जौ को मिलाकर इनका क्वाथ करें, शीतल होने पर उसमें दूध मिलाकर पेड़ को सींचें, ऐसा करने से फूल और फल की वृद्धि होती है।।१६।।

प्रयोगान्तरवर्णनम्

अविकाजशकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम्।
सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतलया सह ॥१७॥

१. काश्यपमते—

शाखाविटपपत्रैश्च छायया विहिताश्च ये।
येऽपि पर्णफलैर्हीना रूक्षाः पाण्डुरैः।।
शीतोष्णवर्षवाताद्यैर्मूलैर्व्यामिश्रितैरपि।
शाखिनां तु भवेद्रोगो द्विपानां लेखनेन च।।
चिकित्सितेषु कर्त्तव्या ये च भूयः पुनर्नवाः।
शोधयेत् प्रथमं शस्त्रैः प्रलेपं दापयेत्ततः।।
कर्दमेन विडङ्गैश्च घृतमिश्रैश्च लेपयेत्।
क्षीरतोयेन सेकः स्याद्रोहणं सर्वशाखिनाम्।।

सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः।
वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा ॥१८॥

संस्कृतभावार्थः—मेषाजशकृच्छ्चूर्णं सममात्रया आढकद्वयं तिलाढ़कं सक्तूप्रस्थं जलद्रोणः गोमांसतुला च सम्मिश्र्य सप्तरात्रोषितं कृत्वा एतेन सेचने लताफलादिवृद्धिः भवति। एकस्य वृक्षस्य कृते इदं प्रमाणं गोमांसमुपलक्षणम्। अन्यमांसमपि उपयोक्तुं शक्यम्।

मतान्तर से वृक्षचिकित्सा—भेड़ और बकरे की मेंगन १-१ आढक (३ से १६ तोला), तिल १ आढक, सत्तू १ प्रस्थ (६४ तोला), जल १ द्रोण (१२ सेर ६४ तोला), गोमांस १ तुला (५ सेर) इन सबको मिलाकर सात रात तक एक साथ रखे, इनके सेक करने से वल्ली, लता और फल की विशेष वृद्धि होती है। यह प्रमाण एक वृक्ष के लिये है, गोमांस मांस का उपलक्षणमात्र है, वैसे अन्य मांसों का भी उपयोग होता है[१]।।१७-१८।।

बीजवपनविधानम्

वासराणि दश दुग्धभावितं बीजमाज्ययुतहस्तयोजितम्।
गोमयेन बहुशो विरूक्षितं क्रोडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥१९॥
मांससूकरवसासमन्वितं रोपितं च परिकर्मितावनौ।
क्षीरसंयुतजलावसेचितं जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥२०॥

संस्कृतभावार्थः—घृताक्तहस्तयोजितं दशदिनानि दुग्धभावितं गोमयमर्दितं सूकरहरिण-मांसधूपितं तन्मांससहितं च बीजं भूमावुप्त्वा दुग्धेन जलेन च सेचने बीजं सम्यगंकुरितं फलपुष्पयुक्तं च भवति।।१९-२०।।

बीज बोने की विधि—जिस बीज को लगाना हो उसे हाथ में घी लगाकर मले, फिर १० दिन तक दूध में भिगो दे, फिर गोबर के साथ मर्दन करे, फिर सूकर और मृग के मांस की धूप दे फिर सूकर और मृग के मांस को मिलाकर भूमि पर रोपे। बाद में उसे दूध और जल से सींचे। ऐसा करने से बीज अंकुरित होकर उसमें फूल लगते हैं।

ग्रन्थान्तरे—

त्रियवं कृष्णलं विन्द्यान्माषलः पञ्चकृष्णलः।
ते स्युर्द्वादशलक्षाख्यं सुवर्णमथ षोडश।।
पञ्चलक्षैश्चतुर्भिस्तु सुवर्णैर्निष्क उच्यते।
चतुष्पलोऽथ कुडवः प्रस्थः स्यात्तच्चतुष्टयम्।
आढकस्तु चतुष्प्रस्थो द्रोणस्तु चतुराढकः।
मानिकात्तु चतुर्द्रोणा खारी स्यात्तच्चतुष्टयम्।।
तुला पलशतं ज्ञेयं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः।
शुष्कद्रव्येषु सङ्ख्येयं चार्द्रेषु द्विगुणा भवेत्।।

तिन्तिडीबीजरोपणम्

तिन्तिडीत्यपि करोति वल्लरीं व्रीहिमाषतिलचूर्णसक्तुभिः।
पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं हरिद्रया ॥२१॥

संस्कृतभावार्थः—चिञ्चाबीजं धानमाषतिलचूर्णसक्तुपूतिमांससहितं हरिद्राधूपितं कृत्वा रोपणे शीघ्रं अंकुरितं शाखायुक्तं च भवति।।२१।।

तिन्तिडी (इमली) के बीज का रोपण—इमली के बीज को धान, माष, तिल के चूर्ण, सतू तथा सड़े मांस में मिलाकर हल्दी की धूप देने से शाखा निकलती है। इसके प्रयोग से इमली के अतिरिक्त और बीज भी अंकुरित होते हैं।।२१।।

कपित्थबीजरोपणप्रकारः

कपित्थवल्लीकरणाय मूलान्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम्।
पलाशिनि वेतससूर्यवल्ली श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टमूली ॥२२॥
क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते तालीशतं स्थाप्य कपित्थबीजम्।
दिने दिने शोषितमर्कपादैर्मासं विधिस्त्वेष ततोऽधिरोप्यम् ॥२३॥
हस्तायतं तद् द्विगुणं गभीरं खात्वा वटं प्रोक्तजलावपूर्णम्।
शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत्प्रलेपयेद्भस्मसमन्वितेन ॥२४॥
चूर्णीकृतैर्माषतिलैर्यवैश्च प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः।
मत्स्यामिषाम्भस्सहितं च हन्याद्यावद् घनत्वं समुपागतं तत् ॥२५॥
उप्तश्च बीजं चतुरङ्गुलाधो मत्स्याम्भसा मांसजलैश्च सिक्तम्।
वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला विस्मापनी मण्डपमावृणोति ॥२६॥

संस्कृतभावार्थः—सारिवामलकीधववासिकावेतसमूलपत्रसूर्यवल्लीत्रिवृत्तातिमुक्तामूलानि अष्टमूली इति कथ्यते। अष्टमूली क्षीरयुक्ता शीतं कृत्वा तालीशतं क्वाथयेत्। ततश्च आतपे शोषयेत्। मांस यावत् एवं करणे इदं भूमौ निखनेत्। एतदर्थं हस्तदीर्घद्विहस्तविस्तारगम्भीरं खात्वा सजलदुग्धेव गर्तं पूरयित्वा तच्छोषे जाते तत्र अग्निना दहेत् ततश्च मधुघृतभस्मना लेपयेत्।।२२-२६।।

कपित्थ के बीज का रोपण—कैथ के बीज को लगाने के लिये सारिवा, आँवला, धव, अडूसा, वृक्षों के जड़ों को तथा वेत के जड़, पत्ते सूर्यवल्ली, त्रिवृत् और अतिमुक्त वृक्ष की जड़ इन सबके समूह को अष्टमूली कहते हैं। इनका दूध मिलाकर बचाव करें। शीतल होने पर इसको १०० ताली बजाने के समय तक क्वाथ में डाल दें। फिर इसको निकालकर धूप में सुखा दें, ऐसा ३० दिन तक बराबर करके तब इसका रोपण करें। इसके लिये १ हाथ लम्बा १ हाथ चौड़ा २ हाथ गहरा गड्ढा खोदकर दूध मिले जल से भर दें, जब वह सूख जाय तब उसमें आग जला दें फिर उसको शहद घी, भस्म से लीप दें।

इसके पश्चात उसमें अंगुल मिट्टी भर दें, जौं, उड़द, तिल का चूर्ण डालकर फिर उसमें ४ अंगुल मिट्टी डालें। इसी क्रम से उस गड्ढे को भर दे। इसके बाद मछली के मांस जल से गीला करके उसको कड़ा होने तक पीटें। इस स्थान पर ४ अंगुल की गहरायी में बीज को रोपें। मत्स्य जल से उसको सीचें ऐसा करने से शीघ्र वल्ली (लता) उग आती है। इस प्रकार लगाया हुआ वृक्ष अनुपम शोभा वाला होता है। और यह अपनी छाया से आश्रितों को सुख देता है।।२२-२६।।

श्लेष्मातकबीजरोपणविधानम्

श्लेष्मातकस्य बीजानि निष्कुलीकृत्य भावयेत् प्राज्ञः।
अङ्कोलविज्जलाद्भिश्छायायां सप्तकृत्वैवम् ॥२७॥
माहिषगोमयघृष्टान्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्य।
करकाजलमृद्योगे न्युप्तान्यह्ना फलकराणि ॥२८॥

संस्कृतभावार्थः—श्लेष्मान्तकबीजं निष्कुलीकृत्य अंकोलफलजलेन सप्तकृत्वः भावयेत्, ततः महिषकरीषघृष्टं तत् गोमयमध्ये स्थाप्यम्। इदं बीजं कारकाजलेन मृदा च युक्तं कृत्वे रोपयेत्, यतः अंकुरितं बीजमुत्तमफलदं भवति।।२७-२८।।

श्लेष्मातक बीजारोपण का विधान—लिसोड़ा के बीज का ऊपरी छिलका उतारकर अंकोलफल की चिकनाहट की भावना दें, छाया में सुखा लें, सात बार ऐसा करें। फिर भैंस के गोबर से घिसें, गोबर के बीच में रख दें। इस बीज को ओला के जल और मिट्टी में सानकर रोपें; ऐसा करने से यह अंकुरित बीज उत्तम फल को देता है।

सामान्यवृक्षारोपणप्रकारः

शतशोऽङ्कोलसम्भूतफलकल्केन भावितम्।
एतत्तैलेन वा बीजं श्लेष्मातकफलेन वा ॥२९॥
वापितं करकोन्मिश्रमृदि तत्क्षणजन्मकम्।
फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम् ॥३०॥

संस्कृतभावार्थः—अन्यवृक्षबीजान्यपि शतवारम् अङ्कोलकल्केन भावयित्वा अथवा अङ्कोलतैलेन शतवारं भावयित्वा ततः श्लेष्मान्तकफलकल्केन तत्तैलेन वा पुनर्भावयित्वा रोपणे अतिशीघ्रं तद्बीजं शाखालतापुष्पफलयुक्तं भवति।।२९-३०।।

वृक्षारोपण का सामान्य प्रकार—यदि उपर्युक्त वृक्षों के अतिरिक्त किसी का बीज लगाना हो तो उस बीज को पिस्ता के कल्क (पिस्ता को पीसकर चटनी सी बना लें) से १०० बार भावना (भिगो भिगोकर छाया में सुखाने) से अथवा इसी के तेल से १०० बार भावना देने से, फिर उस बीज को लिसोड़ा के फल के कल्क या तेल की भावना देकर लगाने से उसी क्षण वह बीज, शाखा, लता, फल से युक्त हो जाता है।

वक्तव्य—बीजों का सामान्य रोपण सुप्रसिद्ध है, किन्तु उपर्युक्त प्रकार की विधियाँ विशेष प्रभावकारी होती हैं, तथापि उक्त फलश्रुतियाँ प्रशंसा की दृष्टि से लिखी गयी हैं।।३०।।

वृक्षरोपणनक्षत्राणि

ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी हस्तः।
उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥३१॥

संस्कृतभावार्थः—तिसृषूत्तरासुरोहिण्यनुराधामृगशिरोरेवतीचित्रामूलविशाखापुष्यश्रवणाश्विनीहस्तनक्षत्रेषु वृक्षारोपणं शुभाय भवति इति दिव्यदृष्टिऋषीणां मतम्।।३१।।

वृक्षारोपण के नक्षत्र—तीनों उत्तरा, रोहिणी, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी, हस्त—ये नक्षत्र वृक्षारोपण के लिये शुभ होते हैं। ऐसा दिव्य दृष्टि वाले प्राचीन महर्षियों का मत है।।३१।।

इति बृहत्संहितोक्तो वृक्षायुर्वेदाध्यायः

•

प्रतिष्ठाप्रकरणम्

देवमन्दिरनिर्माणप्रयोजनम्

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान् विनिवेश्य च।
देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्म्माभिवृद्धये ॥१॥
इष्टापूर्त्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता।
देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ॥२॥

संस्कृतभावार्थः—विभिन्नजलाशयान् उद्यानानि निर्माणाय यशोधर्माभिवृद्धये देवालयान् निर्मापयेत्। इष्टानां यज्ञादीनां पूर्तानां जलाशयादीनां करणे पुण्यलोको लभ्यते, देवमन्दिरनिर्माणे उभयविधं कर्म सम्पद्यते।।१-२।।

देवमन्दिर-निर्माण का प्रयोजन—अनेक प्रकार के जलाशय (पुष्कर, कूप, तड़ाग) बनवाकर फल, फूल के बगीचे लगवाकर यश एवं धर्म की वृद्धि के लिये देवमन्दिर का निर्माण करायें। इष्ट यज्ञ, पूर्त जलाशय के निर्माण से जिन (स्वर्ग आदि) लोकों की प्राप्ति होती है। उनके लिये देवमन्दिरों का निर्माण करायें, क्योंकि इनसे दोनों प्रकार के फल देखे जाते हैं[1]।।१-२।।

देवतानुरागस्थलानि

सलिलोद्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च।
स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः ॥३॥

संस्कृतभावार्थः—आदौ एव स्वनिर्मितः जलाशयः उद्यानं भक्तनिर्मितं वा भवेच्चेत् तत्र देवाः वसन्ति।।३।।

देवताओं के अनुसार स्थल—जहाँ पर पहले से जलाशय तथा फल, पुष्प के उद्यान हों अथवा किसी भक्त के द्वारा बनवाये गये हों; ऐसे स्थानों पर देवता निवास करते हैं।।३।।

---

१. **काश्यपमते**—
इष्टापूर्त्तादिभिर्यज्ञैर्यावत् कुर्वन्ति मानवाः।
अग्निष्टोमादिपशुभिरिष्टं यज्ञं प्रकीर्तितम्।।
वापी कूपतडागादिदेवतायतनानि च।
स्वर्गस्थितिं सदा कुर्यात् तद्दानं पूर्तसंज्ञितम्।।
देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र लभ्यते।

सरःसु नलिनीछत्रनिरस्तरविरश्मिषु ।
हंसांसाक्षिप्तकह्लारवीथीविमलवारिषु ॥४॥
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु ।
पर्यन्तनिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु ॥५॥

संस्कृतभावार्थः—यत्र सरसि पद्मानि सूर्यातपं वारयन्ति हंसत्यक्तैः कल्हारैः जले एव मार्गभ्रमः भवति तत्र देवाः वसन्ति। यत्र सरसि हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकादिपक्षिणः कूजन्ति यत्र जलवेतसे जलचराः विश्राम्यन्ति तत्र देवाः निवसन्ति।।४-५।।

जिन सरोवरों में विकसित कमलपुष्प सूर्य के सन्ताप-निवारण के लिये छत्र का कार्य कर रहे हों और हंसों के कंधों से फेंके हुए कल्हार (कमलभेद) पुष्पों से जिस जल से मार्ग जैसा बन गया हो, वहाँ देवता निवास करते हैं।

जिन तालाबों में हंस, कारण्डव, क्रौंच, चकवा-चकई पक्षियों के कलरव हों तथा जिसमें जलवेतस की छाया में जलचर विश्राम करते हों, वहाँ प्रतिदिन देवता निवास करते हैं।।४-५।।

क्रौञ्चकाञ्चीकलापाश्च कलहंसकलस्वराः ।
नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखलाः ॥६॥
फुल्लतीरद्रुमोत्तंसाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः ।
पुलिनाभ्युन्नतोरस्या हंसवासाश्च निम्नगाः ॥७॥

संस्कृतभावार्थः—काञ्चीनिनदमधुरं गुञ्जन्तः क्रौञ्चाः हंसाश्च यत्र जलाशये क्रीड़न्ति शफर्यः यत्र वेलां जलं च परिदधति तत्र नदीषु देवाः वसन्ति। यासां नदीनां तटरुहां वृक्षाणां पुष्पैः कर्णावतंसः क्रियते सङ्गमः श्रोणिः, उन्नतदेशः स्तनः हंसवस्त्रं च तासु नदीषु देवाः वसन्ति।

करधनी के शब्द के समान सुमधुर क्रौञ्च पक्षी का कलरव तथा राजहंस का मधुर रव जिन जलाशयों में हो और शफरी (मछलियों) को जिन्होंने किनारा एवं जल को अपना परिधान बना रखा है, ऐसी नदियों में देवता विहार करते हैं।

जिन नदियों के तट पर विकसित वृक्ष ही कनफूल हों, नदियों का संगम जिनका श्रोणिफलक हो, उन्नत प्रदेश जिनके स्तन हों, हंस जिनके उज्ज्वल वस्त्र हों, ऐसी नदियों में देवता निवास करते हैं।।६-७।।

वनोपान्तनदीशैलनिर्झरोपान्तभूमिषु ।
रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥८॥

संस्कृतभावार्थः—वनोपान्ते नदीषु पर्वतेषु निर्झरसमीपे सोद्याने नगरे देवता रमन्ते।

वन के किनारों में, नदियों में, पर्वतों में, झरनों के समीप में तथा बगीचों से युक्त नगरों के समीप भी देवता रमण करते हैं।।८।।

मन्दिरोचितभूमिनिर्देशः

भूमयो ब्राह्मणादीनां या प्रोक्ता वास्तुकर्मणि ।
ता एव तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥९॥

संस्कृतभावार्थः—वास्तुकर्मणि विप्राणां या भूमिरुक्ता देवानां सैव भूमिः शुभा भवति।

मन्दिर के लिये उचित भूमि का निर्देश—ब्राह्मणों के लिये वास्तुकर्म में जिस प्रकार की भक्ति का वर्णन किया गया है, वैसी ही भूमि देवमन्दिर के लिये भी शुभ होती है। भूमिलक्षण इसी ग्रन्थ के आरम्भ में देखना चाहिये।।९।।

देवालयोक्तवास्तुपुरुषलक्षणं द्वारविभागश्च

चतुःषष्टिपदं कार्यं देवतायतनं सदा ।
द्वारं च मध्यमं तस्मिन् समदिक्स्थं प्रशस्यते ॥१०॥

चतुःषष्टिपदो वास्तुनरः

ई पू आ

शिखी अदितिः	पर्जन्य	जयन्तः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः	अन्तरिक्षः अनिलः
अदिति	पर्जन्यः अदितिः	जयन्तः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः पूषाः	पूषाः
भुजगः	भुजगः	आपवत्सः आपः	अर्यमा	अर्यमा	सविता सावित्रः	वितथः	वितथः
सोमः	सोमः	पृथिवी धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	बृहत्क्षतः	बृहत्क्षतः
भल्लाटः	भल्लाटः	पृथिवी धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	यमः	यमः
मुख्यः	मुख्यः	रुद्रः राजयक्ष्मा	मित्रः	मित्रः	इन्द्रः जयः	गन्धर्वः	गन्धर्वः
नागः	नागः शोषः	असुरः	वरुणः	कुसुम दन्तः	सुग्रीवः	भृङ्गराजः दौवारिकः	भृङ्गराजः
रोगः पापमक्ष्य	शोषः	असुरः	वरुणः	कुसुम दन्तः	सुग्रीवः	दौवारिकः	मृगः पिता

उ द

वा प नै

संस्कृतभावार्थः—देवालयः ६४ पदमितः स्यात्, सर्वदिक्षु मध्यभागे द्वारनिर्माणे भवेत्। ६४ पदविधानं यथा—पूर्वदिशि पश्चिमां प्रति, उत्तरस्याश्च दक्षिणां प्रति नवरेखाः आकृष्य ६४ कोष्ठकं सम्पादयेत्, मध्ये चतुर्षु कोष्ठकेषु अन्ते चतुर्षु कोणेषु चतस्रः तिरश्चीनां रेखाः आकर्षेत्। मध्ये चतुर्षु वादेषु ब्रह्मा ब्राह्मकोणेषु अष्टदेवताः (आपः-आपवत्सः-सवितृः-सवित्रः-इन्द्रः-जयन्तः-राजयक्ष्मा-रुद्रः) अर्धपदे भवन्ति। ततः शिखिः-अन्तरिक्षः-अनिलः-पितृः-पापः-यक्ष्मा-रोगः-अदितयः अर्धपदे भवन्ति। ततः पर्जन्यभृश-भृङ्गराजदौवारिकशोषनागअदितिभृशानां सार्धपदं भवति। इतः परं सर्वा देवताः द्विपदिकाः। यथा जयन्तेन्द्रसूर्यसत्यभृशवितथबृहत्क्षतयमगन्धर्वकुसुमदन्ताम्बुपति असुरमुख्यभल्लाट-सोमभुज-ार्थमविवस्वन्मित्रपृथ्वीधराः। अन्ये आचार्याः इमानेव वास्तुनरं मन्यते।।१०।।

देवादल के लिये वास्तुपुरुष का लक्षण तथा द्वारविभाग—देवालय ६४ पद का बनाना चाहिये, उसके सभी दिशाओं के मध्य भाग में द्वारनिर्माण शुभ होता है। ६४ पद का विधान निम्नलिखित है—

पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण ९-९ रेखा खींचें, इस प्रकार ६४ कोष्ठक बनेंगे। इसमें बीच के चार कोष्ठकों के अन्त से चारो कोण तक ४ तिरछी रेखायें खींचें, इसके बीच में ४ पद ब्रह्मा और बाह्य कोण में ८ देवता (१ आप, २ आपवत्स, ३ सविता, ४ सवित्र, ५ इन्द्र, ६ जयन्त, ७ राजयक्ष्मा, ८ रुद्र) का अर्धपद है। इसके बाद भी (१ शिखि, २ अन्तरिक्ष, ३ अनिल, ४ पितृ, ५ पाप, ६ यक्ष्मा, ७ रोग, ८ अदिति) ये अर्धपद हैं। इसके आगे—१ पर्जन्य, २ भृश, ३ भृङ्गराज, ४ दौवारिक, ५ शोष, ६ नाग, ७ अदिति, ८ भृश—ये आठ सार्ध १-१/२ पदिक हैं। इनसे अवशिष्ट जो-जो देवता हैं, वे द्विपदिक हैं। यथा—जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश, वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, कुसुमदन्त, अम्बुपति, असुर, मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजग, अर्यम, विवस्वान्, मित्र, पृथ्वीधर। अन्य आचार्यों ने इन्हीं को वास्तुनर भी कहा है।

देवालयविधानम्

यो विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः।
उच्छ्रायाद् यस्तृतीयांशस्तेन तुल्याः कटिः स्मृता ॥११॥
विस्तारार्धं भवेद्गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः।
गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥१२॥
उच्छ्रायात् पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरः।
विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम्।
त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिस्तत् प्रशस्यते।
अधः शाखाचतुर्भागे प्रतीहारौ निवेशयेत् ॥१४॥

शेषं मङ्गल्यविहगैः श्रीवृक्षैः स्वस्तिकैर्घटैः।
मिथुनैः पत्रवल्लीभिः प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥१५॥
द्वारमानाष्टभागोना प्रतिमा स्यात् सपिण्डिका।
द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयांशश्च पिण्डिका ॥१६॥

संस्कृतभावार्थः—विस्ताराद् द्विगुणमौन्नत्यं मन्दिरस्य भवेत्। ३२ हस्तविस्तारस्य मन्दिरस्य ६४ हस्तमुन्नतिर्भवेत्। उन्नतेः तृतीयो भागः (२१ हस्ताः अष्टाङ्गुलाः) मन्दिरस्य कटिप्रदेशः स्यात्। विस्तारस्य अर्धभागः (१६ हस्तः) तुल्यं गर्भगृहं भवति, गर्भः परितः भित्तयो भवन्ति। अत्र एकहस्तपरिमिता भूमिः परिक्रमायै त्यक्त्वा हस्तत्रयमिभूमौ भित्तिं कुर्यात्। गर्भविस्तारस्य चतुर्थांशेन (४ हस्तः) द्वारं निर्मायात्। द्वारोन्नतिः ८ हस्ताः भवेयुः। द्वारोन्नतेः चतुर्थः भागः शाखाविस्तारस्य भवति, तथैव उदुम्बरोऽपि संस्थाप्यः। शाखाविस्तारस्य चतुर्थांशतुल्या शाखायां पीनता भवेत्। एतादृशं द्वारं त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखायुक्तं चेदुत्तमम्। शाखाविस्तारः त्रिभिः न पूर्यते चेत् पञ्चभिः पूरणीयम्। पञ्चभिः न पूर्यते चेत् सप्तभिर्नवभिर्वा पूरणीयम्। शाखातो नीचैः यः भागः तच्चतुर्थांशेन प्रतीहारान् स्थापयेत्। शेषेषु त्रिषु भागेषु हंसादीन् शुभान् खगान् श्रीवृक्षं वास्तुपुरुषं स्वस्तिकद्वयं घटं च स्थापयेत्। लतापत्रादिभिरलंकुर्यात्। द्वारोन्नतेः अष्टमांशं द्वारोन्नतेः वियोज्य सपिण्डिं प्रतिमां कुर्यात्; तत्रापि भागद्वयं प्रतिमायाः एको भागः पिण्डिकाया भवति।।११-१६।।

देवालय के निर्माण का विधान—देवालय का जो विस्तार है, उससे दुगुनी उसकी ऊँचाई होती है। जैसे देवालय के मध्य का विस्तार ३२ हाथ है तो उसकी ऊँचाई ६४ हाथ होगी। ऊँचाई का तीसरा भाग (२१ हाथ ८ अंगुल) उसका कटिप्रदेश होता है। देवालय के विस्तार का आधा (१६ हाथ) गर्भ होता है। गर्भ के चारो ओर दीवाल होती है। इसमें १ हाथ भूमि परिक्रमा के लिये रखकर शेष तीन हाथ में दीवाल बनायें। गर्भ के विस्तार (१६ हाथ) मान का चतुर्थांश (४ हाथ) द्वार बनाना चाहिये। द्वार की ऊँचाई ८ हाथ रखें। द्वार की ऊँचाई का चतुर्थांश (२ हाथ) शाखाविस्तार होगा। उसी तरह उदुम्बर (शाखा के ऊपर नीचे रखने वाला काष्ठ) भी रखना चाहिये। शाखा का जो विस्तार है, उसके चतुर्थांश शाखाओं की मोटाई होनी चाहिये। वह द्वार ३, ५, ७, ९ शाखाओं से युक्त हो तो उत्तम माना जाता है, शाखाविस्तार यदि ३ से पूरा न हो तो ५ से पूरा करें; यदि ५ से भी न हो तो ७ अथवा ९ से पूरा करें। शाखा के नीचे का जो भाग है, उसके चतुर्थांश से प्रतीहारों (नन्दी, दण्ड आदि) को रखें। शेष तीन भागों में हंस आदि मांगलिक पक्षी, श्रीवृक्ष, वास्तुपुरुष, दो स्वस्तिक घट रखें। लता-पत्र आदि से द्वार की शोभा करें। द्वार की ऊँचाई का जो अष्टमांश हो, उसको द्वार की ऊँचाई में घटाकर सपिण्डि की प्रतिमा बनाये, उसमें भी दो भाग प्रतिमा और एक भाग पिण्डिका होती है।

यथा—मेरु द्वार की ऊँचाई ८ हाथ है; उसका अष्टमांश १ हाथ हुआ। इसको ८ में घटाने से ७ हुआ, इसमें दो भाग ४ हाथ १६ अंगुल प्रतिमा का प्रमाण और उसी का तीसरा भाग २ हाथ ८ अंगुल पिण्डि का प्रमाण करें, इसी प्रकार सभी प्रासादों के निर्माण का विधान है।।११-१६।।

प्रासादनामानि

मेरु-मन्दर-कैलास-विमानच्छद-नन्दनाः ।
समुद्र-पद्म-गरुड-नन्दिवर्धन-कुञ्जराः ॥१७॥
गुहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः ।
सिंहो वृत्तश्चतुष्कोणः षोडशाष्टाश्रयस्तथा ॥१८॥
इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः सञ्ज्ञया मया ।
यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाम्यतः ॥१९॥

संस्कृतभावार्थः—मेरुमन्दरकैलासविमानच्छदनन्दनसमुद्रपद्मगरुड़नन्दिवर्धनकुञ्जरगुहराजवृषहंससर्वतोभद्रघटसिंहवृत्तचतुष्कोणषोड़शाश्रिः अष्टाश्रिः इति देवालयनामानि, क्रमशः एषां लक्षणान्युच्यन्ते।।१७-१९।।

प्रासादों के नाम—१ मेरु, २ मन्दर, ३ कैलास, ४ विमानच्छद, ५ नन्दन, ६ समुद्र, ७ पद्म, ८ गरुड़, ९ नन्दिवर्धन, १० कुञ्जर, ११ गुहराज, १२ वृष, १३ हंस, १४ सर्वतोभद्र, १५ घट, १६ सिंह, १७ वृत्त, १८ चतुष्कोण, ११ षोडशाश्रि, २० अष्टाश्रि—ये २० प्रकार के देवालय होते हैं। क्रमशः इनके लक्षण अगले श्लोकों में वर्णित हैं।।१७-१९।।

मेरुप्रासादलक्षणानि

तत्र षडश्रिर्मेरुर्द्वादशभौमो विचित्रकुहरश्च ।
द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णः ॥२०॥

संस्कृतभावार्थः—षड्श्रिः द्वादशभौमः उपर्युक्तः विचित्रकुहरः चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारयुक्तः द्वात्रिंशद्धस्तविस्तारः चतुष्षष्टिहस्तोन्नतश्च मेरुप्रासादो भवति।।२०।।

मेरुप्रासाद का लक्षण—मेरुप्रासाद में ६ कोण, १२ भूमिकायें (महल एक के ऊपर एक के क्रम से) होती हैं। जिनमें अनेक प्रकार के कुहर = छिद्र (खिड़कियाँ) होते हैं। उसमें ४ दिशाओं में ४ द्वार होते हैं। उनका विस्तार ३२ हाथ एवं ऊँचाई ६४ हाथ होती है।।२०।।

मन्दरकैलासयोर्लक्षणानि

त्रिंशद्धस्तायामो दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः ।
कैलासोऽपि शिखरवानष्टाविंशोऽष्टभौमश्च ॥२१॥

संस्कृतभावार्थः—मन्दरप्रासादः षट्कोणयुक्तः त्रिंशद्धस्तविस्तृतः भवति। ६० हस्तोन्नतः दशभौमः विमानप्रासादः। कैलासप्रासादः षडश्रिः अष्टाविंशतिहस्तविस्तृतः षट्पञ्चाशद्धस्तोच्चः विमानप्रासादः।

मन्दर व कैलास प्रासाद का लक्षण—मन्दरप्रासाद ६ कोणयुक्त ३० हाथ विस्तृत, ६० हाथ ऊँचा तथा १० महल ऊँचा शिखरों वाला होता है। कैलासप्रासाद ६ कोणवाला, २८ हाथ विस्तृत, ५६ हाथ ऊँचा तथा आठ महलों वाला होता है[1]।।२१।।

विमाननन्दनयोर्लक्षणानि

जालगवाक्षकयुक्तो विमानसञ्ज्ञस्त्रिसप्तकायामः ।
नन्दन इति षड्भौमो द्वात्रिंशः षोडशाण्डयुतः ॥२२॥

संस्कृतभावार्थः—जालगवाक्षसहितः २१ हस्तविस्तारः, ४२ हस्तोन्नतः, षडश्रिः अष्टभौमः विमानप्रासादः। षडश्रिः ३२ हस्तविस्तारः ६४ हस्तोन्नतः षड् भौमः १६ गोलशिखरशोभितश्च नन्दनप्रासादो भवति।।२२।।

विमान व नन्दन प्रासाद का लक्षण—विमान प्रासाद जालीदार खिड़कियों से युक्त २१ हाथ विस्तृत ४२ हाथ ऊँचा ६ कोण तथा आठ महलों वाला होता है। नन्दन प्रासाद छः कोण, ३२ हाथ विस्तृत, ६४ हाथ ऊँचा, ६ महलों तथा १६ अण्ड शिखरों से सुशोभित होता है[2]।।२२।।

समुद्गपद्मयोर्लक्षणानि

वृत्तः समुद्गनामा पद्मः पद्माकृतिः शयां अष्टौ ।
शृङ्गेणैकेन भवेदेकैव च भूमिका तस्य ॥२३॥

संस्कृतभावार्थः—वृत्तः समुद्गप्रासादः, कमलाकृतिः पद्मप्रासादः, उभयमपि ८

---

१. काश्यपमते—
द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णे चतुर्द्वारं षडश्रिकम्।
भूमिकास्तत्र कर्तव्या विचित्रकुहरान्विताः।।
द्वादशोपर्युपरिगा वर्तुलाण्डैः समायुताः।
प्रासादो मेरुसञ्ज्ञः स्यान्निर्दिष्टो विश्वकर्मणा।।
अष्टभौमश्च कैलासो हस्ताष्टाविंशतिः स्मृतः।
षडश्रिः शिखरोपेतः प्रासादस्तु तृतीयकः।।

२. काश्यपमते—
गवाक्षजालसंयुक्तो विमानश्चैकविंशतिः।
षडश्रिरष्टभौमश्च प्रासादः स्याच्चतुर्थकः।।
नन्दनस्तु षडश्रिः स्यात् द्वात्रिंशद्धस्तविस्तृतः।
षड्भौमः षोडशाण्डस्तु प्रासादः पञ्चमो मतः।।

हस्तविस्तारं १६ हस्तोन्नतं, सप्तभौमं विंशत्यण्डं च भवति।।२३।।

समुद्र व पद्म प्रासाद का लक्षण—समुद्र प्रासाद मूँग के आकार का (गोल) एवं पद्म प्रासाद कमल के (आकार) (अष्टदल) का होता हैं। ये दोनों ८ हाथ विस्तार, १६ ऊँचा, १ शृङ्ग, १ अण्ड और १ महल के होते हैं[१]।।२३।।

गरुडनन्दिवर्धनयोर्लक्षणानि

गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दीति च षट्चतुष्कविस्तीर्णः।
कार्यस्तु सप्तभौमो विभूषितोऽण्डैस्तु विंशत्या ॥२४॥

संस्कृतभावार्थः—गरुडप्रासादः नन्दिवर्धनप्रासादश्च गरुडाकृतिः, उभयं २४ हस्तविस्तारं ४८ हस्तोन्नतं, सप्तभौमं विंशत्यण्डं च भवति।।२४।।

गरुड़ व नन्दिवर्धन प्रासाद का लक्षण—गरुड़ प्रासाद गरुड़पक्षी के आकार का होता है। नन्दिवर्धन प्रासाद भी गरुड़ के आकार का होता है। इन दोनों का २४ हाथ विस्तार, ४८ हाथ ऊँचा सात महल और २० अंडों के होते हैं[२]।।२४।।

कुञ्जरगुहराजयोर्लक्षणानि

कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तः समन्ततो मूलात्।
गुहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ॥२५॥

संस्कृतभावार्थः—कुञ्जरप्रासादः गजपृष्ठ्याकृतिः तथैव गुहराजप्रासादोऽपि। उभयमपि १६ हस्तविस्तारं ३२ हस्तोन्नतं एकभौमं त्रिचन्द्रशालां बहुगवाक्षञ्च भवति।।२५।।

कुञ्जर व गुहराज प्रासाद का लक्षण—कुञ्जर प्रासाद हाथी के पृष्ठ के आकार का होता है और गुहराज प्रासाद सामान्य होता है। ये दोनों १६ हाथ विस्तृत, ३२ हाथ ऊँचे और १ महल के होते हैं। इनमें अनेक खिड़कियाँ तथा ३-३ चन्द्रशालायें होती हैं।

वृषहंसघटानां लक्षणानि

वृष एकभूमिशृङ्गो द्वादशहस्तः समन्ततो वृत्तः।
हंसो हंसाकारो घटोऽष्टहस्तः कलशरूपः ॥२६॥

---

१. काश्यपमते—
वर्तुलस्तु समुद्रः स्यात् पद्मः पद्माकृतिस्तथा।
हस्ताष्टकं तु विस्तीर्णो भूमिका शृङ्गभूषिता।।

२. काश्यपमते—
गरुडो गरुडाकारः पक्षपुच्छविभूषितः।
नन्दी तथाकृतिर्ज्ञेयः पक्षादिरहितः पुनः।।
कराणां षट्चतुष्कास्तु विस्तीर्णौ सप्तभूमिकौ।
दशभिर्द्विगुणैरण्डैर्भूषितौ कारयेतु तौ।।

संस्कृतभावार्थः—वृषप्रासादः द्वादशहस्तविस्तारः चतुर्विंशतिहस्तोन्नतः वृत्तः एकभौमशृङ्गः भवति। हंसप्रासादः हंसाकृतिः चञ्चूपुच्छवान् द्वादशहस्तविस्तारः चतुर्विंशतिहस्तोन्नतः एकशृङ्गं भवति। घटप्रासादः घटाकृतिः अष्टहस्तविस्तारः षोड़शहस्तोन्नतः एकभौमशृङ्गश्च भवति।।२६।।

वृष, हंस तथा घट प्रासाद के लक्षण—वृषप्रासाद १२ हाथ विस्तृत, २४ हाथ ऊँचा, चारों ओर से गोल, १ महल ऊँचा तथा १ शिखर से युक्त होता है। हंसप्रासाद, हंसपक्षी के सदृश, चोंच, पंख पूछ वाला १२ हाथ विस्तृत, २४ हाथ ऊँचा, १ महल ऊँचा होता है। घटप्रासाद कलशाकार ८ हाथ विस्तृत, १६ हाथ ऊँचा १ महल ऊँचा और १ शिखर वाला होता है[१]।।२६।।

सर्वतोभद्रलक्षणानि

द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्बहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः।
बहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशः पञ्चभौमश्च ॥२७॥

संस्कृतभावार्थः—चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारयुक्तः, अनेकशृङ्गचन्द्रशालं, २६ हस्तविस्तारः ५२ हस्तोन्नतः पञ्चभौमः, चतुरस्रश्च सर्वतोभद्रप्रासादो भवति।।२७।।

सर्वतोभद्र प्रासाद का लक्षण—सर्वतोभद्र प्रासाद चारों दिशाओं में ४ द्वार, अनेक शिखरों से युक्त तथा चन्द्रशाला वाला होता है। इसका २६ हाथ विस्तार ५२ हाथ ऊँचा ५ मंजिल वाला चौकोर होता है[२]।।२७।।

सिंहवृत्तचतुष्कोणषोडशाश्र्यष्टाश्रीणां लक्षणानि

सिंहः सिंहाक्रान्तो द्वादशकोणोऽष्टहस्तविस्तीर्णः।
चत्वारोऽञ्जनरूपाः पञ्चाण्डयुतस्तु चतुरस्रः ॥२८॥

---

१. काश्यपमते—
कुञ्जरो गजपृष्ठाभो हस्तैः षोडशविस्तृतः।
गुहराजो गुहाकारो विष्कम्भात् षोडशः स्मृतः।।
त्रिचन्द्रशाला वलभी तयोः कार्या सुलक्षणा।
दशमैकादशावेतौ प्रासादौ द्वौ प्रकीर्तितौ।
वृषो द्वादशहस्तस्तु समवृत्तैकभूमिकः।
शृङ्गेणैकेन संयुक्तः प्रासादः परिकीर्त्तितः।।
हंसो हंसाकृतिर्ज्ञेयो हस्तैर्द्वादशविस्तृतः।
एकभूमिकया युक्तः पक्षपुच्छाद्यलङ्कृतः।।
घटः कलशरूपस्तु विस्तीर्णोऽष्टकरः स्मृतः।

२. काश्यपमते—
शिखरैर्बहुभिर्युक्तश्चतुर्द्वारविभूषितः। रुचिरैश्चन्द्रशालैश्च बहुभिः परिवारितः।।
चतुरस्रः पञ्चभौमः षड्विंशद्धस्तविस्तृतः। सर्वतोभद्र इत्युक्तः प्रासादो दशपञ्चमः।

संस्कृतभावार्थः—सिंहप्रासादः सिंहाकृतिः द्वादशकोणः हस्तविस्तारः १६ हस्तोन्नतः एकभौमश्च भवति। वृत्तकोणः-चतुष्कोणः-षोडशकोणः-अष्टकोणप्रासादाः स्वनामानुगुणाः एकशृङ्गाः भवन्ति। चतुष्कोणस्तु पञ्चशृङ्गः। एषां देवालयानां समीपे परितः प्रासादपश्चिम-भागभित्त्युपरि अट्टः कार्यः, तत्र मणिमयी प्रतिमा प्रतिष्ठापनीया।।२८।।

सिंह, वृत्तकोण, चतुष्कोण, षोडशकोण, अष्टकोण प्रासाद का लक्षण—सिंहप्रासाद सिंह के समान, १२ कोणों वाला, ८ हाथ विस्तृत, १६ हाथ ऊँचा तथा १ मंजिला होता है। वृत्तकोण, चतुष्कोण, षोडशकोण, अष्टकोण ये चारों प्रासाद अपने नाम के सदृश १-१ शिखर वाले होते हैं। केवल चतुष्कोण प्रासाद ५ शिखर वाला होता है। इन देवालयों के समीप चारो ओर दीवाल देकर प्रासाद के पश्चिम भाग की भित्ति के ऊपरी हिस्से में बनाना चाहिये। उसमें मणिमयी प्रतिमा की स्थापना करे[1]।।२८।।

मयविश्वकर्मणोर्मतेन भूमिर्मानम्

भूमिकाङ्गुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम्।
सार्द्धं हस्तत्रयं चैव कथितं विश्वकर्मणा ॥२९॥
प्राहुः स्थपतयश्चात्र मतमेकं विपश्चितः।
कपोतपालिसंयुक्ता न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥३०॥

संस्कृतभावार्थः—मयमते १०८ अङ्गुला विश्वकर्ममते ८४ अङ्गुलभूमिः प्रमाणम् अस्यां स्थितौ कुशलः स्थपतिः, विश्वकर्ममते न्यून २४ अङ्गुलमानं कपोतपालिसंयोगे पूरयन्ति।

मय व विश्वकर्मा के अनुसार भूमि का प्रमाण—मय के मत से १०८ अंगुल और विश्वकर्मा के मत से ८४ अंगुल भूमि का माप है। इस स्थिति में कुशल बढ़ई विश्वकर्मा के मत में जो २४ अंगुल की कमी है, उसको कपोतपाली से युक्त कर उसकी पूर्ति यथाविधि कर लेते हैं[2]।।२९-३०।।

पूर्वादिदिक्षु प्लवविचारः

पूर्वप्लवो वृद्धिकरो धनदश्चोत्तरे तथा।
याम्यां रोगप्रदो ज्ञेयो धनहा पश्चिमे प्लवः ॥३१॥

१. सिंहः सिंहसमाक्रान्तः कोणैर्द्वादशभिर्युतः।
विष्कम्भादष्टहस्तः स्यादेका तस्य च भूमिका।।
वृत्तो वृत्ताकृतिः कार्यं सञ्ज्ञास्तुल्यास्तथापरे।
सान्धकारास्तु सर्वेते भूमिकैकाः समावृताः।।
एकाण्डरूपिताः सर्वे पञ्चभिश्चतुरस्रकः।

२. तत्रान्तरे—
कपोतपालिरहितं मानं चतुरशीतिकम्।
भूमिकानां सह तया शतमष्टोत्तरं स्मृतम्।।
अंगुलानामतः साम्यं भूमिकासु प्रकीर्तितम्।

ईशान्ये प्रागुदक्प्लवस्त्वत्यन्तवृद्धिदो नृणाम्।
अन्यदिक्षु प्लवो नेष्टश्शश्वदत्यन्तहानिदः ॥३२॥

संस्कृतभावार्थः—भवनात् पूर्वदिशि प्लवश्चेत् वृद्धिर्भवति, उत्तरदिशि चेत् धनलाभः, दक्षिणदिशि रोगः, पश्चिमदिशि धनहानिः, ऐशानपूर्वोत्तरदिक्षु शुभम् अन्यदिक्षु अत्यन्तहानिः च भवति।।३१-३२।।

पूर्वादि दिशाओं के अनुसार प्लव का फल—भवन में पूर्व की ओर प्लव (मोरी, नाली, पानी निकालने का छिद्र) हो तो वृद्धिकारक, उत्तर की ओर धनलाभ, दक्षिण की ओर रोगकारक, पश्चिम की ओर धनहानि और ईशानकोण, पूर्व, उत्तर दिशाओं में शुभ एवं अन्य अत्यन्त हानिकारक होती हैं।।३१-३२।।

इति प्रासादलक्षणानि

•

राम्दैवज्ञमते जलाशयारामदेवप्रतिष्ठामुहूर्ताः

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा
सौम्यायने जीवशशाङ्कशुक्रे।
दृश्ये मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात्
पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा ॥१॥
रिक्तारवर्ज्ये दिवसेऽतिशस्ता
शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः।
व्यत्याष्टगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्यो
घटे को युवतौ च विष्णुः ॥२॥
शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः
क्षुद्राश्चरे सर्व इमे स्थिरर्क्षे।
पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्प-
भूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च ॥३॥

संस्कृतभावार्थः—सूर्यस्य उत्तरायणे बृहस्पतिचन्द्रशुक्रेषूदितेषु जलाशयोद्यानदेवालय-प्रतिष्ठा शुभाय भवति। मृगशिरोरेवतीचित्रानुराधाहस्ताश्विनीपुष्याभिजित्स्वातीपुनर्वसुश्रवण-धनिष्ठाशतभिषगुत्तरफाल्गुन्युत्तराषाढोत्तरभाद्रपदरोहिणीनक्षत्रेषु शुक्लपक्षे गृहस्वामिनो नक्षत्रे तिथौ मुहूर्ते, रिक्तातिथिमङ्गलवारभिन्नदिने चन्द्रे पापग्रहेषु च तृतीयषष्ठैकादशस्थानेषु स्थितेषु अष्टमे द्वादशे च शुभग्रहे अस्थिते, सिंहलग्नगे सूर्ये कुम्भगे ब्रह्मणि, कन्यास्थे विष्णौ, मिथुनस्थे हरे, द्विस्वभावलग्नासु देवीषु चरलग्नगासु ग्रामदेवतासु स्थिरगासु देवतासु पुष्ये सूर्यादिन-वग्रहाणां, श्रवणे रेवत्यां गणेशयक्षसर्पभूतादीनां च प्रतिष्ठा कार्या। श्रवणं देवप्रतिष्ठायै जल-प्रतिष्ठायै च शुभम्।।१-३।।

रामदैवज्ञ के मत से जलाशय व बगीचा व देवप्रतिष्ठा के मुहूर्त—सूर्य के उत्तरायण में, वृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा के उदयी होने पर जलाशय (वावड़ी, कुआँ, तालाब) बगीचा तथा देवप्रतिष्ठा का कार्य उत्तम होता है। मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों उत्तरा, रोहिणी—ये नक्षत्र; शुक्लपक्ष, अपना (गृहपति का) नक्षत्र, तिथि, मुहूर्त हो; रिक्ता (४, ९, १४) तिथियाँ और मंगलवार को छोड़कर चन्द्रमा और पापग्रह ३, ६, ११वें स्थानों में हों; अष्टम और द्वादश में शुभ ग्रह नहीं हो तो सिंह में सूर्य, कुम्भ में ब्रह्मा, कन्या में विष्णु, मिथुन में शिव और द्विस्वभाव लग्न में देवियों का तथा चर लग्न में ग्रामदेवताओं का, स्थिर लग्न में सभी का एवं पुष्य नक्षत्र में सूर्यादि नवग्रहों का, गणेश, यक्ष, सर्प, भूत आदि का रेवती नक्षत्र में और श्रवण नक्षत्र में देवस्थापना तथा जलप्रतिष्ठा शुभ होती है[१]।।१-३।।

मासानुसारि प्रतिष्ठाफलम्

पौषे राजविवृद्धिः स्यान्माघे मासे तु संपदः।
फाल्गुने द्रव्यलाभश्च चैत्रे मासि शुभावहा ॥४॥
अतीवसौख्यं वैशाखे ज्येष्ठे मासे जयावहा।
आषाढे स्थापितो देवो यजमानविनाशनः ॥५॥

१. **वसिष्ठमते**—
अथ प्रतिष्ठां कथयामि सम्यक् शिवस्य विष्णोस्त्वथवा परेषाम्।
सौम्यायने देवगुरौ च शुक्रे संदृश्यमाने परिचारकाणाम्।
बृहस्पतिमते—
उत्तरायणगे सूर्ये प्रतिष्ठा शोभना भवेत्।
दक्षिणायनगे सूर्ये प्रतिष्ठा नैव शोभना।।
शैवसिद्धान्ते—
श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छताम्।
दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः।।
मतान्तरे—
देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठामुत्तरायणे।
माघादिपञ्चमासेषु कृष्णेऽप्यापञ्चमीदिनम्।।
दक्षिणे त्वयने कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात्।
जलप्रतिष्ठाविचारः—
मार्तण्डेन्दुद्वशुद्धौ मुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्ले
मूलाषाढोत्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशक्राजचान्द्रे।
मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णा मदनरवितिथौ सद् द्वितीये तृतीये
कार्या तोयप्रतिष्ठा ज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने।।

सौरमानेन विज्ञेयः श्रावणे राज्यराष्ट्रहा।
भाद्रे सन्मानहानिः स्यादाश्विनेऽपि च राज्यहा ॥६॥
कार्तिके शत्रुवृद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथैव हि।
सर्वेषामेव वर्णानां वसन्तश्शोभनो भवेत् ॥७॥

संस्कृतभावार्थः—पौषे प्रतिष्ठातः राज्यवृद्धि, माघे सम्पत्तिः, फाल्गुने द्रव्यलाभः, चैत्रे शुभं, वैशाखे विशेषसुखं, ज्येष्ठे जयः, आषाढ़े यजमाननाशः, श्रावणे राज्यराजहानिः, भाद्रपदे मानहानिः, आश्विने राज्यहानिः, कार्तिके मार्गशीर्षे च शत्रुवृद्धिः भवति। सामान्यतः वसन्तः सर्ववर्णानां शुभकरः। पौषे मकरसंक्रान्त्यनन्तरम् एवं शुभकार्याणि सम्पादयेत्।

महीनों के अनुसार प्रतिष्ठा का फल—पौष में प्रतिष्ठा करने से राज्यवृद्धि, माघ में संपत्ति, फाल्गुन में द्रव्यलाभ, चैत्र में शुभ, वैशाख में विशेष सुख, ज्येष्ठ में जय, आषाढ़ में यजमान-नाश, श्रावण में राज्य तथा राष्ट्रहानि, भाद्रपद में अपमान, आश्विन में राज्यहानि, कार्तिक और मार्गशीर्ष में शत्रुवृद्धि होती है। सामान्य रूप से वसन्त ऋतु सभी वर्णों के लिये शुभ है। पौष मास मकरसंक्रान्ति के बाद ही शुभ होता है[१]।।४-७।।

उग्रप्रकृतिवतां स्थापनम्

मातृ-भैरव-वाराह-नारसिंह-त्रिविक्रमाः।
महिषासुरहंत्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥८॥

संस्कृतभावार्थः—मातृकाभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमविष्णुमहिषासुरमर्दिनी च स्थापनं दक्षिणायनेऽपि कर्तुं शक्यम्।।८।।

उग्र प्रकृति के देवताओं की स्थापना का समय—मातृकायें, भैरव, वाराह, नरसिंह, त्रिविक्रम (विष्णु) और महिषासुरघातिनी दुर्गा की स्थापना दक्षिणायन में की जा सकती है।

देवविशेषस्थापना

श्रावणे स्थापयेल्लिङ्गमाश्विने जगदम्बिकाम्।
मार्गशीर्षे हरिं चैव सर्पान् पौषेऽपि केचन ॥९॥

संस्कृतभावार्थः—श्रावणे शिवलिङ्गम्, आश्विने भगवती, मार्गशीर्षे विष्णुः, पौषे शेषः च स्थापनीयः इति केषाञ्चिदाचार्याणां मतम्।।९।।

१. **मतान्तरे**—
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवेऽपि वा।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्।।
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे।।
नारदमते—
विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु।

मास के अनुसार देवविशेष की स्थापना—श्रावण में शिवलिङ्ग, आश्विन में भगवती, मार्गशीर्ष में विष्णु, पौष में शेषनाग की स्थापना करनी चाहिये, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है।।९।।

देवस्थापनायां पक्षविचारः

बलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय।
अन्त्यत्रिभागं परिहृत्य कृष्णपक्षोऽपि शस्तः खलु पक्षयोऽस्तु ॥१०॥
दिनेषु यस्य देवस्य या तिथिस्तत्र तस्य च।
द्वितीयादिद्वयोः पञ्चम्यादितस्तिसृषु क्रमात् ॥११॥
दशम्यादेश्चतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः।
ब्राह्मणानां द्वितीया च तृतीया चातिशोभना ॥१२॥
क्षत्रियाणां पञ्चमी तु सप्तमी शोभनप्रदा।
वैश्यानां दशमी प्रोक्ता शूद्राणाञ्च त्रयोदशी ॥१३॥

संस्कृतभावार्थः—प्रतिपदं त्यक्त्वा सम्पूर्णः शुक्लपक्षः शुभः, कृष्णपक्षे दशमीपर्यन्तं समस्तास्तिथयः शुभाः। यस्य देवस्य या तिथिः तस्यां तत्प्रतिष्ठा शुभाय भवति। द्वितीयादि द्वयोः, पञ्चम्यादि तिसृषु, दशम्यादि पञ्चसु पूर्णिमायां च प्रतिष्ठा कार्या। ब्राह्मणानां द्वितीयातृतीये, क्षत्रियाणां पञ्चमीसप्तम्यौ, विशां दशमी, शूद्राणां त्रयोदशी शुभा भवति।

देवस्थापना में पक्ष व तिथि का विचार—प्रतिपदा को छोड़कर सम्पूर्ण शुक्लपक्ष शुभ होता है और कृष्णपक्ष में केवल दशमी तक ही देवस्थापना में तिथियाँ ग्राह्य होतीं हैं[1]।

जिस देवता की जो तिथि है, उसी तिथि में प्रतिष्ठा शुभ होती है। द्वितीया से दो, पञ्चमी से तीन, दशमी से चार तिथि और विशेषकर पूर्णिमा शुभ होती है।

वर्णभेद से विचार—ब्राह्मणों के लिये द्वितीया-तृतीया, क्षत्रियों के लिये पञ्चमी-सप्तमी, वैश्यों के लिये दशमी और शूद्रों के लिये त्रयोदशी तिथि शुभ होती है।

वसिष्ठमते वारफलम्

कीर्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानुभीतिप्रदं वृद्धिकरं दृढञ्च।
लक्ष्मीकरं सुस्थिरदं त्विनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति ॥१४॥

संस्कृतभावार्थः—रविवासरे प्रतिष्ठापनाद्यशः, सोमवारे कल्याणं, कुजवारे अग्निभयं, बुधवारे वृद्धिः, गुरुवारे दृढ़ता, शुक्रवारे लक्ष्मीः, शनिवारे स्थिरता च भवति।।१४।।

१. गुरुमते—
द्वितीया या तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा।
त्रयोदशी च सर्वेषां शुभदा शोभने विधौ।।

वसिष्ठ के मत से प्रतिष्ठा-हेतु वार का फल—रविवार को प्रतिष्ठा करने से यश, सोमवार को कल्याण, मंगलवार को अग्निभय, बुधवार को वृद्धि, गुरुवार को दृढ़ता, शुक्रवार को लक्ष्मीप्राप्ति और शनिवार को स्थिरता होती है।।१४।।

बृहस्पतिमते वारफलम्

विप्राणां शुभदौ वारौ स्थापने गुरुशुक्रयोः।
वारौ दिवाकरेन्द्वोश्च क्षत्रियाणां सुखावहौ ॥१५॥
वैश्यानां बुधवारः स्यात्सुरसंस्थापने शुभः।
मन्दवारस्तु शूद्राणां प्रतिष्ठायां शुभावहः ॥१६॥
जीवशुक्रबुधानां च सर्वेषां शोभनावहाः।
पापग्रहाणां वाराश्च बलिनः शुभदाः स्मृताः ॥१७॥

संस्कृतभावार्थः—विप्राणां गुरुभृगुः, क्षत्रियाणां रविसोमौ, विशां बुधः, शूद्राणां शनिश्च प्रतिष्ठायां शुभदाः अथवा बुधगुरुशुक्राः बलवत्पापग्रहदिनानि च सर्ववर्णानां शुभानि भवन्ति।

बृहस्पति के मत से वार का फल—ब्राह्मणों के लिये गुरु-शुक्र, क्षत्रियों के लिये रवि-सोम, वैश्यों के लिये बुध और शूद्रों के लिये शनिवार प्रतिष्ठा के लिये शुभ होता है। अथवा बुध, गुरु, शुक्र या बलवान् पापग्रहों के वार भी सभी वर्णों के लिये शुभ होते हैं। इनमें प्रतिष्ठा की जा सकती है।।१५-१७।।

वसिष्ठमते शुभनक्षत्राणि

हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु।
तिस्रोत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥१८॥

संस्कृतभावार्थः—हस्तचित्रास्वात्यनुराधाश्रवणधनिष्ठाशतभिषग्रेवत्यश्विनीपुनर्वसुपुष्यत्रिषूत्तरेषु रोहिणीमृगशिरस्सु सर्वासां देवतानां स्थापनं शुभाय भवति।।१८।।

वसिष्ठ के मत से शुभ नक्षत्र—हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी और मृगशिरा में सभी देवताओं की स्थापना शुभ होती है[1]।।१८।।

वर्णपरत्वेन शुभनक्षत्राणि

उत्तरात्रिकपुष्याश्च ब्राह्मणानां शुभावहाः।
श्रवणा हस्तमूले च क्षत्रिये शुभदाः स्मृताः ॥१९॥

१. मतान्तरे—
देवस्य यस्योडुतिथिप्रशस्तः संस्थापने कर्मणि वासराश्च।
कर्तुर्दिनेशस्य बलं सदैव विचारयेद् धर्मपरः सुविद्वान्।।

वैश्यानां स्वातिमैत्रे च पौष्णे चैव शुभावहाः ।
शूद्राणामश्विनी श्रेष्ठा तैतिलस्थापने शुभे ॥२०॥

संस्कृतभावार्थः—विप्राणां त्रिषु उत्तरासु पुष्यनक्षत्राणि शुभानि, क्षत्रियाणां श्रवणहस्त-मूलनक्षत्राणि, वैश्यानां स्वात्यनुराधारेवत्यः, शूद्राणामश्विनीनक्षत्रं च देवप्रतिष्ठायां शुभानि।

जाति के अनुसार शुभ नक्षत्र—ब्राह्मणों के लिये तीनों उत्तरा-पुष्य, क्षत्रियों के लिये श्रवण-हस्त-मूल, वैश्यों के लिये स्वाती-अनुराधा-रेवती और शूद्रों के लिये अश्विनी नक्षत्र देवस्थापना के लिये शुभ होते हैं।।१९-२०।।

वर्णभेदेन शुभराशयः

ब्राह्मणक्षत्रियाणां च शोभनाः स्थिरराशयः ।
उभयो राशयोर्वैश्यशूद्राणां शोभनाः स्मृताः ॥२१॥

संस्कृतभावार्थः—ब्राह्मणक्षत्रियाणां स्थिरे वैश्यशूद्राणां द्विस्वभावे राशौ च देवप्रतिष्ठा शुभा।

जाति के अनुसार शुभ राशि—ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए स्थिर राशि तथा वैश्य, शूद्रों के लिये द्विस्वभाव राशियों में प्रतिष्ठा शुभ होती है।।२१।।

प्रतिष्ठायां समयविचारः

पूर्वाह्णे चोत्तमं प्रोक्तं मध्याह्ने मध्यमं बुधैः ।
सायाह्ने न मया प्रोक्ता स्वगृहे चाशुभे विधौ ॥२२॥
कदाचिन्निश्यपि प्रोक्ता प्रतिष्ठा च कृते युगे ।
कलौ युगेऽतिदोषाय प्रतिष्ठा निशि मानवैः ॥२३॥

संस्कृतभावार्थः—पूर्वाह्णप्रतिष्ठा उत्तमफला, मध्याह्नप्रतिष्ठा मध्यमफला, सायाह्नप्रतिष्ठा अशुभा च भवति। अशुभचन्द्रः स्वगृहस्थोऽपि निषिद्धः। कृते रात्रावपि देवप्रतिष्ठा मन्यते; परन्तु कलौ सा निषिद्धा।।२२-२३।।

प्रतिष्ठा का समय—पूर्वाह्ण में प्रतिष्ठा उत्तम, मध्याह्न में मध्यम और सायंकाल में अधम होती है। अशुभ चन्द्रमा स्वगृह का भी निषिद्ध है। सत्ययुग में रात्रि में भी देवप्रतिष्ठा होती थी; किन्तु कलियुग में रात्रिप्रतिष्ठा वर्जित है।।२२-२३।।

वसिष्ठमते प्रतिष्ठाविचारः

रिक्तावमायुक्तदिनेषु निन्द्ययोगेषु वैनाशिकवर्जितेषु ।
दिने महादोषविवर्जितेषु शशाङ्कताराबलसंयुतेषु ॥२४॥

संस्कृतभावार्थः—रिक्ताः अमावास्यातिथिः निन्द्ययोगः वैनाशिकनक्षत्राणि, महादोष-युक्तदिनं च वर्जयित्वा ताराबले युक्ते चन्द्रे देवप्रतिष्ठा शुभा।।२४।।

वसिष्ठ के मत से देवप्रतिष्ठा का समय—रिक्ता तथा अमावास्या तिथि, निन्द्य योग, वैनाशिक नक्षत्र और महादोष-युक्त दिन को छोड़कर यदि तारा-बलयुक्त चन्द्रमा हो तो देवप्रतिष्ठा शुभ होती है।।२४।।

वैनाशिकनक्षत्राणि

जन्मभाद्दशमं कर्म संघातर्क्षञ्च षोडशम् ।
अष्टादशः सामुदायं त्रयोविंशं विनाशनम् ॥२५॥
मानसं पञ्चविंशर्क्षं नाचरेच्छुभभेषु तु ।
वैनाशिकानि मतिमान्नृक्षाणि परिवर्जयेत् ॥२६॥

संस्कृतभावार्थः—जन्मनक्षत्राद् दशमं नक्षत्रं कर्मः, षोडशं संघातः, अष्टादशं समुदायः, त्रयोविंशं विनाशनं, पञ्चविंशं मानसं चोच्यते, एषु शुभकार्यं न कार्यम्। एतानि नक्षत्राणि वैनाशिकानि कथितानि।।२५-२६।।

वैनाशिक नक्षत्र—जन्मनक्षत्र से १०वें नक्षत्र का नाम कर्म, १६वें का नाम संघात, १८वें का नाम समुदाय, २३वें का नाम विनाश और २५वें का नाम मानस है, इनमें शुभ कार्य नहीं करना चाहिये। अर्थात् उक्त सभी नक्षत्रों को वैनाशिक=विनाश करने वाला नक्षत्र कहा गया है, अतः इनको त्याग दना चाहिये।।२५-२६।।

वसिष्ठमते लग्नशुद्धिः

पञ्चाङ्गशुद्धे दिवसे दिनस्य पूर्वार्द्धभागे शुभदे मुहूर्ते ।
शुभग्रहैर्वीक्षितसंयुते वा न नैधने नैधनशुद्धिलग्ने ॥२७॥
केन्द्रत्रिकोणभवमूर्तिषु सद् ग्रहेषु
चन्द्रार्कभौमशनिषु त्रिषडायगेषु ।
सान्निध्यमेति नियतं प्रतिमासु देवः
कर्तुः सुतार्थसुखसम्पदरोगता च ॥२८॥

संस्कृतभावार्थः—पञ्चाङ्गशुद्धे दिने पूर्वाह्णे शुभमुहूर्ते लग्ने शुभग्रहस्य दृष्टौ योगे वा सति, जन्मराशिलग्नाभ्यामष्टमे लग्नेनैव, अष्टमस्थानशुद्धौ, केन्द्रत्रिकोणैकादशभावेषु शुभ-ग्रहेषु सत्सु चन्द्रसूर्यमङ्गलशनिषु तृतीयषष्ठैकादशभावेषु सत्सु शुभसमये प्रतिष्ठाकरणात्प्रति-ष्ठितप्रतिमायां देवतावासो भवति एवं प्रतिष्ठापकस्य पुत्रधनसुखसम्पत्तिनीरोगताप्राप्तिः भवति।

वसिष्ठ के मत से लग्नशुद्धि—पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण) शुद्ध वाले दिन पूर्वाह्ण और शुभ मुहूर्त में जब लग्न पर शुभ ग्रह या शुभ योग की दृष्टि हो, जन्मराशि या जन्मलग्न से अष्टम लग्न न हो, अष्टम स्थान शुद्ध हो, केन्द्र (१, ४, ७, १०) त्रिकोण (५, ९) में तथा ११ वें स्थान में शुभ ग्रह हों और चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि, तीसरे, छठे, ग्यारहवें हों तो ऐसी शुभ वेला में प्रतिष्ठा करने से उस

प्रतिमा में देवताओं का वास हो जाता है। इससे प्रतिष्ठा करने वाले को पुत्र, धन, सुख, सम्पत्ति और आरोग्यता की प्राप्ति होती है[१]।।२७-२८।।

शुक्रस्थितांशे राशेर्वा केन्द्रपञ्चायगे विधौ।
देवप्रतिष्ठा कालेऽत्र दोषाः सर्वे शमं ययुः ॥२९॥

संस्कृतभावार्थः—शुक्रः यस्मिन् राशौ नवांशे वा विद्यते तत्र चन्द्रः केन्द्रे पञ्चमे एकादशे वा भावे चेत् देवप्रतिष्ठायां दोषो भवेच्चेदपि स परिहृतो भवति।।२९।।

शुक्र जिस राशि अथवा नवांश में हो उसी में यदि चन्द्रमा केन्द्र, पञ्चम या एकादश स्थान में हो जाय तो देवप्रतिष्ठाकाल में यदि कोई पूर्वोक्त दोष हो भी तो उन सबकी शान्ति हो जाती है।।२९।।

नारदमते लग्नशुद्धिः

चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने।
शुभलग्ने शुभांशे च कर्तुर्न निधनोदये ॥३०॥
राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः।
शुभग्रहयुते लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥३१॥
राशिः स्वभावजं हित्वा फलं ग्रहजमाश्रयेत्।
नारदस्य मते लग्नशुद्धिरेवं प्रकीर्तिता ॥३२॥

संस्कृतभावार्थः—चन्द्रतारयोः बलवत्वे शुभदिनपूर्वार्द्धे शुभग्रहस्य लग्नगत्वे नवांशगत्वे वा प्रतिष्ठाकार्यं शुभं भवति। इदं तु ध्यातव्यं यल्लग्नः नवांशो वा यजमानराशिलग्नाभ्यां अष्टमो न स्यात्। शुभग्रहयोगे तद्दृष्टौ वा सर्वे राशयः ग्राह्या भवन्ति। यस्मिन् राशौ शुभग्रहस्य दृष्टियोगो वा भवति स राशिः स्वकीयं स्वाभाविकं गुणं त्यक्त्वा शुभग्रहतुल्यमेव फलदं भवति।।३०-३२।।

नारद के मत में लग्नशुद्धि का प्रकार—चन्द्रमा और तारा बलवान हों, शुभ दिन के पूर्वार्ध में शुभ ग्रह का लग्न एवं नवांश हो तो प्रतिष्ठाकार्य शुभ होता है, ध्यान रहे कि वह लग्न अथवा नवांश यजमान के राशिलग्न से अष्टम न हो। शुभ ग्रह के योग या उसकी दृष्टि होने पर सभी राशियाँ ग्राह्य हो जाती हैं। जिस राशि के ऊपर शुभ ग्रह की दृष्टि या योग हो, वह राशि अपने स्वाभाविक गुण को छोड़कर शुभ ग्रह-सम्बन्धी फल को देती है।।३०-३२।।

---

१. **वसिष्ठमते**—
चरोदये लग्नगते न कार्यं संस्थापनं नैव चरांशकेऽपि।
चरोऽपि मुख्यः सकलांशकश्च सदा मृदुत्वात् सुरसन्निवेशे।।

वसिष्ठमते दुष्टलग्नपरिहारः

एकोऽपि जीवो बलवान् तनुस्थः
सितोऽपि सौम्योऽप्यथवा बली चेत्।
दोषानशेषान् विनिहन्ति सद्यः
स्कन्दो यथा तारकदैत्यवृन्दम् ॥३३॥

संस्कृतभावार्थः—गुह्यो यथा तारकासुरं जघान तथैव गुरुशुक्रबुधेषु बलवत्सु लग्नस्थेषु सम्पूर्णदोषाः परिह्रियन्ते।।३३।।

वसिष्ठ के मत से दुष्ट लग्न का परिहार—जिस प्रकार कार्तिकेय ने तारकासुर आदि दैत्यसमूह का विनाश किया था, उसी प्रकार यदि वृहस्पति, शुक्र अथवा बुध बलवान होकर लग्न में स्थित हों तों सम्पूर्ण दोषों का विनाश करते हैं।।३३।।

गुणाधिकतरे लग्ने दोषाल्पत्वतरे यदि।
सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टोऽर्थसिद्धिदम् ॥३४॥

संस्कृतभावार्थः—अधिकगुणे न्यूनदोषे च लग्ने प्रतिष्ठाकरणात् मनुष्यः मनोवाञ्छितं फलं लभते।।३४।।

जिस लग्न में गुण अधिक और दोष कम हों, उसमें प्रतिष्ठा करने वाले मनुष्य को मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है।।३४।।

प्रतिष्ठादोषाः

अर्थहीनाऽथ कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम्।
श्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥३५॥

संस्कृतभावार्थः—द्रव्यहीना प्रतिष्ठा यजमानम्, मन्त्रहीनं आचार्यं, लक्षणहीना लक्ष्मीं नाशयति। अतः विधिपूर्वकप्रतिष्ठा कार्या। विधिहीना हि सा सर्वानर्थकरी भवति।।३५।।

प्रतिष्ठा के दोष—द्रव्यहीन प्रतिष्ठा यजमान का, मन्त्रहीन प्रतिष्ठा आचार्य का और लक्षणहीन प्रतिष्ठा लक्ष्मी का नाश करती है, इसलिये विधिहीन प्रतिष्ठा विनाशकारिणी होती है।।३५।।

वास्तुराजवल्लभे दिग्विचारः

ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहाः पूर्वापरास्याः शुभाः
प्रोक्तौ सर्वदिशामुखौ शिवजिनौ विष्णुर्विधाता तथा।
चामुण्डाग्रहमातरो धनपतिर्द्वैमातुरो भैरवो
देवो दक्षिणदिङ्मुखः कपिवरो नैर्ऋत्यवक्त्रो भवेत् ॥३६॥

संस्कृतभावार्थः—ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रसूर्यगुहाः पूर्वाभिमुखाः पश्चिमाभिमुखा वा प्रति-

ष्ठाप्याः। शिवजिनविष्णुब्रह्माणां कामपि दिशमभिसम्मुखाः स्युः। सूर्यादिग्रहचामुण्डामातृका-कुबेरगणेशभैरवाः दक्षिणमुखाः स्युः। हनूमांश्च नैर्ऋत्यमुखः प्रतिष्ठाप्यः।।३६।।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार प्रतिष्ठा की दिशा—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय की पूर्व अथवा पश्चिममुख स्थापना करें; अथवा शिव, जिन, विष्णु, ब्रह्मा—इनका मुख किसी भी दिशा में किया जा सकता है। सूर्यादि ग्रह, चामुण्डा, मातृगण, कुबेर, गणेश, भैरव की स्थापना दक्षिणमुख तथा हनुमानजी की नैर्ऋत्यमुख स्थापना करनी चाहिये।।३६।।

इति प्रतिष्ठाप्रकरणम्

•

गृहपिण्डसारणी

दीर्घ	१५	१७	१७	१९	१९	२१	२१	२३	२३	२३
विस्तार	१३	१३	१५	१५	१७	१९	२१	१९	२१	२३
पिण्ड	१९५	२२१	२५५	२८५	३२३	३९९	४०१	४३७	४८३	५२९
आय	३	५	७	५	३	७	१	५	३	१
वार	५	१	६	३	२	७	७	६	७	१
अंश	९	३	९	९	३	९	९	३	९	६
द्रव्य	१२	४	१२	१२	४	१२	१२	४	१२	८
ऋण	१	७	५	७	१	५	३	७	१	३
ऋक्ष	२१	१३	१५	१२	१९	६	१८	१३	३	२०
तिथि	१५	१३	१५	१५	४	१२	३	१	९	२
योग	२४	२०	२१	६	२३	३	९	२०	१५	१०
आयुः	१२०	८८	१२०	१२०	६४	७२	४८	१६	२४	३२
दीर्घ	२५	२५	२५	२७	२७	२७	२९	३१	२९	३१
विस्तार	२१	२३	२५	२३	२५	२७	२५	२७	२९	२५
पिण्ड	५२५	५७५	६२५	६२१	६७५	७२९	७२५	७८३	८४१	७७५
आय	५	७	१	५	३	१	५	७	१	७
वार	७	२	४	३	६	२	१	५	२	३
अंश	९	३	६	९	९	९	३	९	६	६
द्रव्य	१२	४	८	१२	१२	१२	४	१२	८	८
ऋण	७	५	३	७	१	३	७	५	३	५
ऋक्ष	१५	१०	५	२७	२७	२७	२२	२७	५	१७
तिथि	१५	१०	५	३	१५	१२	१०	९	८	५
योग	२१	५	१६	२७	२७	२७	११	२७	१६	२२
आयुः	१२०	४०	८०	४८	१२०	७२	४०	२४	८	८०

गृहपिण्डसारणी

दीर्घ	३१	३१	३१	३३	३३	३३	३३	३५	३५	३४
विस्तार	२७	२९	३१	२७	२९	३१	३३	२९	३१	३३
पिण्ड	८३७	८९९	९६१	८९१	९५७	१०२३	१०८९	१०१५	१०८५	१११५
आय	५	३	१	३	५	७	१	७	५	३
वार	१	६	४	४	३	२	१	७	७	७
अंश	९	३	६	९	९	९	९	६	३	९
द्रव्य	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	८	४	१२
ऋण	७	१	३	१	७	५	३	५	७	१
ऋक्ष	२७	१०	२०	२७	१५	३	१८	२०	१३	६
तिथि	६	७	८	३	६	९	१२	५	१०	१५
योग	२७	५	१०	२७	२१	१५	९	१०	२०	३
आयुः	९६	१२	८	४८	९६	२४	७२	८०	४०	१२०
दीर्घ	३५	३७	३७	३७	३६	३९	३९	३९	३९	४१
विस्तार	३५	३१	३३	३५	३७	३३	३५	३७	३९	३३
पिण्ड	१२८५	११४७	१२२१	१२९५	१३६९	१२८७	१३६५	१४४३	१५२१	१३५३
आय	१	३	५	७	१	७	५	३	१	१
वार	७	५	६	७	१	५	७	२	४	४
अंश	६	६	९	३	६	९	९	९	९	९
द्रव्य	८	८	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	५	७	१	३	३
ऋक्ष	२६	२३	२१	१९	१७	९	१२	१५	१८	२४
तिथि	५	१०	३	१०	२	६	१४	९	३	९
योग	१३	३५	२४	२३	२२	१८	६	२१	९	१२
आयुः	८०	५६	४८	४०	३२	९६	१२०	२४	४८	२४

गृहपिण्डसारणी

दीर्घ	४१	४१	४१	४१	४३	४३	४३	४३	४३	४५
विस्तार	३५	३७	३९	४१	३५	३७	३९	४१	४३	३७
पिण्ड	१४३५	१५१७	१५९९	१६८१	१५०५	१५८१	१६७७	१७६३	१८४९	१६८५
आय	३	५	७	१	१	७	५	३	१	१
वार	७	३	६	१	७	४	१	५	२	५
अंश	६	३	९	६	३	६	९	३	६	९
द्रव्य	८	४	१२	८	४	८	१२	४	८	१२
ऋण	१	७	५	३	३	५	७	१	३	३
ऋक्ष	५	१३	२१	२	२५	११	२४	१०	२३	९
तिथि	५	१	१२	८	१०	८	६	४	२	१५
योग	१६	२०	२४	१	२६	१९	१२	५	२५	१८
आयुः	८०	१६	७२	८	४०	८	९६	६४	३२	१२०
दीर्घ	४५	४५	४५	४५	४७	४७	४७	४७	४७	४९
विस्तार	३९	४१	४३	४५	३९	४१	४३	४५	४७	४१
पिण्ड	१७५५	१८४५	१९३५	२०२५	१८३३	१९४७	२०२१	२११५	२२०९	२००९
आय	३	५	७	१	१	७	५	३	१	१
वार	३	१	६	४	५	४	३	२	१	७
अंश	९	९	९	९	९	६	३	९	६	३
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	८	४	१२	८	४
ऋण	१	७	५	३	३	५	७	१	३	३
ऋक्ष	२७	२८	९	२७	३	२६	२२	१८	१४	७
तिथि	१५	१५	१५	१५	९	११	१३	१५	२	७
योग	२७	९	१८	२७	१५	१३	१	९	७	१७
आयुः	१२०	१२०	१२०	१२०	२४	५६	८८	१२०	३२	११२

गृहपिण्डसारणी

दीर्घ	४९	४९	४९	४९	५१	५१	५१	५१	५१	५१
विस्तार	४३	४५	४७	४९	४१	४३	४५	४७	४९	५१
पिण्ड	२१३७	२२०५	२३०३	२४०१	२०९१	२१९३	२२९५	२३९७	२४९९	२६०१
आय	३	५	७	१	३	१	७	५	३	१
वार	७	७	७	७	३	४	५	६	७	१
अंश	६	९	३	६	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	८	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	१	७	५	३	१	३	५	७	१	३
ऋक्ष	८	९	१०	११	१५	२१	२७	६	१२	१८
तिथि	११	१५	४	८	३	९	१५	६	१२	३
योग	४	१८	५	१९	२१	२४	२७	३	६	९
आयु:	५६	१२०	६४	८	४८	२४	१२०	९६	७२	४८
दीर्घ	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५५	५५	५५	५५
विस्तार	४३	४५	४७	४२	५१	५३	४५	४७	४९	५१
पिण्ड	२२७९	२३८५	२४९१	२५९७	२७०३	२८०९	२४७५	२५८५	२६९५	२८०५
आय	७	१	३	५	७	१	३	१	७	५
वार	१	३	५	७	२	४	१	४	७	३
अंश	३	९	६	३	९	६	९	३	६	९
द्रव्य	४	१२	८	४	१२	८	१२	४	८	१२
ऋण	५	३	१	७	५	३	१	३	५	७
ऋक्ष	७	१८	२	१३	२४	८	९	२५	२४	३
तिथि	७	१५	८	१	९	२	१५	१०	५	१५
योग	१७	९	१	२०	१२	४	१८	२६	७	१५
आयु:	११२	१२०	८	१६	२४	३२	१२०	४०	८०	१२०

गृहपिण्डसारणी

दीर्घ	५५	५५	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५९	५९
विस्तार	५३	५५	४७	४९	५७	५३	५५	५७	४९	५१
पिण्ड	२९१५	३०२५	२६७९	२७९३	२९०७	३०२१	३१३५	३२४९	२८९१	३००९
आय	३	१	७	१	३	५	७	१	३	१
वार	६	२	३	७	४	१	५	२	७	५
अंश	३	६	९	९	९	९	९	९	३	९
द्रव्य	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२
ऋण	१	३	५	३	१	७	५	३	१	३
ऋक्ष	१९	८	२१	१५	९	३	२४	१८	१६	१५
तिथि	१०	५	१२	९	६	३	१५	१२	१३	१२
योग	२३	४	२४	२१	१८	१५	१२	९	८	२१
आयु:	४०	८०	७२	२४	९६	४८	१२०	७२	८८	७२
दीर्घ	५९	५९	५९	५९	६१	६१	६१	६१	६१	६१
विस्तार	५३	५५	५७	५९	४९	५१	५३	५५	५७	५९
पिण्ड	३१२७	३२४५	३३६३	३४८१	२९८९	३१११	३२३३	३३५५	३४७७	३५९९
आय	७	५	३	१	५	७	१	३	५	७
वार	३	१	६	४	७	६	५	४	३	२
अंश	६	३	९	६	६	९	३	६	९	३
द्रव्य	८	४	१२	८	८	१२	४	८	१२	४
ऋण	५	७	१	३	७	५	३	१	७	५
ऋक्ष	१४	१३	१२	११	१७	२१	२५	२	६	१०
तिथि	११	१०	९	८	२	३	४	५	६	७
योग	७	२०	६	१९	२२	२४	२६	१	३	५
आयु:	५६	४०	२४	८	३२	४८	६४	८०	९६	११२

गृहपिण्डसारणी

दीर्घ	६१	६३	६३	६३	६३	६३	६३	६३	६५	६५
विस्तार	६१	५१	५३	५५	५७	५९	६१	६३	५३	५५
पिण्ड	३७२१	३२१३	३३३९	३४६५	३५९१	३७१७	३८४३	३९६९	३४४५	३५७५
आय	१	५	३	१	७	५	३	१	५	७
वार	१	७	७	७	७	७	७	७	२	३
अंश	६	९	९	९	९	९	९	९	६	३
द्रव्य	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	८	४
ऋण	३	७	१	३	५	७	१	३	७	५
ऋक्ष	१४	२७	९	१८	२७	९	१८	२७	२०	७
तिथि	८	९	१२	१५	३	६	९	१२	५	१०
योग	७	२७	१८	९	२७	१८	९	२७	१०	१७
आयु:	८	२४	७२	१२०	४८	९६	२४	७२	८०	४०
दीर्घ	६५	६५	६५	६५	६५	६७	६७	६७	६७	६७
विस्तार	५७	५९	६१	६३	६५	५५	५७	५९	६१	६३
पिण्ड	३७०५	३८३५	३९६५	४०९५	४२२५	३६८५	३८१९	३९५३	४०८७	४२२१
आय	१	३	५	७	१	५	३	१	७	५
वार	४	५	६	७	१	६	१	३	५	७
अंश	९	६	३	९	६	६	९	३	६	९
द्रव्य	१२	८	४	१२	८	८	१२	४	८	१२
ऋण	३	१	७	५	३	७	१	३	५	७
ऋक्ष	२१	८	२२	९	२३	२३	१५	७	२६	१८
तिथि	१५	५	१०	१५	५	५	१२	४	११	३
योग	२४	४	११	१८	२५	२५	२१	१७	१३	९
आयु:	१२०	८०	४०	१२०	८०	८०	७२	६४	५६	४८

गृहपिण्डसारणी

दीर्घ	६७	६७	६९	६९	६९	६९	६९	६९	६९	७१
विस्तार	६५	६७	५७	५९	६१	६३	६५	६७	६९	५७
पिण्ड	४३५५	४४८९	३९३३	४०७१	४२०९	४३४७	४४८५	४६२३	४५६१	४०४७
आय	३	१	५	७	१	३	५	७	१	७
वार	२	४	५	१	४	७	३	६	२	२
अंश	३	६	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	१	३	७	५	३	१	७	५	३	५
ऋक्ष	१०	२	९	६	३	२७	२४	२१	१८	३
तिथि	१०	२	९	३	१२	६	१५	९	३	६
योग	५	१	१८	३	१५	२७	२१	२४	९	१५
आयु:	४०	३२	२४	४८	७२	९६	१२०	२४	४८	९६
दीर्घ	७१	७१	७१	७१	७१	७१	७१	७३	७३	७३
विस्तार	५९	६१	६३	६५	६७	६९	७१	५९	६१	६३
पिण्ड	४१८९	४३३१	४४७३	४६१५	४७५७	४८९९	५०४१	४३०७	४४५३	४५९९
आय	५	३	१	७	५	३	१	३	५	७
वार	६	३	७	४	१	५	२	४	२	७
अंश	६	३	९	६	३	९	६	३	६	९
द्रव्य	८	४	१२	८	४	१२	८	४	८	१२
ऋण	७	१	३	५	७	१	३	१	७	५
ऋक्ष	५	७	९	११	१३	१५	१७	४	११	१८
तिथि	२	१३	९	५	१	१२	८	१	१४	१२
योग	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२	१९	९
आयु:	३२	८८	२४	८०	१६	७२	४८	१६	१०४	७२

गृहपिण्डसारणी

दीर्घ	७३	७३	७३	७३	७३	७५	७५	७५	७५	७५
विस्तार	६५	६७	६९	७१	७३	६१	६३	६५	६७	६९
पिण्ड	४७४५	४८९१	५०३७	५१८३	५३२९	४५७५	४७२५	४८७५	५०२५	५१७५
आय	१	३	५	७	१	७	५	३	१	७
वार	५	३	१	६	४	१	७	६	५	४
अंश	३	६	९	३	६	९	९	९	९	९
द्रव्य	४	८	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	५	७	१	३	५
ऋक्ष	२५	५	१२	१९	२६	१५	२७	१२	२४	९
तिथि	१०	८	६	४	२	१५	१५	१५	१५	१५
योग	२६	१६	६	२३	१३	२१	२७	६	१२	१८
आयुः	४०	८	९६	६४	३२	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०
दीर्घ	७५	७५	७५	७७	७७	७७	७७	७७	७७	७७
विस्तार	७१	७३	७५	६५	६७	६९	७१	७३	७५	७७
पिण्ड	५३२५	५४७५	५६२५	५००५	५१५९	५३१३	५४६७	५६२१	५७७५	५९२९
आय	५	३	१	५	७	१	३	५	७	१
वार	३	२	१	७	७	७	७	७	७	७
अंश	९	९	९	६	३	९	६	३	९	६
द्रव्य	१२	१२	१२	८	४	१२	८	४	१२	८
ऋण	७	१	३	७	५	३	१	७	५	३
ऋक्ष	२१	६	८	२६	१६	६	२३	१३	३	२०
तिथि	१५	१५	१५	५	७	९	११	१३	१५	२
योग	२४	३	९	१३	८	३	२५	२०	१५	१०
आयुः	१२०	१२०	१२०	८०	११२	२४	५६	८८	१२०	३२

श्रीगणेशाय नमः

अथ शिलान्यासपद्धतिः[१]

जगदम्बावलम्बाय निरालम्बाय शूलिने।
जगत्त्रयकुटुम्बाय नमः साम्बाय शम्भवे ॥१॥

यजमानः सस्त्रीकः शुचिः प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य प्राणानायम्य शान्तिपाठादि पठित्वा कुशयवजलादीन्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्। ॐ तत्सदद्य अमुकोऽहं गृहनिर्माणाय (१) शिलान्यासं (२) करिष्ये। तत्पूर्वाङ्गत्वेन गणपतिपूजनं स्वस्तिवाचनं च करिष्य इति सङ्कल्पं कुर्यात्। मृन्मयान् वा द्वाविंशतिकलशान् आजिघ्रेति संस्थाप्य तेषु (३) मृत् पञ्च-

१. वास्तुशान्तिकरणपक्षे 'तत्रादौ सर्वोपद्रवशान्तिपूर्वकम् आयुरारोग्यपुत्रपौत्रद्विपदचतुष्पद-धनधान्यादिसमृद्धये ग्रहयज्ञसहितां वास्तुशान्ति करिष्ये' इति च सङ्कल्पयेत्।

तत उपशिलासहिताः पञ्चशिलाः पीठे संस्थाप्य ताम्रमयान्

(१) 'प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने। पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये' इति मात्स्यात् सर्वदोषापनोदफलार्थं गृहप्रारम्भ-गृहप्रवेशयोर्वास्तुशान्तिरावश्यकी। गृहप्रारम्भश्च शिलान्यासरूप एव। सवास्तुशान्तिशिलान्यासे मण्डपकुण्डादिकरणं च सति संभवे विधेयम्। मण्डपसत्त्वे सदस्य-होतृ-द्वारपालादिवरणमप्यावश्यकमिति। वास्तुशान्तिश्च केवलं पौराणिकी शिलान्यासेऽनुष्ठेया, न समुचिताया गृहप्रवेश एव विधानादिति।

(२) शिलाश्च शिरापृष्ठेषु कृतचिह्नाः पाषाणमयं चेद् गृहं तदा एकविंशत्यङ्गुलदीर्घाः-सप्तदशाङ्गुलदीर्घाः, त्रयोदशाङ्गुलदीर्घाः नवाङ्गुलदीर्घाः क्रमेण विप्रक्षत्रियवैश्यशूद्राणाम्, तथा दैर्घ्यप्रमाणार्धप्रमाणविशालाः, विशालतोऽर्धो च्छायाश्चतुरस्राः समाः श्लक्ष्णाः कार्याः। 'शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टं वर्णानुपूर्व्येण तथाऽङ्गुलानाम्। अथैकविंशद्धन-विश्व-नन्दाविस्तारके व्याससमितं तदर्धम्। तदर्धमानस्थलपिण्डिका स्यात् ऊर्ध्वादिका न्यूनतरा न कार्या' इति विश्वकर्मोक्तेः। 'एकविंशद् द्विजाग्र्याणां क्षत्राणां दश सप्त च। त्रयोदश तु वेश्यानां शूद्राणां तु नवाङ्गुलम्' इति स्मृत्यन्तराच्च। प्रासादे तु हस्तायामाः कार्याः—'प्रासादादौ विमानेन न्यस्तव्याः सुमनोहराः। चर्तुरस्राः समाः कृत्वा समन्ताद्धस्तसंमिताः' इति विश्वकर्मोक्तेः। ऐष्टकं चेद् गृहं तदा वितस्त्यायताः षडङ्गुलविस्ताराः द्वि-चतुरङ्गुलोच्छ्राया इष्टकाः कारयितव्याः। 'इष्टकाश्च सुपक्वाः स्युर्द्वादशांगुलसंमिताः। विस्तारस्य त्रिभागेण वैपुल्येन समन्विताः' इत्यग्निपुराणे (अ० ४५) उक्तेः। आयामतुल्यविस्तारकरणे चतुरंगुलस्थूलाः तदर्धविस्तारकरणे द्व्यङ्गुलस्थूला। इष्टकाः कार्याः शिलाविस्तारस्य द्विविधस्य दृष्टत्वेन इष्टकाविस्तारस्यापि तथाविधस्य ग्रहीतुमुचितत्वादिति।

(३) मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकाषायैर्गन्धवारिणा। विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च। गन्धतोयान्तरं कुर्यान्निजनामाङ्किताणुता। फलरत्नसुवर्णानां गोशृङ्गसलिलैस्ततः। चन्दनेन समालभ्य

पल्लववृक्षीयकषाय-गन्ध-गोमूत्र-गोमय-मिलितपञ्चगव्य-दुग्ध-गन्धोदकदधि-गन्धोदक-घृत-गन्धोदक-मधु-गन्धोदक-शर्करा-गन्धोदक-फल-रत्न-वृष-शृङ्गोदक-सप्तधान्य-तीर्थ-जल-गन्धान् क्रमेण प्रक्षिप्य शिलां वस्त्रेणाच्छाद्य मन्त्रैः स्नापयेत्।

तद्यथा—प्रथमं सप्तमृत्तिकोदकेन—ॐ अग्निर्मूर्द्धा० अश्वत्थप्लक्षवटोदुम्बर-वेतसमूलसंभवैः पञ्चकषायैः ॐ यज्ञायज्ञा वो अ० इति, गायत्र्या गोमूत्रेण, गन्धद्वारामिति गोमयेन, गन्धद्वारामिति गन्धोदकेन, पयः पृथिव्याम् इति मिलितपञ्चगव्येन, गन्धोदकेन, दधिक्राव्ण इति दध्ना, गन्धोदकेन, घृतवती इति घृतेन, गन्धोदकेन, मधुव्वाता इति घृतेन, गन्धोदकेन, आयंगौः इति शर्करया, गन्धोदकेन, याः फलिनीरिति फलेन परि-वाजपतिरिति रत्नोदकेन, हिरण्यगर्भ इति सुवर्णोदकेन हविष्मतीरिति वृषशृङ्गोदकेन, ओषधय इति सप्तधान्योदकेन, इमं मे इति तीर्थोदकेन, गन्धद्वारामिति गन्धोदकेन च संस्नाप्य वस्त्रेण परिमार्ज्य सुवर्णादिशलाकया कुङ्कुमादिना नन्दा-भद्रा-जया-रिक्तापूर्णेति नाम्नीषु पञ्चसु शिलासु क्रमेण (१) पद्मम् सिंहासनम् तोरणछत्रे कूर्मम्, चतुर्भुजं विष्णुं च लिखित्वा शिलानां मूलेषु अभिषेकं कुर्यात् पञ्चभिर्मन्त्रैः क्रमेण (२) आ ब्रह्मन्, ॐ भद्रं कर्णेभिः, ॐ जातवेदसे, ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते, ॐ पूर्णा दर्वि, इति।

ततः शिलानां मध्येऽभिषिञ्चेत्—ॐ नाभिर्मे १० ॐ ब्रह्म यज्ञानम्, ॐ विष्णो रराटम् ॐ नमस्ते रुद्र ॐ इमं देवाः इति मन्त्रैः। ततः शिलानां शिरस्सु (३) क्रमेण ब्रह्माणं, विष्णुम्, रुद्रम्, ईश्वरम्, सदाशिवं च क्रमेणावाह्य ततो नन्दायै नमः नन्दामावाहयामि इत्येवं भद्रा जया रिक्ता पूर्णांश्चावाह्य सम्पूज्य अग्निं प्रतिष्ठाप्य ॐ नन्दायै स्वाहा ॐ भद्रायै स्वाहा ॐ जयायै स्वाहा ॐ रिक्तायै स्वाहा ॐ पूर्णायै स्वाहा इति घृतेनाष्टोत्तरशत-मष्टाविंशत्यष्टान्यतमसङ्ख्यया हुत्वा या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा इति अष्टोत्तरशतमाहुतीः शान्त्यर्थं हुत्वा प्रोक्षणीस्थान् संस्रवान् स्थण्डिलस्योत्तरतः स्थापितकलशे निक्षिप्य (४) तेनोदकेन वस्त्रैराच्छादयेच्छिला' इति स्नानप्रकारः अग्निपुराणे (अ० ९२) उक्तः। मन्त्राश्च 'अग्निर्मूर्द्धा' इत्यादयो विश्वकर्मप्रकाशे (अ० ५ श्लो० ६४) उक्ताः।

(१) नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णा इत्याख्यासु पञ्चसु शिलासु क्रमेण पद् मं, सिंहासनं, तोरणच्छत्रे, कूर्मं, चतुर्भुजं विष्णुं च टंकेन लेखयेत्। नन्दादिशिलानां च स्थापनार्थं किञ्चित्-दधिकप्रमाणान् शिलामयानेवाधारान् कल्पयेत् ता उपशिला इत्युच्यन्ते। उपशिलासु पद्मादि निधिकुम्भस्थापनार्थं मध्ये एकैकं गर्तं कारयेत्।

(२) 'आ ब्रह्मन्निति नन्दाया भद्रं कर्णेति वै तथा। जातवेदसेति च तथा यमायत्वेतिमन्त्रकैः। पूर्णा दर्वीति पूर्णायाः क्रमेणापि समाचरेत्। मूले मध्येऽपि च तथा नाभिमेति च मन्त्रकैः। ब्रह्म यज्ञानमिति च विष्णो रराटमिति तथा। नमस्ते रुद्र इति च इमं देवेति संस्नपेत्।

(३) शीर्षे चावाहनं कुर्यात् तद्विष्णोः परमं पदम्। इदं विष्णुः समख्ये च त्र्यंबकं मूर्द्धानं दिवः' इति नन्दादिशिलानां मध्यशिरःसु अभिषेकः, शिरःसु आवाहनं चोक्तम्।

(४) 'प्रोक्ष्याः शान्तिजलैः शिलाः' इत्यग्निपुराणात् (अ० ९२) संस्रवजलैरभिषेकः।

शिलानां मूलमध्यशिरः सकुशैरभिषिच्य भूमिं संपूज्य वास्तुभूमेरीशानादिकोणेषु चतुर्हस्तं गर्तं खात्वा गोमयेनोपलिप्य तत्र सर्पाकारं वास्तुपुरुषमक्षतैर्लिखित्वा 'आवाहयाम्यहं देवं भूमिष्ठं चाप्यधोमुखम्। वास्तुनाथं जगत्प्राणं पूर्वस्यां प्रथमाश्रितम्' इत्यावाह्य ॐ वास्तोष्पते इति संपूज्य प्रार्थयेत्। ॐ वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरत प्रभो। मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा, इति।

(१) तत ईशानकोणे उपशिलां संस्थाप्य तस्या मध्यगर्ते मध्वाज्यपारदपञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं पद्मकलशं (२) गन्धपुष्पादिभिरलङ्कृतं निधाय ॐ पद्माय नमः ॐ आधारशिलायै नमः इति संपूज्य तस्य वामभागे दीपं संस्थाप्य (३) कलशोपरि प्राक्शिरसं नन्दाम् ॐ स्थिरो भव ॐ नाभिर्मे इति मन्त्रद्वयेन संस्थाप्य संपूज्य प्रार्थयेत्—'नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्। वेश्मनि त्विह सन्तिष्ठ यावच्चन्द्रार्कतारकाः। आयुः कामं श्रियं देहि देववासिनि नन्दिनी। अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या सदा वेश्मनि यत्नतः' इति। एवमेव आग्नेयादिकोणचतुष्टये मध्ये च चतुर्हस्तगर्तं खात्वा वास्तुं विलिख्य संपूज्य आधारशिलासु कलशान् संस्थाप्य तद्वामपार्श्वेषु दीपान् संस्थाप्य तत्र शिलाः संस्थाप्य संपूज्य प्रार्थयेत्—

(१) अनेन हि खननेऽपि ईशानादिक्रम एव लभ्यते। 'खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः' इत्यादि तु संपूर्णवास्तुभूमिनिखनने आरम्भस्य आग्नेये कर्तव्यताबोधकम्। शिलान्यासस्य आग्नेयोपक्रमपक्षे तत्र खननोपक्रमकर्तव्यताबोधकं वा। कन्यासिंहे तुलायां भुजंगपतिमुखं शम्भुकोणेऽग्निखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनुमकरे, ईशखातं वदन्ति। कुम्भे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं, खातं वायव्यकोणे अग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे रक्षखातम्। अस्यार्थः—सिंहकन्यातुलासु वास्तुसर्पस्य मुखमीशानकोणे भवति। अतः खातं खातस्योपक्रमः सिंहकन्यातुलाख्ये सूर्ये अग्निकोणे कार्यः। वृश्चिकादिराशित्रये संस्थे सूर्ये सर्पास्यं वायव्ये भवति, ततस्तदा ईशाने खातोपक्रमः वृषादिराशित्रये सूर्ये अग्निकोणे सर्पमुखम् नैर्ऋत्ये तदा खातोपक्रम इति। इदमपि शिल्पिशास्त्रवचनमित्यर्थं समन्ततः कर्तव्यस्य, भूमिदोषनिवारणार्थं समस्तवास्तुभूमौ कर्तव्यस्य वा खातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम्। तत्र सर्वदा दिग्विशेषस्य व्यवस्थितत्वेन काल-विशेषे दिगन्तरमनियमयितुमशक्यत्वात्। इत्थमेव सामञ्जस्ये बाध्यबाधकभावकल्पनाऽनवकाशादिति दिक्।

(२) पद्मादिनिधिकुम्भाश्च ताम्रमया मृन्मया वा विप्रादीनां क्रमेण पञ्चाङ्गुलाः, सार्द्धद्व्यङ्गुलाः, सपादांगुलाः पंच कार्याः। शूद्राणामपि सपादांगुला एव, चतुर्थमानस्यानुक्तेः ध्रुवे शिलायास्तु ततः खनित्वा कुम्भं प्रतिष्ठाप्य शराङ्गुलीयम्। विप्रादिवर्णानुगतः प्रशस्तः तदर्धमानन्तु तदर्धमानम्' इति विश्वकर्मोक्तेः। कुम्भानां पिधानानि च कार्याणि।

(३) 'ततः सुलग्ने संप्राप्ते पञ्च वाद्यानि वादयेत्। नन्दां प्रगृह्य च शिलां तथाधारशिलां न्यसेत्।।८२।। तस्योपरि न्यसेत्पद्मकलशं मन्त्रवर्जितम्। सर्वौषधिजलोपेतपारदाज्यघृतप्लुतम्।।८३।। पिहितं रत्नगर्भं च तेजोराशिभिरङ्कितम्। सदाशिवस्य रूपं च ध्यात्वा पञ्चोपचारकैः। संपूज्य दीपं विन्यस्य वामभागेऽथ गर्तके। तत्रोपरि न्यसेन्नन्दां संपूज्य च यथाविधि।।८५।। नाभिर्मेति

भद्राप्रार्थनामन्त्रः—भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि सुखदा च सदा भव। त्वामत्र स्थापयाम्यद्य गृहेऽस्मिन् भद्रदायिनि।

जयाप्रार्थनामन्त्रः—गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम्। गृहेऽस्मिन् स्थापयाम्यद्य जयां चारुविलोचनाम्। नित्यं ज़याय भूत्यै च स्वामिनी भव भार्गवि।

रिक्ताप्रार्थनामन्त्रः—रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिमुक्तिप्रदे शुभे। सर्वदा पर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिंस्तत्र नन्दिनि।

पूर्णाप्रार्थनामन्त्रः—पूर्णे त्वं सर्वदा पूर्णान् लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि धनदा सुतदा तथा। गृहाधारा वास्तुमयी वास्तुदीपेन संयुता। त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये।

ततः सदीपं पायसबलिं माषभक्तबलिं वा नन्दायै नमः इत्यादिनाममन्त्रैर्दत्त्वा शान्तिकाध्यायं च पठित्वा दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणभोजनं भूयसीं संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यादिति शिलान्यासः।

च मन्त्रेण स्थिरो भवेति वै तथा। प्रार्थनां च तथा कुर्यादागमोक्तेन मन्त्रवित्।।८६।। नन्ते त्वं।।८७।। ८८ महापद्मं न्यसेत्तत्र (आधारशिलायाम्) पूजयेद्रत्नगर्भितम्। तत्र भद्रां च संस्थाप्य पूजयेत्तं च मन्त्रकैः।।८८।। भद्रं कर्णेति च तथा स्थापयेद्वारुणैस्तथा भद्रे त्वं।।९०।।९१।। आधारोपरि विन्यस्य कलशं शंखसंज्ञकम्। कोणे संपूज्य विधिवज्जयां संस्थापयेत्ततः।।९२।। जातवेदसेति मन्त्रेण पूर्वोक्तेन च मन्त्रतः। गर्गगत्रस०।।९३।।९४।। आधारोपरि विन्यस्य विजयं कलशं ततः। रिक्तां संस्थापयेत्तत्र मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्।।९५।। त्र्यंबकं यजामहेति तथा वरुणमंत्रकैः पूजयेत्प्रार्थयेत्तद्वद्रिक्तां रिक्तार्तिहारिणीम्।।९६।। रिक्ते त्वं।।९६।। आधारे विन्यसेन्मध्ये सर्वतोभद्रसंज्ञकम्। पूर्णरत्नान्वितं पुष्टं सर्वमन्त्राभिमन्त्रितम्।।९८।। तं च संपूज्य विधिवद् ध्यात्वा तत्र सदाशिवम्। तत्रोपरि न्यसेत्पूर्णां पूर्णानन्दप्रदायिनीम्।।९९।। पूर्णा त्वं।।१००।।१०१।। पूर्णा दर्वीतिमन्त्रेण इमं देवेति वै तथा। मूर्द्धानं दिवेति तथा शान्तिमन्त्रैस्तथैव च।।१०२।। सहस्रशीर्षेति षोडशभिरग्निमीडेति वै तथा। इषे त्वोर्जे त्वेत्यग्न आयाहीति तथा पुनः।।१०३।। शन्नो देवीति मन्त्रेण स्थापयेत्प्रयतः शुचि' इति शिलानां स्थापनप्रकार उपदिष्टो विश्वकर्मप्रकाशे (अ० ५)।

इति वास्तुविधानं तु कृत्वा ताः स्नानमण्डपात्। समानीय शिलास्तत्र सूत्रधारो गुणान्वितः। तत्र दिक्साधनं कुर्यात् गृहमध्ये सुसाधिते। ईशानादिक्रमेणैव स्वर्णकुद्दालकेन तु। खनित्वा कोणदिग्भागे आग्नेये च विशेषतः। नाभिमात्रे तथा गर्ते शिलानां स्थापनं' (अ० ५ श्लो० ४२-४४) 'गृहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः। ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत्। नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णानाम्नीर्यथाक्रमम्। नंदायां पद्ममालिख्य भद्रासिंहासनं तथा। जयायां तोरणच्छत्रे रिक्तायां कूर्ममेव च। पूर्णायां च चतुर्बाहुं विष्णुं संलेखयेद् बुधः। भूर्भुवः स्वरिति तथा तासामावाहनं स्मृतम्। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईशानश्च सदाशिवः। भूतान्येतानि पञ्चैव पञ्चस्वावाहयेत्पुनः। स्नपनं च ततः कुर्याद्विधिदृष्टेन च कर्मणा इति' विश्वकर्मप्रकाशेऽभिहितम् (अ० ५-५७-६२)

अथ वास्तुशान्तिपद्धतिः

श्रीगणेशाय नमः। गृहप्रवेशदिनात् पूर्वे शुभे दिने पूर्वाह्णे यजमानः सस्त्रीकः प्राङ्मुखो दीपं प्रज्वलय्य आचमनादिदेशकालस्मरणान्ते मम पुत्रपौत्रादिसहितस्य अस्मिन् नूतनगृहे चिरकालसुखनिवाससर्वसङ्कटनानाविधरोगादिसर्वोपद्रवशान्तिसम्पदाऽऽयुरारोग्यधनधान्यद्विपदचतुष्पदपुत्रपौत्राद्यभिवृद्धिपूर्वकम् सुवर्ण-रजत-ताम्र-त्रपु-सीस-कांस्य-लोह-पाषाणाद्यष्टशल्यमेदिनीदोष-आयव्ययाद्यन्यथाभवननानाविधहिंसादोषपरिहारद्वारा एतद् गृहक्षेत्रावच्छिन्नभूम्यधिष्ठितदेवतोपरोधजनितोपसर्गनिवृत्तिपूर्वकवास्तोः शुभतासिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरस्य प्रीत्यर्थं गृहप्रवेशनिमित्तां (१) सग्रहकमखां (२) वास्तुशान्तिं गृहप्रवेशाख्यं कर्म चाहं करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं, मातृकापूजनवसोर्धारापूजनम्, आयुष्यमन्त्रजपं साङ्कल्पिकं नान्दीश्राद्धं च करिष्ये, तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं च करिष्ये तत आचार्यब्रह्मणोः अष्टानां चतुर्णां वा ऋत्विजाम् सति सम्भवे पौराणिकशान्तिकाध्यायसप्तशतीविष्णुसहस्रनामादिपाठकानाम्, गणेशग्रहवास्तुप्रभृतिमन्त्रजापकानां च सम्प्रदायगतानां वरणं कुर्यात्।

(३) मण्डपकरणे जापकानां द्वारपालानां च वरणं कुर्यात्। अस्मिन् ग्रहमुखे वास्तुशान्तिकर्मणि वृतान् ऋत्विजो मधुपर्केणार्चयिष्ये, इति संकल्प्य मधुपर्केणार्चयित्वा प्रार्थयेत्।

---

(१) 'एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समाचरेत्। प्रासादभवनाद्यानप्रारम्भे परिवर्तने पुरवेश्मप्रवेशे च सर्वदोषोपशान्तये। वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण वेष्टयेत्। रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम्। भृत्यमङ्गलवाद्यैश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्। अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं बुधः। गृहे वाऽऽयतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात्' इति हेमाद्रौ मत्स्यपुराणे गृहनिमार्णप्रवेशादौ वास्तुशांतिः सर्वाशुभनिवृत्यादिफलिका विहिता।

(२) 'कार्यारम्भेषु सर्वेषु नववेश्मप्रवेशने। ग्रहशांतिविधानेन कृत्वाऽभीष्टं समश्नुते' इति शौनकेन ग्रहयागस्यापि वास्तुशांतौ विधानात् सति संभवे ग्रहयागसहिता वास्तुशांतिः प्रकर्तव्या। ग्रहपूजनं च वास्तुदेवतापूजनपेक्षया पूर्वमेव कार्यम्। होमोऽपि ग्रहोद्देश्यको वास्तुदेवतोद्देश्यकहोमापेक्षया पूर्वमेव कार्यः ग्रहशान्तिः सकलकर्मसाधारण्येन पुण्याहवाचनादीनामिव कर्मारम्भात्पूर्वमेव अनुष्ठातुमुचितत्वात्। ततो ग्रहार्चनं वास्तुपूजाविधिमतः परम् (८/२७) इति विश्वकर्मप्रकाशे वचनात्। 'होमं कुर्याद ग्रहाणां तु स्वशाखोक्तविधानतः। वास्तुहोमे ततः कुर्यात्' (११/४०) इति तत्रैव होमेऽपि ग्रहहोमस्यैव पूर्वतोक्तेति।

(३) 'नित्यं नैमित्तिकं हित्वा सर्वमन्यत्समण्डपम्' इति शारदातिलकात्, मत्स्यपुराणे गृहप्रवेशविधिमुक्त्वा 'प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः' (२५७) इति प्रासादवास्तुशांत्युक्तविधानस्य

ब्राह्मणाः सन्तु शास्तारः पापात्पान्तु समाहिताः।
वेदानां चैव दातारः पातारः सर्वदेहिनाम्॥१॥
जपयज्ञैस्तथा होमैर्दानैश्च विविधैः पुनः।
देवानां च ऋषीणां च तृप्त्यर्थं याजकाः स्मृता॥२॥
येषां देहे स्थिता वेदाः पावयन्ति जगत्त्रयम्।
रक्षन्तु सततं ते मां जपे यज्ञे व्यवस्थिताः॥३॥
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः॥४॥
पावनाः सर्ववर्णानां विश्रुता ब्रह्मरूपिणः।
सर्वकर्मरता नित्यं वेदशास्त्रार्थकोविदाः॥५॥
श्रोत्रियाः सत्यवाचश्च देवध्यानरताः सदा।
यद्वाक्यामृतसंसिक्ता ऋद्धिं यान्त्यमरद्रुमाः॥६॥
अङ्गीकुर्वन्तु कर्मैतत् कल्पद्रुमसमाशिषः।
यथोक्तनियमैर्युक्ता मंत्रार्थे स्थिरबुद्धयः॥७॥
यत्कृपालोचनात्सर्वा ऋद्धयो वृद्धिमाप्नुयुः।
वास्तुयागे च मे पूज्याः सन्तु ते नियमान्विताः॥८॥
अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः।
देवध्यानरता नित्यं प्रसन्नमनसः सदा॥९॥
अदुष्टभाषणाः सन्तु मा सन्तु परनिन्दकाः।
ममापि नियमा ह्येते भवन्तु भवतामपि॥१०॥
ऋत्विजश्च यथापूर्वं शक्रादीनां मखेऽभवन्।
यूयं तथा मे भवत ऋत्विजोऽर्हणसत्तमाः॥११॥
अस्मिन् कर्मणि ये यत्र वृता गुरुमुखादयः।
सावधानाः प्रकुर्वन्तु स्वं स्वं कर्म यथोदितम्॥१२॥
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया।
सुप्रसन्नैः प्रकर्त्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम्॥१३॥

ततो यजमानः सम्पूर्णकलशहस्त आचार्यादिसहितो दीपादीनि सर्वोपकरणानि द्विजैर्ग्राहयित्वा मण्डपं सुसंस्कृतं स्थलं वा प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारेण भद्रं कर्णेभिरिति प्रविशेत्।

(अथातः शालाकर्म) ततः शुद्धे देशे प्रादेशमात्रं स्थंडिलं कृत्वा तत्र पञ्चभूसंस्कार-

---

गृहवास्तुशांतौ अतिदिष्टत्वाच्च मण्डपकरणं सति संभवे भवति। प्रासादवास्तुशांतौ च मण्डपो मात्स्ये उक्तः तदनुसृत्य मयूखादौ चोक्तः।

पूर्वकमग्निं प्रतिष्ठाप्य कुशकण्डिकां विनैव पूर्णाहुतिवदाज्यं संस्कृत्य (का० श्रौ० ४) निरूप्याज्यम् अधिश्रित्य स्रुवं कुशैः संमृज्य आज्यमुद्वास्य उत्पूय अवेश्य स्तम्भावटेषु चतुर्षु कोणेषु आग्नेयकोणादारभ्य जुहुयात्। तत्र मन्त्रः ॐ अच्युताय भौमाय स्वाहा इदमच्युताय भौमाय नमः। एवं नैर्ऋत्ये वायव्ये ईशान्ये च। गृहनिर्माणानन्तरं तु अवटाभावात् स्तम्भेष्वेव होमः। मुख्यकाले कर्माकरणे गौणकालेऽपि कर्त्तव्यमिति नियमात्। ततः स्तम्भचतुष्टयोच्छ्रयणम्। उच्छ्रितानां स्तम्भानां तु स्पर्शमात्रम् 'सिद्धे मन्त्राः प्रयोक्तव्या' इति नियमात्। तत्र मन्त्रः—

ॐ इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्द्धारां प्रतरणी वसूनाम्।
इहैव ध्रुवां निमिनोसि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षमाणा॥१॥
अश्वावती गोमती सूनृतावत्यच्छ्रयस्व महते सौभगाय।
आ त्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः॥२॥
आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह।
आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरुत॥३॥
क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम्।
अश्वावद् गोमदूर्जस्वत् पूर्णवनस्पतेरिव।
अभि नः पूर्यातारयिरिदमनु श्रेयो वसानः॥४॥ इति।

एषामेव मन्त्राणामावृत्तिः स्तम्भान्तरेषु कर्तव्या यजमानानुज्ञात आचार्यः अस्यां वास्तुशान्त्याम् आचार्यकर्म करिष्यामि इति संकल्प्य ततो दिग्रक्षणं कुर्यात्। यदत्र संस्थितं० अपक्रामन्तु भूतानि पि० २ अपसर्प०३ भूतानि राक्षसा वापि० ४ ततो 'गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्। आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णोति वै दधि। तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्। आलोड्य प्रणवेनैव प्रणवेनाभिमन्त्रयेत्। इति पञ्चगव्यं निष्पाद्य कुशैः सर्वगृहं, मण्डपकरणे मण्डपभूमिं च प्रोक्षेत्। मण्डपकरणे मण्डपाङ्गवास्तुपूजां विधाय मण्डपपूजां कुर्यात्।

ततो गृहमध्ये निर्मिते, मण्डपमध्ये वा निर्मिते कुण्डे स्थण्डिले वा अग्निं (१) प्रतिष्ठाप्य तदीशान्यां चतुरङ्गुलोन्नतां वितस्त्युन्नतां हस्तोन्नतां वा हस्तमितां वास्तुवेदिं वप्रद्वयावृतां वप्रत्रयावृतां वा कृत्वा तद्दक्षिणतो ग्रहवेदीं वितस्तिहस्तान्यतरोन्नतां हस्तमितां वप्रत्रयावृतां द्विवप्रां वा कुर्यात्। ग्रहाणां पूर्वाङ्गत्वात् प्राक्पूजनीयत्वेन पश्चाद् वास्तुपूजाया उदक्संस्थत्वापेक्षणात्। ततो ग्रहवेद्यां ग्रहान् सम्पूज्य तदीशान्यां कलशं स्थापयेत्। वेद्युपरि वितानं बध्नीयात्। अथास्मिन्वास्तुशान्तिकर्मणि कुण्डादिषु गृहे च न्यूनाधिकाङ्गतादिवास्तुदोषसंसूचितसर्वारिष्टनिवर्हणार्थवास्तुमण्डलदेवतास्थापनं पूजनमहं करिष्ये। वास्तु-

---

(१) वास्तुशास्त्रे वरदो नामाग्निः। 'वास्तुयागे प्रजापतिः' इति वास्तुतत्त्वे वचनात्प्रजापतिर्वा।

वेद्यारीशानादिकोणचतुष्के (१) आग्नेयादिक्रमेण वा शङ्कुचतुष्टयं दद्यात् (२)। तत्र मन्त्र: (वि० प्र० १४) विशन्तु भूतले नागा०, अस्मिन् गृहे तु तिष्ठन्तु आ०, प्रतिरोपणं मन्त्र-वृत्ति:। कीलकारोपणक्रमेण शङ्कुपार्श्वे भक्तबलिदानम्। तत्र मन्त्रा:। अग्निभ्योऽप्यथ स०१, नैर्ऋत्याधि २, ओं नमो वायुरक्षोभ्यो ये चा० ३, रुद्रेभ्यश्चैव सर्पेभ्यो ये चा० गृह्णन्तु सततोत्सुका: ४ इति (ईशानादिक्रमेण शङ्कुरोपणपक्षे अग्निभ्य इत्येकेनैव मन्त्रेण सर्वत्र आवृत्या बलिर्देय इति विशेष:)।

ततो वास्तुवेद्युपरि वस्त्रे कुंकुमादिना सुवर्णादिशलाकया पश्चादारभ्य प्रागन्ता उदक्संस्था: समा अङ्गुलद्वयान्तराला दश रेखा: कुर्यात् (वि० प्र० ५/१७/१८) तन्मन्त्रक्रमेण (वि० प्र० १९ २१)।

ॐ शान्तायै नम:	१	ॐ सत्यै नम:	६
ॐ यशोवत्यै नम:	२	ॐ सुमत्यै नम:	७
ॐ कान्तायै नम:	३	ॐ नन्दायै नम:	८
ॐ विशालायै नम:	४	ॐ सुभद्रायै नम:	९
ॐ प्राणवाहिन्यै नम:	५	ॐ सुरथायै नम:	१०

अथ दक्षिणारम्भा उदगन्ता: प्राक्संस्था: दशरेखा: कार्या:—तत्र मन्त्रा:।

ॐ हिरण्यायै नम:	१	ॐ प्रियायै नम:	६

(१) 'ईशान्यां चतुरस्रां चतुरङ्गुलमुच्छ्रितां हस्तमानां वेदिं कृत्वा' (आश्व० गृ० प०) इति सूत्राद्वास्तुवेदि: चतुरस्रा चतुरङ्गुलोच्छ्रिता हस्तमाना कार्या। शान्तिसार-शान्तिकमलाकर-मयूखकारादिभि: सर्वै: परिशिष्टवचनमनुसृत्य ईशान्यामेव वास्तुवेदिकरणमुक्तम्। 'गर्तस्योत्तरपूर्वेण स्थण्डिलं हस्तमात्रकम्। द्विवप्रवतुरस्रं च वितस्त्युच्छ्रायसम्मितम्' इति पूजार्थवादिनिर्माणस्य ईशान्यामुक्तेश्च। सर्वशान्तिकपौष्टिकानां नवग्रहमखविकृतित्वेन वास्तुशान्तेरपि ग्रहमखविकृतित्वादी शान्यामेव वास्तुवेदिकरणं युक्तम्। पूर्वतो वेदिकरणं तु निर्मूलमेव। ग्रहवेदीश्च वास्तुवेदितो दक्षिणत: कार्या, वास्तुवेदिश्च तदुत्तरत:। ग्रहाणां पूर्वाङ्गत्वात् प्राक्पूजनीयत्वेन पश्चाद्रुद्रपूजाया उदक्संस्थत्वापेक्षणात्। अत एव 'अथ प्रधानादपि यत्र पूर्वं महाधिवासश्च तदा प्रधानम्। ईशानदेशे च ततस्त्ववाच्यां श्रीखेटवेदि: कवितस्तृतोच्चा' इति कुण्डरत्नावल्यामुक्तम्। भट्टकृतमहारुद्रपद्धतौ च 'महारुद्रवास्तुशान्त्यादौ प्रधानमीशान्यां तद्दक्षिणे ग्रहा' इत्युक्तम्। 'अवाङ्मुखो निपतित ईशान्यां दिशि संस्थित' इति (४/३) विश्वकर्मप्रकाशवचनमप्यत्रानुकूलमिति।

(२) 'वास्तुमण्डलकोणेषु ईशानादिक्रमेण च। शङ्कूनां रोपणं शस्तं प्रादक्षिण्येन भागत:' (वि० प्र ५/१३) इति वचनात् 'कुर्याद् वेदिं हस्तमितां चतुरस्रामुदक्प्लवाम्। तदीशानादिकोणेषु लोहकीलान् निवेशयेत्' इत्युक्तेश्च ईशानादित: शङ्कुरोपणम्। 'स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजन-कीलके। खननेऽवटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचर' इति वचनादाग्नेयादिति केचित्। शङ्कवश्च सार-दारुमया इति श्लोकशुल्वे। 'कुर्याद्विविदम्' इत्युक्तवचनाल्लोहमया वा इत्यपि जीर्णसंप्रदाय:।

ॐ सुव्रतायै नम:	२	ॐ जयायै नम:	७
ॐ लक्ष्म्यै नम:	३	ॐ कलायै नम:	८
ॐ विभूत्यै नम:	४	ॐ विशोकायै नम:	९
ॐ विमलायै नम:	५	ॐ इडायै नम:	१०

ईशानकोणपदादारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण तण्डुलपुञ्जेषु पूगीफलेषु वा (१) शिख्यादि पञ्चचत्वारिंशद् देवता: स्वस्वपदेषु प्रणवव्याहृतिभिस्तत्तन्नाम्ना (२) आवाह्य स्थापयेत् ॐ तमीशानम् (३) अवाहयाम्यहं देवं रक्तवर्णं सुशोभनम्। शिखिनं ज्वलनप्रख्यं नागहारविभूषितम्।।१।। ईशानकोणपदे रक्तवर्णे वास्तो: शिरसि ॐ भू० शिखिने नम:।।१।। ॐ महां २ इन्द्र:० (४) आवाहयाम्यहं देवं पर्जन्यं पीतवर्णकम्। चतुर्वक्त्रं महौजस्कं चतुर्बाहुविभूषितम्। तद्दक्षिणपदे दक्षिणनेत्रे पीतवर्णे ॐ भू० पर्जन्या०।।२।। ॐ धन्वना गा० (५) आवाहयाम्यहं देवं जयन्तं भुवनेश्वरम्। पीतवर्णं महान्तं च खड्ग-खेटकधारिणम्। तद्दक्षिणपदे तदध:पदे च दक्षिणश्रोत्रे द्विपदे पीतवर्णे ॐ भू० जयन्ताय०।।३।।

ॐ महां २ इन्द्रो० (६) 'आवाहयाम्यहं देवं महेन्द्रं च महाप्रभुम्। पीतवर्णं महाघोरं वज्रपाणिं सुरेश्वरम्'। तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणांसे पीतवर्णे ॐ भू: कुलिशायुधाय।।४।। ॐ सूर्यरश्मि० (७) आवाहयाम्यहं देवमादित्यं दिव्यतेजसम्। द्विभुजं च सहस्रांशु: सूर्याय०।।५।।

(१) वास्तुदेवतास्थापने शिख्यातिक्रम: 'शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्त: कुलिशायुध:' इत्यादिना (मत्स्यपुराणे) उक्त:। आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टेऽपि—'ब्राह्मणमादित: कृत्वाऽदित्यन्तमेके' इति शिख्यादिक्रममुक्त्वा उक्तम्। अत एवात्र एकग्रहणात् ब्रह्मादिक्रमेऽनादरता प्रदर्शिता। मयूखशान्तिसार-शान्तिकमलाकरादिभिरपि अयमेव क्रमोऽङ्गीकृत:। शारदातिलके परं 'ब्रह्माणं पूजयेदादौ' इत्यादिना ब्रह्मादिक्रम उक्त:।

(२) वास्तुपूजनं वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रै: समुच्चितै: प्रणवव्याहृतियुतै: 'ॐ भुर्भुव:स्व: शिखिने नम:' इत्याकारकैर्विधेयम्, शिख्यादिपञ्चचत्वारिंशद्देवांस्तत्र प्रपूजयेत्। वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रै: प्रणवव्या-हृतिभिस्तथा (५/१०) इति विश्वकर्मप्रकाशे वचनात्।

(३) ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे व्ययम्। पूषानो तथा व्वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्ध: स्वस्तये २५/१८।

(४) ॐ महाँऽ इन्द्रो च अजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव। स्तोमैर्व्वत्सस्य व्वावृधे।

(५) ॐ धन्वना गा धन्वताऽजिं जयेम धन्वना तीव्रा: समदो जयेम। धनु: शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वा: प्रदिशो जयेम्।

(६) ॐ महाँ इन्द्रो वज्रहस्त: षोडशी शर्म यच्छतु। हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि।

(७) ॐ सूर्यरश्मिर्हरिकेश: पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँऽअजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे याति व्विद्वान्त्सम्पश्यन् विश्वा भुवनानि गोपा:।

(८) ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।

ॐ व्रतेन दीक्षाम्० (८) आवाहयाम्यहं देवं सत्यं सत्यैकदैवतम्। शुक्लाभं शुक्लवर्णं च शुक्लमालाविभूषितम्। तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणप्रवाहौ शुक्लवर्णे ॐ भूः सत्याय०।। ॐ भद्रं क० (१)। आवाहयाम्यहं देवं भृशं च परमेश्वरम्। कृष्णाब्जं नीलकण्ठञ्च चतुर्बाहुं सुरेश्वरम्। तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणकूपरि कृष्णवर्णे ॐ भूः भृशाय।।७।। ॐ व्व्य र्ठ० सोम० (२)। आवाहयाम्यहं देवमाकाशञ्च महाबलम्। शब्दब्रह्मपरं देवं हेमञ्च कृष्णसन्निभम्। तद्दक्षिणोपरिस्थितैकपदे दक्षिणप्रवाहौ कृष्णवर्णे ॐ भूः आकाशाय।।८।।

ॐ आ वायो० (३) आवाहयाम्यहं देवं देवदेवं महाजवम्। जगद्रूपं जगद्व्याप्तं स्थितिसंहारकारकम्। दक्षिणाग्नेयकोणपदे दक्षिणप्रवाहौ धूम्रवर्णे—ॐ भूः वायवे नमः।।९।। ॐ पूषन्तव० (४) आवाहयाम्यहं देवं पूषणं महसाम्पदम्। जगन्नेत्रं महान्तञ्च स्थितिसंहारकारकम्। तत्पश्चिमैकपदे दक्षिणमणिबन्धे रक्तवर्णे ॐ भूः पूष्णे नमः।।१०।। सविता प्रथमे (५) आवाहयाम्यहं देवं वितथं दिव्यतेजसम्। ब्रह्मरूपं जगन्नाथं चतुर्वक्त्रं प्रजापतिम्। तदधः—द्विपदे दक्षिपार्श्वे शुक्लवर्णे ॐ भू० वितथाय।।११।। ॐ सविता त्वा (६)। आवाहयाम्यहं देवं पीतवर्णं गृहक्षतम्। कमलाक्षं चतुर्बाहुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्। तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणपार्श्वे पीतवर्णे ॐ भूः गृहक्षताय नमः।।१२।। ॐ यमाय त्वा० (७) अहमावाहयिष्यामि यमं महिषवाहनम्। ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं भैरवं रक्तलोचनम्।। तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणोरौ कृष्णवर्णे ॐ भूः यमाय०।।१३।। ॐप्र तद्वोचे० (८)। अहमावाहयिष्यामि गन्धर्वगणशोभितम्। गीतनृत्यसमायुक्तं सुगन्ध-कुसुमान्वितम्। तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणजानुप्रदेशे रक्तवर्णे ॐ भूः गन्धर्वाय।।१४।।

ॐ सुपर्णः पार्ज्जन्यः० (९)। आवाहयाम्यहं देवं भृङ्गं च परमेश्वरम्। तृष्णाङ्गं

(१) ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।

(२) ॐ व्वय सोम व्रते मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः शचेमहि।

(३) ॐ आ वायो भूष शुचिया उपनः सहस्रं ते नियुतो व्विश्ववार। उपो तेऽअन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं व्वायवे त्वा।

(४) ॐ पूषन्तव व्रते व्वयं न रिष्येम कदाचन। स्तोतारस्त ऽइह स्मसि।

(५) ॐ सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीय व्वायुस्तृतीयऽ आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऽ ऋतुः षष्ठे मरुजः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो नवमे व्वरुणे दशमऽ इन्द्रऽ एकादशे व्विश्वे देवा द्वादशे।

(६) ॐ सविता त्वा सवाना सुवतामग्निर्गृहपतीनां सोमो व्वनस्पतीनाम्। बृहस्पतिर्व्वाच ऽइन्द्रो ज्येष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो व्वरुणो धर्मपतीनाम्।

(७) ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे।

(८) ॐ प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो वाम व्विभृतं गुहा सत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहाऽस्य यस्तानि व्वेद स पितुः पिताऽसत्।

(९) ॐ सुपर्णः पार्जन्यऽ आतिर्व्वाहसो दर्व्विदा ते व्वायवे बृहस्पतये व्वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलजऽ आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः।

नीलकण्ठञ्च चतुर्बाहुं महद्युतिम्। तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणजंघायां कृष्णवर्णे ॐ भूः भृङ्गराजाय।।१५।। ॐ तद्विष्णोः (१) प० ११।। अहमावाहयिष्यामि मृगं च परमेश्वरम्। सुवर्णाभं नीलकण्ठं चतुर्बाहुं सुशोभनम्। तत्पश्चिमोपरिस्थैकपदे दक्षिणस्फिचि पीतवर्णे ॐ भूः मृगाय नमः।।१६।। ॐ पितृभ्यः स्व० (२) अहमावाहयिष्यामि पितरञ्च सुधाकृतिम्। उद्दीप्य लोके तिष्ठन्तं चन्द्रार्कसदृशद्युतिम्।। तत्पश्चिमे नैर्ऋत्यकोणपदे पादयोः रक्तवर्णेषु ॐ भूः पितृभ्यो नमः।।१७।। ॐ द्रविणोदाः पि० (३) आवाहयाम्यहं देवं विभुं दौवारिकं तथा। जीवरूपं त्वयैकेन यदिदं धार्यते जगत्। तदुत्तरैकपदे वामस्फिचि रक्तवर्णे ॐ भूः दौवारिकाय नमः।।१८।। ॐ सुषुम्णः सूर्यः (४)। अहमा-वाहयिष्यामि सुग्रीवं शुक्लवर्णकम्। पिङ्गनेत्रं महास्थूलं भैरवं तीक्ष्णदंष्ट्रकम्। तदुत्तरपदे तत्राक्पदे च वामजङ्घायां शुक्लवर्णे ॐ भूः सुग्रीवाय नमः।।१९।।

ॐ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा० (५)। अहमावाहयिष्यामि पुष्पदन्तं सुशोभनम्। रक्ताभं रक्तवर्णञ्च रक्तमालाविभूषितम्।। तदुत्तरपदद्वये वामजानौ रक्तवर्णे०। ॐ भूः पुष्पदन्ताय नमः।।२०।। ॐ इमम्मे० (६)। आवाहयाम्यहं देवं वरुणं कमलेक्षणम्। शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लमालाविभूषितम्। तदुत्तरपदद्वये वामोरौ शुक्लवर्णे ॐ भूः वरुणाय नमः।।२१।। ॐ ये रूपाणि० (७)। आवाहयाम्यहं देवमसुरञ्च मरुत्प्रियम्। पीतरक्तं महारौद्रमसुरं दैत्यमङ्गलम्। तदुत्तरपदद्वये वामपार्श्वे पीतवर्णे ॐ असुराय०।।२२।। ॐ असवे स्वाहा० (८) अहमावाहयिष्यामि शोषं च कृष्णवर्णकम्। रक्ताम्बरं विशालाक्षं यज्ञमूर्त्तिं

(१) ॐ तद्विष्णोः परमं पदर्ठ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।

(२) ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन्नि पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्।

(३) ॐ द्रविणोदाः धिर्पीपति जुहोत व्व च तिष्ठत। नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत।

(४) ॐ सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। सनऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा व्वाट् ताभ्यः स्वाहा।

(५) ॐ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽत्रमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहाऽऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा संव्वत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा व्वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहाऽऽदित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा व्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः व्वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा।

(६) ॐ इमम्मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके।

(७) ॐ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽअसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्य-ग्निष्टॉल्लोकान्प्रणुदात्यस्मात्।

(८) ॐ असवे स्वाहा व्वसवे स्वाहा व्विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहा व्विभुवे स्वाहाऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सर्ठ० सर्पाय स्वाहा चन्द्राय ज्योतिषे स्वाह मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा।

सुरेश्वरम्। तदुत्तरपदद्वये वामपार्श्वे कृष्णवर्णे ॐ भूः शोषाय०।।२३।। ॐ सूर्य्यरश्मि० (१)। अहमावाहयिष्यामि पापं यक्ष्माणमेव च। पापरूपं पीतवर्णं पापकर्मरतं सदा। तदुत्तरोपरिस्थैकपदे वाममणिबन्धे पीतवर्णे ॐ भूः पापाय नमः।।२३।। ॐ शिरो मे० (२)। अहमावाहयिष्यामि रोगं रोगेण सन्निभम्। रक्ताक्षं रक्तवर्णं च रक्तमालाविभूषितम्।। तदुत्तरे वायव्यकोणपदे वामप्रवाहौ रक्तवर्णे ॐ भूः रोगाय नमः।।२५।।

ॐ नमोऽस्तु सर्पे० (३)। अहमावाहयिष्यामि अनन्तं वासुकिन्तथा। कालं कर्कोटकं चैव कुण्डलीकृष्णपिङ्गलम्।। तत्रागेकपदे वामप्रवाहौ रक्तवर्णे ॐ भूः अहये नमः।।१६।। ॐ इषे त्वोर्ज्जे० (४)। अहमावाहयिष्यामि मुख्यं देवं महाबलम्। अरुणश्मश्रुकेशान्तं त्रिनेत्रं चैव षड्भुजम्। तत्राक्पदे ततोऽपि दक्षिणे चेति पदद्वये रक्तवर्णे ॐ भूः मुख्याय नमः।।२७।। ॐ बण्महाऽ असि० (५)। अहमावाहयिष्यामि भल्लाटं धूम्रलोचनम्। कृष्णवर्णं विशालाक्षं यज्ञकर्तुर्वरप्रदम्। तत्राक् पदद्वये वामबाहौ कृष्णवर्णे ॐ भूः भल्लाटाय नमः।।२८।। ॐ व्यर्ठ० सोम (६) अहमावाहयिष्यामि सोमं च सौम्यदैवतम्। अमृतस्राविणं देवं सर्वलोकोपकारकम्। तत्राक्पदद्वये श्वेतवर्णे ॐ भूः सोमाय०।।२९।। ॐ उदुत्यं० (७)। आवाहयाम्यहं देवमुरगं रत्नभूषितम्।। तत्राक्पदद्वये वामांसे कृष्णवर्णे वर्षाय०।।३०।। ॐ उत नो० (८)। अहमावाहयिष्यामि अदितिञ्च सुरेश्वरीम्। मातरं सर्वदेवानां पीतवर्णां सुशोभनाम्। तत्राक्पदद्वये वामश्रोत्रे पीतवर्णे ॐ भूः अदितये नमः।।३१।।

ॐ अदितिर्द्यौ० (९) अहमावाहयिष्यामि दितिं चैव सुरेश्वरीम्। पीतवर्णां महाकायां सर्वदा नवमातरम्। तत्रागेकपदे वामनेत्रे पीतवर्णे ॐ भूः दित्यै नमः।।३२।। ततः

---

(१) ॐ सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयां अजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे यातिविद्वान्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः।

(२) ॐ शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि। राजा मे प्राणोऽअमृतर्ठ० सम्राज् चक्षुर्विराट् श्रोम्।

(३) ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।

(४) ॐ इषे त्वोर्जे त्वा व्वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा क स्तेनऽ ईशत माऽघशर्ठ० सो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि।

(५) ॐ बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँऽअसि। महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँऽअसि।

(६) ॐ व्वयर्ठ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि।

(७) ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं व्वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।

(८) ॐ उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज उएकपात्पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवाऽ ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ताऽअवन्तु।

(९) अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवाऽऽ अदितिः पञ्च जनाऽ अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।

(१०) ॐ आपोऽ अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्व र्ठ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि।

शिखिपदाधःस्थितकोणपदे मुखे शुक्लवर्णे ॐ आपो अस्मान् ० (१०)। अहमावाहयिष्यामि आपो याः स्फटिकप्रभाः। कर्पूरसदृशाः सौम्याः क्षीरोदकपरिप्लुताः ॐ भूः अद्भ्यो नमः।।३३।। आग्नेये वायुकोणपदाधःकोणपदे दक्षिणहस्ते शुक्लवर्णे ॐ उपया० सावित्रोऽसि० (१) सवितारं स्वर्धुनीलोके विमलं च गजाननम्। एकाक्षरं शिवं सौरिं सवितारं महेश्वरम्। ॐ भूः सवित्राय०।।३४।। नैर्ऋत्ये पितृपदाधःकोणपदे मेढ्रे श्वेतवर्णे ॐ मर्माणि ते० (२) आवाहयाम्यहं देवं जयं देवेन्द्रपूजितम्। विद्युद् ध्वनिमवं भीमजवं हि विजयप्रभुम्।। ॐ भूः जयाय नमः।।३५।। वायव्ये रोगपदाधः कोणपदे वामहस्ते रक्तवर्णे ॐ सूत्रामाणं० (३)। आवाहयाम्यहं देवं रुद्रञ्च जगतः प्रभुम्। चतुर्भुजं वृषारूढं सर्वलोकनमस्कृतम्। ॐ भूः रुद्राय नमः।।३६।। ततो मध्यगतनवकोष्ठकसंलग्नपूर्वपदत्रये दक्षिणस्तने कृष्णवर्णे ॐ अर्यमणं० (४)। आवाहयाम्यर्यमणमहं देवं त्रिलोचनम्। वनस्पतिसमाकारं कृष्णवर्णं महाप्रभुम्। ॐ भूः अर्यम्णे नमः।।३७।।

तद्दक्षिणाग्नेयकोणपदे दक्षिणहस्ते रक्तवर्णे ॐ उपया० सवित्रो० (५) ॐ सवित्रे नमः। आवाहयाम्यहं देवं सवितारं दिवाकरम्। सप्ताश्वरथसंयुक्तं तमोवृन्दनिवारणम्।।३८।। तदधः पश्चिमपदत्रये जठरदक्षिणभागे शुक्लवर्णे ॐ विवस्वन्ना० (६)। अहमावाहयिष्यामि विवस्वन्तं महाबलम्। रक्तनेत्रं विशालाक्षं यज्ञमूर्तिं सुरेश्वरम्।। ॐ भूः विवस्वते०।।३९।। तत्पश्चिमनैर्ऋत्यकोणपदे वृषणयोः रक्तवर्णे—ॐ इन्द्रः सुत्रामा० (७)। अहमावाहयिष्यामि विबुधाधिपतिं प्रभुम्। नाकाधिपं सहस्राक्षं खड्गखेटकधारिणम्।। ॐ विबुधाधिपाय नमः।।४०।। तदुत्तरपदत्रये जठरवामभागे श्वेतवर्णे ॐ तन्मित्रस्य० (८)। अहमावाहयिष्यामि

---

(१) ॐ उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि च नोधाश्चनोधाऽ असि चनो मयि धेहि। जिन्व यज्ञ जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे।

(२) ॐ मर्माणि ते व्वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानु वस्ताम्। उरोर्वरीयो व्वरुणेस्ते कृणोतु जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु।

(३) ॐ सुत्रामाणं पृथिवी द्यामनेहस र्ठ सुशर्माणमदिति र्ठ प्रणीतिम्। दैवी नाव स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये।

(४) ॐ अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय। व्वाचं व्विष्णुर्ठ, सरस्वती सवितारं च व्वाजि स्वाहा।

(५) ॐ उपयामगृहोतोऽसि सावित्रोऽसि च नोधाश्चनोधाऽअसि चनो माय धेहि। जिन्व यज्ञपति भगाय देवाय त्वा सवित्रे।

(६) ॐ व्विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन्त्स्व। श्रदस्मै नरो व्वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती व्वाममश्नुतः। पुमान्पुत्रो जायते व्विन्दते व्वस्वधा व्विश्वाहाऽरपऽएधते गृहे।

(७) ॐ इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु व्विश्ववेदाः। व्वाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम।

(८) ॐ तन्मित्रस्य व्वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे। अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः संभरन्ति।

मित्रं चारुणसन्निभम्। वज्रहस्तं सुरश्रेष्ठं यज्ञकर्मवरप्रदम्। ॐ भूः मित्राय०।।४१।। तदुत्तरैकपदे वामहस्ते श्वेतवर्णे ॐ अभि गोत्राणि० (१) आवाहयामि तं देवं द्विभुजं राजयक्ष्मणम्। धनुर्वाणसमायुक्तं यज्ञकर्मवरप्रदम्। ॐ भूः राजयक्ष्मणे नमः।।४२।। तत्प्राक्पादत्रये वामस्तने रक्तवर्णे ॐ पृथिवीच्छन्दः (२) पृथ्वीधरं महत्तेजः स्फटिकच्छविमीश्वरम्। भूतनाथं महाकायं देवमावाहयाम्यहम्। ॐ भूः पृथ्वीधराय०।।४३।। तत्प्रागीशानकोणपदे उरसि शुक्लवर्णे ॐ आ ते वत्सो० (३) अहमावाहयिष्यामि आपवत्सं महाप्रभुम्। कर्पूरसदृशं सौम्यं क्षीरोदपरिपूरितम्।। ॐ भूः आपवत्साय: नमः।।४४।। मध्ये नवपदे हृदये नाभौ च अष्टदले ॐ आ ब्रह्मन्० (४) सर्वदेवप्रधानञ्च सर्वकामफलप्रदम्। अग्रतः सर्वसम्पूज्यं प्रारम्भे यज्ञकर्मणि।। ॐ भूः ब्रह्मणे नमः।।४५।। ईशान्यां धूम्रवर्णायाम् ॐ ईशावास्यम्० (५) ॐ भूः चरक्यै०।।१।। आग्नेय्यां रक्तवर्णायाम् ॐ अग्निन्दूतम् भूः ॐ विदार्यै०।।२।। नैर्ऋत्यां पीतहरितवर्णायां ॐ नमः स्रुत्याय० (६) ॐ भूः भूतनायै०।।३।। वायव्ये कृष्णवर्णायां वायव्ये वा० (७) ॐ भूः पापराक्षस्यै०।।४।। पूर्वे रक्तवर्णे ॐ यत्र बाणाः सं०। (८) ॐ भूः स्कन्दाय०।।१।। तद्दक्षिणे कृष्णवर्णे अर्यमणम्० ॐ भूः अर्यमणं० (९)।।२।।

(१) ॐ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानाऽदयो व्वीरऽशतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकठं सेनाऽ अवतु प्रयुत्सु।

(२) ॐ पृथिवी च्छन्दोऽन्तरिक्ष छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि च्छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजा च्छन्दोऽश्वश्छन्दः।

(३) ॐ आ ते व्वत्सो मनो यमत्परमा अचित्सघस्थात्। अग्ने त्वाङ्कमया अगिरा।

(४) ॐ आ ब्ब्रह्मन्-ब्राह्मणो ब्ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो व्वर्षतु फलवत्योऽनऽओषधयः पच्यतां योगक्षेमो नः कल्पताम्।

(५) ॐ ईशावास्यमिदठं० सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

(६) ॐ नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कूल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च व्वैशन्ताय च।

(७) ॐ व्वायव्व्यैर्व्वायव्यान्याप्नोति स तेन द्रोणकलशम्। कुम्भीभ्याम्मम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति।

(८) ॐ यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा व्विशिखा इव। तत्रऽ इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु व्विश्वाहा शर्म यच्छतु।

(९) ॐ अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय। व्वाचं विष्णु ठं० सरस्वतीँ सवितारं च व्वाजिनठं० स्वाहा।

(१०) ॐ सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं व्वैशन्ताभ्यो व्वैन्दंनड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय केवर्तं तीर्थेभ्यऽ आन्दं विषमेभ्यो मैनालँ स्वनेभ्यः आन्दं विषमेभ्यो मैनालँ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातठं० सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किंपूरुषम्।

पश्चिमे रक्तवर्णे ॐ सरोभ्यो० (१०) ॐ भूः जम्भकाय न०।।३।। उत्तरे वर्णे ॐ कास्विदासी० (१) ॐ भूः पिलिपिच्छाय न०।।४।। ईशा० रक्तवर्णे यमाय त्वा (२) भीमरूपाय नमः।।१।।

अग्निकोणे कृष्णवर्णे ॐ त्र्यम्बकं० (३) त्रिपुरारये०।।२।। नैर्ऋत्ये पीतवर्णे ॐ असुन्वन्त० (४) अग्निजिह्वाय०।।३।। वायव्ये ॐ वातो वा० (५) रक्तवर्णे करालाय।।४।। पूर्वे हेतुकायः ॐ हेमन्तेन ऋ० (६) कृष्णवर्णे दक्षिणे कृष्णे अग्निवेतालकाय० ॐ अग्निं दूतम् (७)। पश्चिमे कृष्णे ॐ वरुणस्योत्तम्भनम् (८)।। उत्तरे ॐ कुविन्दङ्ग० (९) पीतवर्णे० ईशानपूर्वयोर्मध्ये गन्धमाल्याय ॐ गन्धद्वारां० (१०) ज्वालास्याय० ॐ महीद्यौः बाह्यदेवताः प्रासादे ताः प्रपूजयेत्। इन्द्रादीन् दश दिक्पालांश्च पूजयेत्।

१. ॐ तमीशानं० शिखिने नमः।	१२. ॐ सविता त्वा स० गृहक्षताय नमः।
२. ॐ महाँ इन्द्र० पर्जन्याय नमः।	१३. ॐ यमाय त्वा यमाय नमः।
३. ॐ धन्वना गा:० जयन्ताय नमः।	१४. ॐ प्र तद्वोचेद० गन्धर्वाय०।
४. ॐ महाँ इन्द्रो य० कुलिशायुधाय नमः।	१५. ॐ सुपर्णः पार्जन्यः० भृङ्गराजाय०।
५. ॐ सूर्यरश्मि० सूर्याय नमः।	१६. ॐ तद्विष्णोः प० मृगाय नमः।
६. ॐ व्रतेन दीक्षाम्० सत्याय नमः।	१७. ॐ पितृभ्यः स्व० पितृभ्यो नमः।
७. ॐ भद्रं कर्णेभिः० भृशाय नमः।	१८. ॐ द्रविणोदाः पि० दौवारिकाय नमः।
८. ॐ वयठं० सोम० आकाशाय नमः।	१९. ॐ सुषुम्णः सूर्यर० सुग्रीवाय नमः।
९. ॐ आ वायो भूष० वायवे नमः।	२०. ॐ नक्षत्रेभ्यः स्वा० पुष्पदन्ताय०।
१०. ॐ पूषन्तव० पूष्णे नमः।	२१. ॐ इमम्मे व० वरुणाय नमः।
११. ॐ सविता प्रथ० वितथाय नमः।	२२. ॐ ये रूपाणि० असुराय नमः।

(१) ॐ का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किँ स्विदासीद् बृहद्वयः। का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला।

(२) ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे।

(३) ॐ त्र्यबकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।

(४) ॐ असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विदि तस्करस्य। अन्यमस्मदिच्छ सा तऽ इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु।

(५) ॐ वातो वा मनो गन्धर्व्वाः सप्तविठं० शतिः। तेऽ आग्नेऽश्वमयुञ्जंस्तेऽ अस्मिञ्जवमादधुः।

(६) ॐ हेमन्ते न ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतस्तुताः। बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे व्वयो दधुः।

(७) ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ आसादयादिह।

(८) ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो व्वरुणस्यऽऋतसदन्यसि व्वरुणस्य ऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऋतसदनमासीद।

(९) ॐ कुविन्दङ्ग यवमन्तो यवं विद्यथा दान्त्यनुपूर्वं व्वियूय। ईहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति।

(१०) ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।

२३. ॐ असवे स्वा० शोषाय नमः। ३४. आ ते वत्सो आपवत्साय०।
२४. ॐ सूर्यरश्मिह० पापाय नमः। ३५. आ ब्रह्मन्० ब्रह्मणे नमः।
२५. ॐ शिरो मे० रोगाय नमः। १. ईशा वास्यम्० चरक्यै नमः।
२६. नमोऽस्तु स० अहये नमः। २. अग्निं दू० विदार्यै०।
२७. इषे त्वोर्जे० मुख्याय नमः। ३. नमः सुत्या० पूतनायै०।
२८. उप० सावित्रो० सवित्रे नमः। ४. वायव्यैर्वा० पापराक्षस्यै०।
२९. विवस्वन्ना० विवस्वते०। १. यत्र बाणा, स्कन्दाय०।
३०. इन्द्रः सुत्रामा विबुधाधिपाय नमः। २. अर्यममण० अर्यम्णे०।
३१. तन्मित्रस्य० मित्राय नमः। ३. सरोभ्यो धै० जृम्भकाय०।
३२. अभिगोत्राणि० राजयक्ष्मणे०। ४. का स्विदा० पिलिपिच्छाय०।
३३. पृथिवी छन्दः, पृथिवीधराय०। इत्यादिभिर्मन्त्रैः।

(१) ततो वास्तुमण्डलमध्ये कलशं संस्थाप्य। (२) तत्र वरुणमावाह्य वास्तोष्पतिमूर्तेः (३) स्थापनं 'वास्तोष्पत' इति पूजनं च, (४) प्रार्थना 'यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा। तथा ब्रह्मादिदेवानां मम गेहे स्थिरो भव' इति वेद्यां वितानबन्धनम्। अथ दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्य अग्नेरुत्तरतः प्रणीतातोऽतिरिक्तमुदपात्रं प्रतिष्ठाप्य (पार० गृ० ३/४५ कर्क) श्रपयित्वा प्रोक्षण्युत्पवनान्ते आधारादिहोमात्प्राक् (पा० ३/४/५ क० हरि०) बहिर्निष्क्रम्य द्वारसमीपे गृहाभिमुखः स्थित्वा 'ब्रह्मन् प्रविशामि' इति ब्राह्मणं पृच्छेत् यजमानः। 'ॐ प्रविश' इति ब्रह्मणाऽनुज्ञातः 'ॐ ऋतं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये' इति मन्त्रेण शालां प्रविश्य स्वासने उपविश्य उपयमनकुशानादाय तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय अग्निं पर्युक्ष्य पवित्रे प्रणीतासु निधाय दक्षिणं जान्वाच्य 'इह रति'रिति षट् आहुतीराज्येन जुहुयात् (पार० ३/५/७ कर्क० हरि० (५)।

(१) ब्रह्मस्थाने ततो विद्वान् कुर्यादाधारमक्षतैः। तस्मिन् संस्थापयेत्कुम्भं बर्द्धन्या सह पूरितम्' इति वास्तुयागतत्वे वचनात्। विश्वकर्मप्रकाशे तु—'कलशे स्थापयेद्देवं वरुणं वारुणैस्ततः' (५/१७०) इत्यादिना कलशस्थापनमुक्तं, स्थानं नोक्तम्। तत्र सामान्यनियमात् ईशान्यां

(२) कलशे सर्वौषध्यादिप्रक्षेपणानन्तरं द्रव्यविशेषाः प्रक्षेप्या उक्ता वास्तुशान्तौ, ते यथा— 'वटांवटोदुम्बरस्य वेतसस्य तथैव च। अश्वत्थस्यैव मूलं च पञ्च काषायकाः स्मृताः। तुलसी सहदेवी च विष्णुक्रान्ता सतावरी। मूलान्येतानि गृह्णीयाद्वास्तुशान्तौ विशेषतः। वि. प्र०. ५/१०४-१०५ इति।

(३) वास्तुमूर्तिः सर्पाकारा कार्या—'इति प्रार्थ्य ततो भूमौ संलिखेद्वास्तुपुरुषम्। पिष्टातकैस्तण्डुलैर्वा नागरूपधरं विभुम्' इति (वि. प्र. १ अ०) वचनात्। 'गृहवास्तुं प्रवक्ष्यामि येन देवमयो भवेत्। ईशानादिनिर्ऋत्यन्तं वास्तुः सर्पः प्रकीर्तितः। इति प्रतिष्ठासरणौ सङ्गमशक्तितन्त्रधृतवनाच्च।

(४) अत्र वास्तुदेवतापूजन-बलिदान-होम-प्रतिमानिखननान्तःपरिष्टाद्युतो मुख्यः पक्षः। प्रतिमानिखननरहितो मात्स्योक्तो मध्यमः। पूजाबलिदानमन्त्रः शारदोक्तः कनिष्ठः। न च मतभेदात् सर्वेऽपि मुख्यकल्पा एवेति वाच्यम्। 'एककर्मणि गुणविशेषे फलविशेषः' (का० श्रौ०) इति न्यायेन समानफलानुत्पत्तेः।

(५) वास्तोष्पत इति मन्त्रैश्चतुर्भिर्होमः शिख्यादिहोमात्पूर्वमेव कार्य इति युक्तं पश्यामः। अत्र

ॐ इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वा०। इदमग्नये न मम १ ॐ उपसृजन् धरुणं मात्रे वरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा। इदमग्नये न मम २ ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानी० यत्वेमहे० इदं वास्तोष्पतये न मम ३ वास्तोष्पते प्रतर० रक्षेमिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व शं नो भ० इदं वास्तोष्पतये नं० ४। ॐ वास्तोष्पते शम्मया शर्ठ० सदा ते सक्षीम हिरण्मयागातुमत्या। पाहि क्षेम उतयोगे वरं नो यू० ५ (ऋ० ५/४/२१-१-१३) ॐ अमीवहा वा० इदं वास्तोष्पतये ६ (ऋ० ५/४/१२/१)। अथ ब्रह्मणाऽन्वारब्धः आधारावाज्यभागौ हुत्वा (पार० ३/४/७ हरि०) चरुमभिघार्य स्थालीपाकेन स्रुवेण षडाहुतीर्जुहुयात् (पार० ३/३/८) तत्र मन्त्राः—ॐ अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वांश्च देवानुपह्वये। सरस्वती च वाजी च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वा० इदमग्नये इन्द्राय बृहस्पतये विश्वेभ्यो देवेभ्यः सरस्वत्यै वाज्यै च न मम १ ॐ सर्वदेवजुनान् सर्वान् हिमवन्तर्ठ० सुदर्शनम्। वसूंश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैहः सह। एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वा० इदं सर्वदेवजनेभ्यो हिमवते सुदर्शनाय वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्य ईशानाय जगदेभ्यश्च नं. २।

ॐ पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ मध्यन्दिना सह। प्रदोषमर्द्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम्। एतान् सर्वान् प्र० स्वाहा, इदं पूर्वाह्णायाऽहराह्णाय मध्यन्दिनाय अर्धरात्राय व्युष्टायै देव्यै महापथायै च न मम ३ ॐ कर्त्तारं च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधींश्च वनस्पतीन्। एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वा०। इदं कर्त्रे विकर्त्रे विश्वकर्मण ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यश्च न० ४ ॐ धातारं च विधातारं निधीनां च पतिर्ठ० सह। एतान् सर्वा०। इदं धात्रे निधानां च पतये न मम ५ ॐ स्योनर्ठ० शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती सर्वाश्च देवताः स्वा०। इदं ब्रह्मणे प्रजापतये सर्वाभ्यो देवताभ्यश्च न० ६ अथ द्रव्यत्यागः—ततो ग्रहहोमं समित्तिलचर्वाज्यैः प्रत्येकं प्रतिद्रव्यमष्टसङ्ख्यया अष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यया वा विदध्यात्। ग्रहहोमे चरुहोमो वैकल्पिकः। ततोऽत्र वास्तोष्पतेः प्रधानत्वात् प्रधानान्तरस्येव आदौ होमः। तद्यथा—वास्तोष्पते प्रति जनी० चतुष्पदे स्वाहा० इति चतुर्भिः समित्तिलचर्वाज्यैः प्रति-

वास्तुशान्तौ वास्तोष्पतिदेवस्य प्रधानत्वात् प्रधानहोमस्य च पूर्वमेव न्याय्यत्वात्। परिशिष्टे— 'वास्तोष्पत इति चतसृभिश्चरुण समित्तिलपायसाज्यैः केवलाज्येन वा हुत्वा होमशेषं समाप्य' (अश्व० प०) इत्युक्तेश्च। पद्धतिकारैस्तु सर्वैः शिख्यादिहोम एव पूर्वमुक्तः तैः शिख्यादयोऽपि प्रधानत्वेनैवाङ्गीकृताः। शिख्यादिहोमानन्तरं वास्तोष्पत इति चतुर्भिर्मन्त्रैः प्रधानहोमः, ततो बिल्वहोम इति पद्धतिक्रमः। अस्माकं मते तु आदौ प्रधानहोमः ततः शिख्यादिहोमः। ततो बिल्वहोमः। प्रधानहोमश्च प्रतिद्रव्यं प्रतिमन्त्रं वा अष्टादिसंख्यया, शिख्यादिहोमश्चाष्टसंख्यया, सामान्यनियमात्। 'होमो महादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत्। अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्तिर्विधीयते। अष्टोत्तरसहस्रं वा सत्संख्या परिकीर्तिता' इति वचनात्। अथवा शिख्यादिभ्यो दश दशसंख्यया होमः कार्यः। 'इतरान् दशभिर्देवानाहुतिभिः प्रकल्पयेत्' इति वास्तुकागतत्वे रघुनन्दनधृतवचनात्। अथवा 'वास्तोष्पत इति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वा' इति सूत्रविहितहोमे सकृत्संख्या यथा गृह्यते, तद्वदत्रापि सकृत्संख्यैव ग्राह्या। तेन शिख्यादिभ्यः एकैकाऽहुतिरित्यपि पक्षो बोध्यः।

द्रव्यमष्टोत्तरशतं जुहुयात्। ततः 'अघोरेणाथ मन्त्रेण घृतेनाष्टोत्तरं शतम्। जुहुयाद्वास्तुपुंसोऽपि सन्धानार्थन्तु मर्मणाम्' इति गृह्यकारिकोक्तेः 'अघोरेभ्य' इति मन्त्रेण आज्येनाष्टोत्तरसङ्ख्यया जुहुयात्।

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः स्वा०। अयं होमः प्रधानभूतवास्तुपुरुषमुद्दिश्य विहितः, अतोऽस्यापि प्रधानत्वात् अङ्गहोमस्यादावेव कार्यः। अथ अङ्गदेवताभ्यः शिखादिभ्यो (१) वास्तुमण्डलीयेभ्यः समित्तिलचर्वाज्यानि प्रत्येकं प्रतिद्रव्यमष्टादिसङ्ख्यया जुहुयात्। (शिख्यादीनामष्टसङ्ख्यापक्षे चरक्यादिभ्यः चतुःसंख्यया होममाचरन्ति)। ॐ शिखिने स्वाहा इति नाममन्त्रो वैदिको वा मन्त्रो होमे। ततः वास्तोष्पत इति चतसृभिः ॐ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणां सत्रं सोम्यानम् द्रप्सोभेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा स्वा० (ऋ० ६/१/२४/५) इति प्रत्यृचं पञ्च पञ्च एकैकं वा घृताक्तं विल्वं जुहुयात्। ततः पूजा, स्विष्टकृत्, नवाहुतयः। ततो वास्तुमण्डलपश्चिमदेशे शिख्यादिदेवताभ्यः तत्तद्बलिः पायसबलिर्वा देयः (२) शक्तौ सत्यां सर्वेभ्यः सुवर्णेन बलिदानम्। ब्रह्मणे तु गां पयस्विनीं दद्यादिति विशेषः। चरक्यादिभ्यो माषभक्तबलिरिति कमलाकरादयः। दिक्पालबलिः। क्षेत्रपालबलिः। सार्वभौतिकबलिः—

बलिं गृह्णन्त्विमे देवा आदित्या वसवस्तथा।
मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः।।
असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः।
डाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः।।
जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा देवा विद्याधरा नगाः।
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः।।

---

(१) शिख्यादिहोमः पूजान्ते कार्यः—विश्वकर्मप्रकाशे (अ. श्लो. ५०/९९) शिख्यादि पूजनमुक्त्वा ततः कलशस्थापनं च (वि. प्र. ५/१००-१०९) उक्त्वा अनन्तरं 'होमस्त्रिमेखले कार्यः (वि. प्र० ५/११०-११२) इत्यादिना पूजनानन्तरमेव होमविधानात्।

(२) वास्तुबलिर्होमान्ते कार्यः—'होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे बलिं हरेत्। नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन सर्वतः' (विश्वकर्मप्र० ६/११३) इति वचनात्। स च बलिः—'घृतान्नं निखिले दद्यात्' (वि. क. ५/११६-१९१) इत्यादिना शिख्यादिदेवेभ्यः पृथक् पृथग्द्रव्यैर्विहितेभ्यस्तत्तद्द्रव्येण देयः। 'अथवा पायसं दद्यात् सर्वेभ्यश्च सदीपकः' (वि. प्र. ५/१३४) इति वचनात्, 'पायसं वाऽपि दातव्यं स्वनाम्ना सर्वतः क्रमात्'। नमस्कारान्तमुक्तेन प्रणवाद्येन सर्वतः' इति मात्स्यात् 'पायसान्नैर्बलिं हरेत्' इति शारदातिलकाच्च सर्वेभ्यः पायसद्रव्येण वा बलिर्देयः। आग्नेये तु बलिविशेषमभिधाय 'यजेत सकलं वास्तु दध्यक्षतकुशैर्जलैः' (अग्निपु.) इत्युक्तम्। बलिश्च कुक्कुटाण्ड प्रमाणं तु बलिरित्यभिधीयते' इति स्मृत्यर्थसारोक्तः कार्यः। सति सम्भवे—'सर्वेभ्योऽपि हिरण्यं च ब्रह्मणे गां पयस्विनीम्' (वि. प्र. ५/१३३) इति वचनात्। शिख्यादिभ्यश्चतुश्चत्वारिंशद्भ्यः सुवर्णं, ब्रह्मणे च गां तन्निष्क्रयं, वा दद्यात्।

जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः।
मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः।।
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः।
—इति विश्वकर्मप्रकाशे।

ततो नवपदे ब्रह्मस्थाने (१) पृथिवीं सुभूषितां स्त्रीरूपां ध्यात्वा 'ॐ भूर्भुवः स्वः धरायै नमः' इति विश्वकर्मप्रकाशोक्तमन्त्रेण सम्पूज्य 'ॐ सर्वदेवमयं वास्तु वास्तुदेवमयं परम्' इति पठेत्। ततो गृहं प्रागादितस्त्रिसूत्र्या रक्षोघ्नेन पवमानेन च सूक्तेन वेष्टयेत् (२) ॐ कृणुष्वपाजः प्र० प्रमृणीहि शत्रून् ५ इति रक्षोघ्नं सूक्तम्। ॐ पुनन्तु मा पितरः सोम्या० रयीणाम् इति अष्टकण्डिकात्मकं पवमानसूक्तम्। ततो दुग्धपूर्णया जलपूर्णया च स्तनकुम्भीभ्यां गृहं प्रागादितः अविच्छिन्नधाराद्वयेन सिञ्चेत् (३) सप्तधान्यबीजानि प्रक्षिपेच्च। (४) अथ यजमानः गृहस्य आग्नेये ईशानकोणात् अष्टमे आकाशपदे भूमिं जानुमात्रं खनयित्वा गोमयमृज्जलैरुपलेप्य शुक्लगन्धपुष्पादिभिरलङ्कृत्य सप्तधान्यादीनि दधि च तत्र प्रक्षिप्य जलपूर्णं गन्धादिभिरर्चितं नवं कुम्भं हस्ताभ्यामादाय जानुनी भूमौ निपात्य ॐ नमो वरुणाय इति जलेन गर्तं पूरयेत्। ततो मृन्निर्मितपेटिकायां सप्तधान्य-दधि-शैवाल-पुष्पाणि प्रक्षिप्य ब्रह्मस्थाने पूजितवृषवास्तुप्रतिमामानीय तस्यां संस्थाप्य गन्धादिभिः सम्पूज्य—

पूजितोऽसि मया वास्तो होमाद्यैरर्चनैः शुभैः।
प्रसीद पाहि विश्वेश देहि मे गृहजं सुखम्।।१।।

---

(१) 'ततः संपूजयेत्तस्मिन् सर्वलोकवसुन्धराम् सुरूपां प्रमदारूपां दिव्याभरणभूषिताम्। ध्यात्वा तमर्चयेद्देवीं परितुष्टां स्मिताननाम्' इति वास्तुयागतत्वे रघुनन्दनोक्तेः। वास्तुमण्डलमध्ये तु ब्रह्मस्थाने प्रपूजयेत्। सुरूपां पृथिवीं दिव्यरूपाभरणसंयुताम्' (वि. प्र. ५/३४) इति वचनाच्च ब्रह्मस्थाने ब्रह्मपूजोत्तरं तस्मिन्नेव पदे तदुत्तरतो धरापूजनमाचरन्ति। केचित्तु अस्मिन्नेवावसर इति।

(२) 'वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण वेष्टयेत्। रक्षोघ्नपवमानेन सूक्तेन भवनादिकम्' इति मात्स्यात्। कृणुष्वपाज इति पञ्चर्चं रक्षोघ्नसूक्तम्, पुनन्तु मा पितर इत्यादिकं नवर्चं पवमानसूक्तम्।

(३) 'बलिं च सम्यग्विधिवत्प्रयुज्य क्षीरेण धारां परितस्तु दद्यात्' इति मात्स्यात्। 'वाचयित्वा ततः स्वस्ति कर्करीं परिगृह्य च। सूत्रमार्गेण तोयस्य धारां कुर्यात्प्रदक्षिणाम्। प्रक्षिपेत्तेन मार्गेण सर्वबीजानि चैव हि' (५/८७-८८) इति विश्वकर्मप्रकाशोक्तेश्च जलदुग्धोभयधाराकरणमत्र कर्तव्यम्।

(४) 'होमशेषं समाप्याथ यजमानो वास्तुमूर्तिं रौद्रकोणेऽधोमुखीं गर्ते प्रच्छादयेत्' इति आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे (४/२) पूजितास्तु प्रतिमाया गर्ते प्रच्छादनमीशानकोणेऽभिहितम्, 'मृत्पेटिकां स्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुताम्। गृहमध्ये हस्तमात्रे गर्ते न्यासाय विन्यसेत्' इति नारदसंहितायां मृत्पेटिकायां गृहमध्ये गर्ते निधानमुक्तम्। शान्तिसारादिकारस्तु उभयैकवाक्यतया वास्तुप्रतिमां मृत्पेटिकायां निधाय गर्ते तस्या निधानमुक्तम्। अथ च वास्तुभूमेरेकाशीतिपदानि कल्पयित्वा ईशानकोणादष्टमे आकाशपदे निधानमुक्तम्, तच्च परिशिष्टोक्तसंहितोभयविरुद्धमिति चेन्न। आकाशपदस्यैव रौद्रत्वस्वीकारात्। लिङ्गतोभद्रादिमण्डले इन्द्राग्न्योर्मध्यस्य रुद्रायतनत् न त्वकथा।

नमस्ते वास्तुपुरुष भूशय्याभिरतः प्रभो।
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा।।२।।
प्रार्थयामीत्यहं देवं शालाया अधिपस्तु यः।
प्रायश्चित्तं प्रसङ्गेन गृहार्थं यन्मया कृतम्।।३।।
मूलच्छेदं तृणच्छेदं कृमिकीटनिपातनम्।
हननं जलजीवानां भूमौ शस्त्रेण घातनम्।।४।।
अनृतं भाषितं यच्च किञ्चिद् वृक्षस्य पातनम्।
एतत्सर्वं क्षमस्वैनो यन्मया दुष्कृतं कृतम्।।५।।
गृहार्थे यत्कृतं पापमज्ञानेनाथ चेतसा।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव गृहशालां शुभां कुरु।।६।।
सशैलसागरां पृथ्वीं यथा वहसि मूर्द्धनि।
तथा मां वह कल्याणसम्पत्सन्ततिभिः सह।।७।। इति।
(वि० प्र० ५/१/७)

ततः मृन्मयपिधानेन पेटिकामाच्छाद्य तस्मिन् गर्ते शनैर्निक्षिपेत्। ततः पूर्वखातमृदा पूरयेत्। गर्तोपरि भूमिं गोमयादिनोपलिप्य गन्धादिभिर्भूषयेत्। ततः प्रागादिभित्तीनामभिमर्शनम्। तत्र मन्त्राः क्रमेण—

ॐ श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेताम् १ ॐ यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेताम् २ ॐ अन्नं च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेताम् ३ ॐ ऊर्क च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेताम् ४ इति। अथ प्रागादिदिशामुपस्थानम्। तत्र मन्त्राः क्रमेण ॐ केता च मा सुकेता च पुरस्ताद् गोपायेतामित्यग्निर्वै केतोऽऽदित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यान्नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद् गोपायेतामिति १ ॐ गोपायमानं च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमानर्ठ० रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्य ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् २ ॐ दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद् गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद् गोपायेताम् ३ ॐ अस्वप्नश्च माऽनवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मात्तरतौ गोपायेताम् ४ इति। (पार. गृ. ३/४/१०-१८) ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा संस्रवप्राशनम्, पवित्राभ्यां मार्जनम्, पवित्रप्रतिपत्तिं पूर्णपात्रदानं च कृत्वा आचार्यादिभ्यो दक्षिणां (१) गां च दत्त्वा भूयसीं च दत्त्वा ब्राह्मण-

(१) वास्तुयागान्ते दक्षिणोक्ता वास्तुयागतत्त्वे—'एवं निष्पाद्य विधिना वास्तुयागं सुरोत्तम। सुवर्णं गां च वस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत्' इति। विश्वकर्मप्रकाशे च (५/२५६-२६२) 'ततस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा आचार्याय निवेदयेत्। दक्षिणां ब्रह्मणे दद्याद्यथावित्तानुसारतः। उदङ्मुखाय च ततः क्षमस्वेति पुनः पुनः। गां सवत्सां स्वर्णयुतां तथा वासोयुगान्विताम्। यज्ञान्ते आप्लुतान्वस्त्राना-चार्याय निवेदयेत्। दैवज्ञं च ततस्तोष्य स्थपतीन् वैष्णवानपि। दक्षिणां च ततो दद्याद् घृते छायां

भोजनं संकल्प्य (१) सपरिवारं यजमानमभिषिञ्चेत्।

अथ विश्वकर्मप्रकाशोक्ताः अभिषेकमन्त्राः

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च वृद्धाः पुरातनाः।
ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः।।१।।
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती।।२।।
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृति श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा।
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च।।३।।
देवपत्न्यश्च याश्चोक्ता देवमातर एव च।
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु शुभाश्चाप्सरसां गणाः।।४।।
नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः।
संवत्सरा दिनेशाश्च कलाकाष्ठालक्षणाः।।५।।
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः।
वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह।।६।।
सरितश्च महाभागा नागाः किंपुरुषस्तथा।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये।।७।।
सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः।।८।।
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्योऽथ गन्धरः।।९।।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कविः कात्यायनस्तथा।।१०।।
मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेपो विदूरथः।
और्वः संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः।।११।।
द्वैपायनो यवक्रतो देवरातश्च सानुगः।
प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः।।१२।।
पर्वतास्तरवः कल्पाः पुण्यान्यायतनानि च।
वाहनानि च रत्नानि लोकाश्चापि चराचराः।।१३।।

विलोकयेत्।' रक्षाबन्धं मन्त्रपाठं त्र्यायुषं च समाचरेत्। ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः। दीनान्धकृपणेभ्यश्च दद्याद्वित्तानुसारतः। संप्राप्नोति नरो लक्ष्मीं पुत्रपौत्रधनान्विताम्' इति।

(१) 'अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम्। गृहं न प्रविशेद्धीमान् विपदामाकरं हि तत्' इति वचनात् ब्राह्मणान् भोजयित्वा गृहप्रवेशः कार्यः।

अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम्।
एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्त्तनाश्च ये।।१४।।
तोयैरेतः पवित्रैश्च मन्त्रौषधिबलान्वितैः।
शुभैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः।।१५।।इति।

ततस्तिलकाशीर्वादं रक्षाबन्धनं त्र्यायुषं घृते छायादर्शनं च कृत्वा देवान् विसृज्य यस्य स्मृत्येत्यादि पठेत्।

अथ प्रवेशसमये गणपतिं सम्पूज्य ब्राह्मणैः कृतस्वस्त्ययनः मङ्गलतूर्यशान्तिपाठेन सजलकलशः ब्राह्मणपुरस्सरं पुत्रपौत्रकलत्रादियुतः सतोरणं सध्वजपताकं (१) गृहमागत्य द्वारसमीपे उपविश्य 'अस्मिन्पुण्याहे श्रौतस्मार्तकर्मकरणार्थं संस्कारानेकभोगैश्वर्यादिविविध-मङ्गलोदयसिद्धये एतन्नवीनगृहप्रवेशमद् क०। द्वारशाखापूजनम्। तत्र तन्मन्त्रौ—स्थापितेयं मया शाखा शुभदा ऋद्धिदाऽस्तु मे। सुपूजिता मया शाखा सर्वदा सुस्थिराऽस्तु मे १
यो धारयति सर्वेशो जगन्ति स्थावराणि च। धाता दक्षिणशाखायां पूजितो वरदोऽस्तु मे
२ ॐ धात्रे नमः। यः समुत्पाद्य विश्वेशो भुवनानि चतुर्दश। विधाता वामशाखायां स्थिरो भवति पूजितः ॐ विधात्रे नमः।

ऊर्ध्वम्—गजवक्त्र गणाध्यक्ष हे हेरम्बाम्बिकात्मज। विघ्नान् निवारयाशु त्वमूर्ध्वो-दुम्बरसंस्थितः। ॐ गणपतये नमः। अधो देहल्याम्—यस्याः प्रसादात् सुखिनो देवाः सेन्द्राः सहोरगाः। सा वै श्रीर्देहलीसंस्था पूजिता ऋद्धिदाऽस्तु मे। देहल्यै नमः। अथ द्वाराभिमुखो भूत्वा 'धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं पुत्रपौत्राभिवृद्धयेष्ट त्वामहं प्रविशाम्यद्य भगो मन्दिर ते नमः।।१।। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्त्वं मम वंशस्य मङ्गलाभ्युदयं कुरु।।२।। इत्युक्त्वा प्रविशेत्। तत्र मन्त्रः—(पार० गृ० ३/४) ॐ धर्मस्थूणाराज श्रीस्तुपमहोरात्रे द्वारफलके इन्द्रस्य गृहा वसुमन्तो वरूथिनस्तानह प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिः सह। यन्मे किञ्चिदस्त्युपहूतः सर्वगणसखायः साधु संवृतः। ताँ त्वा शालेऽरिष्टवीरागृहात्रः सन्तु सर्वतः"। इति देहलीमस्पृशन् दक्षिणपादपुरःसरमन्तः प्रविश्य प्रधानगृहमध्ये आग्नेय्यां दिशि तं कलशं संस्थाप्य अस्मिन्नूतनगृहे पुण्याहं कल्याणं श्रीरस्तु इति वाचयित्वा लक्ष्मीः सम्पूजयेत्। गृहस्य धारकं स्तम्भं पूजयेत्—धारणार्थं महाभागा निर्मितो विश्वकर्मणा। स्थापितः शुभदो नित्यं गृहभारक्षमो भव।।१।। दीपस्थाने

(१) गृहप्रवेशाङ्गत्वेन पताकादिरोपणप्रकारो विश्वकर्मप्रकाशे (१०/६८-१०१) विहितः 'वितानैस्तोरणैः पुष्पैः पताकाभिर्विशेषतः। अलंकृत्य नवं गेहं देहलीं पूजयेत्ततः। दिक्पालांश्च तथा क्षेत्रपालं ग्रामाधिदैवतान्। प्रणम्य विधिवत्पूज्य द्वारमार्गे विशेद् गृहम्। पूजयेद् गणनाथं च मातृकाश्च विशेषतः। वसोर्द्धारां पातयित्वा ग्रहांश्चैव तु पूजयेत्। वास्तुनाथं च संपूज्य ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः। गोदानं भूमिदानं च कुर्याच्चैव यथाविधि' इति। गृहेऽपि पताकाः कुण्डसिद्ध्युक्तवर्णाचिता दशकार्या इत्युक्तं विश्वकर्मप्रकाशे (१३/१०-१०५) यद् द्वारमार्गे पूर्वे तु ध्वजः षोडशहस्तकः। स्तम्भोऽस्य विधिवत् स्थाप्यः सघण्टाकिङ्किणीयुतः' इति।

दीपं प्रज्वाल्य तिमिरस्य तिरस्कर्त्ता ज्योतीरूपः सुविश्रुतः। विघ्नान्धकारनाशाय पूजयामि सुसिद्धिदम् ।। ॐ दीपाय नमः। महानस इति ख्यातो देवयज्ञादिसिद्धिकृत्। अन्नादिसाधनं स्थानं धर्ममूलं शुभप्रदम्। चुल्यां धर्माय: नमः। सम्मार्जस्थाने—पूतना शुभदा ज्येष्ठा सदा सन्धानसंस्थिता। स्थानं चोत्करसम्पत्तेरस्तु मे सर्वसिद्धिदम्। ज्येष्ठायै नमः। जल-स्थाने—शङ्खस्फटिकवर्णाभश्वेतहाराम्बरावृत। पाशहस्त महाबाहो दयां कुरु दयानिधे। वरुणाय नमः। पेषण्याम्—सौभाग्यं सुभगे देहि पेषणी संस्थिता सदा। पिष्टनिष्पादनार्थं त्वं पूजिता शुभदाऽस्तु मे।। ॐ सुभगायै नमः। उलूखले—

व्रीहीणां कण्डनं यच्च तुषाणाञ्च विमोचनम्।
त्वदधीनमतः पूजां करोमि तव सिद्धये।। रौद्रपीठायै नमः।

शय्यायाम्—

कामः कामप्रदो मेऽस्तु शयनीये सुपूजित।
पूजां गृहाण सुमुख धनधान्यसमृद्धये।। ॐ कामाय नमः।

गृहमध्ये—

मध्ये सुपूजिता देवाः सन्तु मे सर्वसिद्धिदाः ।
नश्यन्तु सर्वविघ्नानि देवानां पूजनादिह।। सर्वदेवेभ्यो नमः।

पशुस्थाने—

सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्लशङ्करः।
पशूनां पतिरस्माकं पूजितः शुभदः सदा ।। ॐ पशुपतये नमः।

एतदनन्तरं वा पूर्णाहुत्यादिविसर्जनान्तं पूर्वोक्तं कुर्यात्।

इति गृहप्रवेशः

परिशिष्टम्-१

पूर्वं ध्रुवादीनां नामानि लिखितानि ध्रुवश्च धान्यश्चेत्यादिना तत्र प्रस्तारप्रकारो रत्नमालायाम्—

स्थापयेल्लघुमधो गुरोः परं स्याद्यथोपरि तथैव पूरयेत्।
पश्चिमं च गुरुभिः पुनः पुनः सर्वलघ्ववधिरित्ययं विधिः।।

इत्यादिना ध्रुवादिगृहाणां प्रस्तारवशेन षोडशप्रकाराः सिद्ध्यन्ति। यथोक्तं रत्नमालायाम्—

प्रदक्षिणं सन्मुखादलिन्दं विधाल्लघुस्थानसमाश्रितश्च।
गृहस्य पूर्वादिगतेष्वलिन्देष्वेवं भवेयुर्दशषट्कभेदाः।। इति।

तद्यथा—

पू.द.प. उ. = ध्रुवम्		अत्रेदमवधेयम्, प्रथमभेदे ध्रुवाख्यमूर्ध्वमुखं
ऽऽ ऽ ऽ = ध्रुवम्		गृहम्। द्वितीये पूर्वद्वारं धान्याख्यं। तृतीये दक्षिण-
।ऽ ऽ ऽ = धान्यम्		द्वारं जयाख्यम्। चतुर्थे प्राग्दक्षिणद्वारं नन्दा-
ऽ । ऽ ऽ = जयम्		ख्यम्। पञ्चमे पश्चिमद्वारं खराभिधम्। षष्ठभेदे पूर्व-
। । ऽ ऽ = नन्दम्		पश्चिमद्वारं कान्ताख्यम्। सप्तमे दक्षिणपश्चिम-
ऽऽ । ऽ = खरम्		द्वारं मनोरमम्। अष्टमे पूर्वदक्षिणपश्चिमद्वारं
।ऽ । ऽ = कान्तम्		सुमुखम्। नवमे सौम्यद्वारं दुर्मुखाख्यम् ।
ऽ । । ऽ = मनोरमम्		दशमे पूर्वोक्तरद्वारमुग्राख्यम्। एकादशे याम्य-
। । । ऽ = सुमुखम्		सौम्यद्वारं रिपुदम्। द्वादशे पूर्वदक्षिणोत्तरद्वारं
ऽऽ ऽ । = दुर्मुखम्		धनदाख्यम्। त्रयोदशे पश्चिमोत्तरद्वारं नाशा-
।ऽ ऽ । = उग्रम्		ख्यम्। चतुर्दशे पूर्वपश्चिमोत्तद्वारमाक्रन्दम्।
ऽ । ऽ । = रिपुम्		पञ्चदशे याम्यपश्चिमसौम्यद्वारं विपुलाख्यम्।
। । ऽ । = वित्तदम्		षोडशभेदे चतुर्दिक्षुद्वारं विजयाख्यमिति।
ऽऽ । । = नाशम्		
।ऽ । । = आक्रान्तम्		
ऽ । । । = विपुलम्		
। । । । = विजयाख्यम्		

पिण्डानयने इष्टनक्षत्रकल्पनायां ज्योतिःसागरे—

आर्द्रादितिगुरुश्चैव सर्पश्चैव पिताभगम्। शतभं पूर्वयुग्मं च नवेष्टा गृहतारकाः।

एवमेव वास्तुप्रदीपे—'त्रिभिस्त्रिर्वेश्मनिकृत्तिकात उद्वेगपुत्राप्तिधनाप्तिशोकः। शत्रोर्भयं राजभयश्च मृत्युः सुखं प्रवासश्च नवप्रभेदा' इति।

विष्णुं व्यकायेत्यस्योपपत्तिः—

अत्र प्रथमालापघटितमेव कल्प्यते पिण्डमान = ८ या + आ, इदं पिण्डमानं पुनरष्टगुणितं सप्तविंशतिभक्तं तथा स्वरूपान्तरादिकरणेन यातं

$$\frac{\text{१० या + ८ आ}}{\text{२७}} = \frac{\text{१० या + ८ या + ८-८}}{\text{२७}} = \frac{\text{१० या + (आ-१) + ८}}{\text{२७}}$$

$$\frac{\text{१० या + ८ व्येकाय + ८}}{\text{२७}} = \frac{\text{१० या २७ + व्येकाय-१९ व्येकाय + ८}}{\text{२७}}$$

$$= \frac{\text{१० या- १९ व्येकाय + ८}}{\text{२७}}$$ = अत्र लब्धिमानं कालकं शेषं नक्षत्रसंख्यासमं तथा हरलब्धितः शेषयुतो भाज्यसमो भवतीति जातं तुल्यं पक्षद्वयम् १० या- १९ व्येकाय + ८ = २७ का + न, ततः समशोधनादिना जातं कालकमानम्

$$= \frac{\text{१० या - १९ व्येकाय + - न}}{\text{२७}} \quad \frac{\text{१० या- (१९ व्येकाय + न) + ८}}{\text{२७}}$$

अत्र यदि १९ व्येकाय + न = शे कल्प्यते सदा जातं कालकमानम्

$$= \frac{\text{१० या - शे + ८}}{\text{२७}}$$ अत्र रूपसमे धनक्षेपे १०, २७ दृढभाज्य हाराभ्यां जाते गुणलब्धी ८, ० तथा 'यदागतौ लब्धिगुणावित्यादिना ऋणक्षेपे' इदं मानं धनं भवेत्तदा पूर्वागतेनानेन ८ गुणेन गुणितं २७ तष्टमभीष्टो गुण एव 'ते भाज्यतद्धाजकवर्णमाने' इत्यादिना यावत्तावन्मानं भवति। तथात्र यदि—शे + ८ मानं ऋणं तदा द्वितीयेनानेन १९ गुणेन गुणितं २७ तष्टं शेषं यावन्मानं भविष्यति। अत्राचार्येण शे इत्यस्य मानं एकद्वित्र्यादिसंख्यातुल्यं प्रकल्प्य अभीष्टानि यावत्तावन्मानानि साधितानि तद्यथा यदि शे = तदा - शे + ८ - १ + ८ = इदं धनमतः इयं संख्या पूर्वगुणेन ८ गुणिता सप्तविंशतिभक्तजातं + २ शेषमिदमेव यावत्तावन्मानम् एवं यदि शे = २ तदा - शे + ८ = २ + ८ = ६ = धनम् तदात्रापि कुट्टकेन = २१ इदं द्विशेषे यावन्मानम् एवं यदा शे = ८। तदा - शे + ८ = ० तदा यावन्मानं शून्यसमं वा 'इष्टाहतस्वस्वहरेणे'त्यादिना सप्तविंशतिसमं भविष्यति। अथ यदि शे = ९ तदा—शे + ८ = — १ इदं ऋणात्मकम्। अत इयं संख्या द्वितीयेन गुणेना(१९)नेन गुणिता सप्तविंशतिभक्ता लब्धं यावन्मानम् = एवं मानानि आगच्छन्ति। तत एभिर्या-वत्तावन्मानैः पिण्डमानेऽस्मिन् ८ या + आ। उत्थापनेन पिण्डमानमुपपद्यते।

अथ यदि पिण्डे नक्षत्रायतक्षणयोः सप्तविंशतिनाग२७, ८तुल्ययोर्घातो निक्षिप्यते तदा लक्षणाभ्यां भक्ते क्षेपस्य निःशेषत्वात् त एव नक्षत्रायमाने आगमिष्यतस्तेन सोऽपि पिण्डो भवितुमर्हतात्युपपद्यते श्रीसुधाकरद्विवेदिकृतं 'इष्टायनन्देदुहति'रित्यादि पद्यम्।

'इष्टभात्यष्टिधाते च' इत्यस्योपपत्तिः

अत्र पिण्डमानं प्रथमं तथा कल्प्यं येन प्रथमालापो घटते इत्येतदर्थं या संख्या अष्टभिर्गुणिता रूपोनासप्तविंशतिहृता निःशेषा भवति तादृशी प्रथमा संख्या कुट्टकेन १७ अतः कल्पितं पिण्डमानं २७ या + १७ न इदमिष्टगुणं २७ भक्तं शेषमिष्टनक्षत्रमेव तेन प्रथमा लाभः स्वयं घटते। पुनरिदमष्टभिस्तष्टं प्रथमस्थाने ३ या द्वितीयस्थाने सप्तदशेष्टनक्षत्रघातोत्पत्र आय एव तज्ज्ञापकः यदि आकल्पयते तथेष्टायश्च इ आ कल्प्यते ततो जातं शेषमानं ३ या + आ इदमष्टहृतम्। अत्र कल्प्यते लब्धि = का, तथा हरलब्धिघातः इष्टायरूपशेषयुक्तो भाज्यसम इत्यनेन जातौ पक्षौ ३ या + आ = ८ का + इआ समशोधनादिना यावन्मानम् = $\frac{८ का + इआ - आ}{३}$ अत्र यदि इ आ - आ इदं ऋणात्मकं तथा का = नी + १ प्रकल्प्य जातं यावत्तावन्मानस्य रूपान्तरमिदम् =

$$\frac{८ (नी + १) + इ आ - आ}{३} = \frac{८ नी + ८ + इआ - आ}{३}$$

उभयत्र यदि भाज्यमानं त्रिभिर्निःशेषं भवति तदैव यावत्तावन्मानमभिन्नं भविष्यतीति स्पष्टम्। अतो कालकमानं नीलकमानं वा तथा कल्प्यं तथा यावत्तावन्मानभिन्नं स्यात् यतो यावत्तावन्मानेन पूर्वकल्पितपिण्ड२७या + १७ न इदं समुत्थाप्य स्फुटा पिण्डमिति बोध्येति सर्वमुपपन्नम्।

गजैस्तष्टमिष्टाङ्गं शोध्यमिति

कुट्टकेन ज्ञातं या संख्या सप्तविंशतिगुणाऽष्टभक्ता शेषं रूपमुत्पादयति सा त्रिमिता ततः कल्पितं पिण्डमानम् ८१ या + १७ न येन प्रथमालापस्य संगतिर्भवति। पुनः पिण्डमानमिदं ८१ या + १७ न अष्टभिर्भक्तं जातं या + न अस्य द्वितीयखण्डे 'न' इत्यत्र पुनर्विभक्ते शेषं = शे तथा कृते जातं या + शे इदमप्यष्टभक्तमत्र लब्धिः = का शेषमिष्टायसममिति। अत्रापि हरलब्धिघातस्य इष्टायरूपशेषयुतस्य भज्यराशिस्तुल्यत्वात् जातौ तुल्यौ पक्षौ या + शे = ८ का + इआ समशोधनादिना या + ८ का + इआ - शे अत्रापि यदि इआ - शे इदं ऋणात्मकं तदा नो + १ + का प्रकल्प्य जातं यावन्मानम् = ८ (नी+ १) + इआ - शे = ८ नी + ८ + इआ-शे यावत्तावन्मानद्वये कालकनीलकयोर्मानशून्यसमं प्रकल्प्य जातं यावत्तावन्मानम् = इआ - शे वा, ८ + इआ-शे आभ्यां यावत्तावन्मानमिदं ८१ या + १७ न समुत्थाप्य व्यक्तं पिण्डमानं ज्ञेयम्। नक्षत्रायतक्षणयोरनयो २७, ८ घातस्य २१६ रूपस्य योजनेनापि विकाराभावात् पिण्डमानमागच्छतीत्युपपन्नं सर्वम्।

नागघ्नेष्टायास्यतेदिष्टमक्षमिति

प्रथमं या संख्याऽष्टगुणिता सप्तविंशतिहृता २६ शेषमुत्पादयति तादृशी प्रथमा

संख्या कुट्टकेन ज्ञाता ६४ अतः कल्पितं पिण्डमानम् = ६४ या + इआ इदं वसुभिर्भक्तं शेषमिष्टायसमो भवतीति प्रथमालापः स्वयं घटते। पुनरिदं पिण्डमानं नागैर्गुणितं २७ भक्त जातं शेष - या + ८ इआ इदमपि सप्तविंशतिभक्तं लब्धं कलाकं शेषमिष्टनक्षत्रतुल्यं तथा शेषयुतस्य हरलब्धिघातस्य भाज्यराशिस्तुल्यत्वात् जातौ पक्षौ—या + ८ इआ = २७ का + इन अत समशोधनादिना लब्धं यावत्तावन्मानं = २७ + ८ इआ-इन यद्यत्र ८ इआ इन = ऋणात्मकं तदा नी = १ + का प्रकल्प्य यावत्तावन्मानस्य स्वरूपान्तरमिदम् = -२७ (नी - १) + ८ इआ - इन = - २७ नी + २७ + इन - इन। उभयत्र क्रमेण कालकमानं नीलकमानं च शून्येनोत्थाप्य जातं या = ८ इआ - इन वा इआ - इन + २७ ततो यावत्तावन्मानेन पिण्डमानेऽस्मिन्—६४ या + इआ उत्थापनेन पिण्डमानं सुबोधं भवति। अत्र पिण्डं नक्षत्रायतक्षणयोर्घातस्य २७ × ८ = २१६ निक्षेपणेनापि विकाराभावात् पिण्डमानं भवतीत्युपपन्नं सर्वम्।

व्यकेष्टर्क्षहताः द्विबाणशशिन इत्यादेः

कल्प्यते पिण्डमानम् = या, इदं नागैर्गुणित २७ भक्तं लब्धं कालकं प्रकल्प्य शेषं नक्षत्रमानं तथा हरलब्धिघातः शेषयुतो भाज्यराशितुल्यो भवतीति नियमात् जातौ तुल्यौ पक्षौ ८ या = $\frac{२७ का + इन}{८}$ अतः या + पुनः पिण्डमानमिदं या वसुभिर्भक्तं लब्धं नीलकं शेषमिष्टं प्रकल्प्य पुनर्जातं यावत्तावन्मानम् =

$\frac{८ नी + इआ}{१}$ अत्र यावत्तावन्माने तुल्ये अतः = $\frac{२७ का + इन}{१}$ =

८ नी + इआ समशोधनादिना जातं कालकमानम् = $\frac{६४ नी + ८ इआ - इन}{२७}$

ततः ६४, २७ दृढभाज्यहाराभ्यां रूपक्षेपे जातौ लब्धिगुणौ १९, ८ अत्र 'ते भाज्यतद्भाजकवर्णमाने' इत्यादिना गुण एव 'नीलकमानं तेन अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्न इत्यादिना रूपक्षेपीयो गुणोऽय८मिष्टक्षेपेणानेन ८ इआ-इन गणिते। जातः ६४ इआ - ८ स्वहारेणानेन २७ भक्ते जातः १० इआ-इन ततः इष्टाहतस्वस्वरेण युक्त' इत्यादिना कल्पितेष्टपीतकगुणिततद्धारेण सहितो जातं २७ पी × १० इआ-इन = नीलकमानम् नीलकमानेन यावत्तावन्माने उत्थाप्य जातं यावत्तावन्मानम् = २१६ पी + ८१ इआ - ६४ इन, अत्र कल्प्यते पीतकमानं = लो + (न -१) ततः उत्थापनेन जातं यावत्तावन्मानम्।

= २१६ लो + २१६ इन - २१६ + ८१ इआ - ६४ इन
= २१६ लो + १५२ इन - २१६ + ८१ इआ
= २१६ लो + १५२ इन - १५२ - ८१ + १७ + ८१ इआ
= २१६ लो + १५२ (इन- १) + ८१ (इआ - १) + १७

अत्रान्तिमखण्डत्रये यदि संख्या २१६तोऽधिका भवेत्तदा लोहितकस्य तथा ऋणमानं कल्प्यं यथा तन्माणगुणितभूपाश्विभी रहिता सा खण्डत्रयभवा संख्या धनात्मिका भूपाश्विभ्योऽल्पा च स्यात् । अर्थात् सा संख्या २१६भिस्तष्टाऽवशेषं तदेव पिण्डमानं ज्ञेयं तस्मिन्नेकादिगुणितभूपाश्विसमां संख्यां प्रक्षिप्यानेकधा पिण्डमान् साध्यमित्युपपन्नम्। अनयैवोपपत्त्या एकोनितेष्टर्क्षेत्यादि रामदैवज्ञकृतं पिण्डानयनमुपपद्यते।

●

परिशिष्टम्- २

गृह-समृद्धि-हेतु स्मर्यमाण वास्तुनियम

अनन्त शक्तियों से समन्वित प्रकृत प्रकृति में सृष्टि, विकास एवं प्रलय की प्रक्रिया सतत् प्रवहमान रहती है। वास्तुशास्त्र में पञ्चमहाभूतों के साथ-साथ प्रकृति की तीन शक्तियों पर भी विचार किया जाता है; वे शक्तियाँ हैं—गुरुत्व ऊर्जा, चुम्बकीय ऊर्जा एवं सौर ऊर्जा। पञ्चमहाभूत से निर्मित शरीर को सुखमय एवं स्वस्थ बनाने के लिये जिस भवन में अग्नि, आकाश, भूमि, जल एवं वायुस्वरूप पञ्चमहाभूत का यदि सम्यक् रूप से नियोजन किया जाय तो उस निर्मित भवन में निवास करने वाले प्राणी निश्चित रूप से सदा-सर्वदा शारीरिक, मानसिक एवं भौतिक रूप से समृद्ध रहते हैं। अत: भवन-निर्माण के क्रम में सर्वसाधारण के लिये कतिपय स्मर्तव्य नियमों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है, जिसका पालन करने पर निर्मित भवन एवं उसको अपना आश्रय बनाने वाले प्राणी सदैव ऊर्जावान बने रहते हैं; वे नियम निम्नवत् हैं—

१. सफेद रंग की सुगन्धित मिट्टी वाली भूमि ब्राह्मणों के लिये श्रेष्ठ मानी गयी है।

२. लाल रंग की कसैले स्वाद वाली भूमि क्षत्रिय, राजनेता, सेना व पुलिस के अधिकारियों के लिये शुभ मानी गयी है।

३. हरे या पीले रंग की खट्टे स्वाद वाली भूमि व्यापारियों, व्यापारिक स्थलों तथा वित्तीय संस्थानों के लिये शुभ मानी गयी है।

४. काले रंग की कड़वे स्वाद वाली भूमि अशुभ होती है। यह शूद्रों के लिये उपयुक्त कही गई है।

५. मधुर, समतल, सुगन्धित व ठोस भूमि भवन बनाने हेतु उपयुक्त होती है।

६. खुदाई में चींटी, दीमक, अजगर, साँप, हड्डी, कपड़े, राख, कौड़ी, जली हुई लकड़ी व लोहा मिलना अशुभ होता है।

७. भूमि का ढ़लान उत्तर व पूर्व में तथा छत की ढ़लान ईशान में शुभ होती है।

८. भूखण्ड के दक्षिण या पश्चिम में ऊँचे मकान, पहाड, टीले या पेड अशुभ होते हैं।

९. भूखण्ड से पूर्व या उत्तर की ओर यदि कोई नदी या नहर हो तथा उसका प्रवाह उत्तर या पूर्व की ओर हो तो वह भूखण्ड शुभ होता है।

१०. भूखण्ड के उत्तर, पूर्व या ईशान में भूमिगत जलस्रोत, कुआँ, तालाब व बावड़ी शुभ होती है।

११. भूखण्ड या भवन यदि दो बड़े भूखण्डों के मध्य हो तो वह अशुभ होता है।

१२. आयताकार, वृत्ताकार व गोमुख भूखण्ड गृह-निर्माण के लिये शुभ होता है। वृत्ताकार भूखण्ड में निर्माण भी वृत्ताकर ही होना चाहिये।

१३. सिंहमुखी भूखण्ड व्यावसायिक भवन-हेतु शुभ होता है।

१४. भूखण्ड का उत्तर या पूर्व या ईशान कोण में विस्तार शुभ होता है।

१५. भूखण्ड के उत्तर या पूर्व में मार्ग शुभ होता है। दक्षिण या पश्चिम में मार्ग व्यापारिक स्थल के लिये शुभ होते हैं।

१६. भवन के द्वार के सामने मन्दिर, खम्भा व गड्ढा अशुभ होते हैं।

१७. यदि आवासीय परिसर में बेसमेन्ट का निर्माण कराना हो तो उसे उत्तर या पूर्व में ब्रह्मस्थान को बचाते हुये बनाना चाहिये। बेसमेन्ट की ऊँचाई कम से कम ९ फीट होनी चाहिये तथा वह तल से ३ फीट ऊपर होना चाहिये, जिससे उसमें प्रकाश व हवा का निर्बाध रूप से आवागमन हो सके।

१८. कुआँ, बोरिंग व भूमिगत टंकी उत्तर, पूर्व या ईशानकोण में बनानी चाहिये।

१९. भवन के प्रत्येक मंजिल के छत की ऊँचाई १२ फीट होनी चाहिये; किन्तु यह १० फीट से कम कथमपि नहीं होनी चाहिये।

२०. भवन का दक्षिणी भाग हमेशा उत्तरी भाग से ऊँचा होना चाहिये एवं पश्चिमी भाग हमेशा पूर्वी भाग से ऊँचा होना चाहिये। भवन में नैर्ऋत्य सबसे ऊँचा व ईशान सबसे नीचा होना चाहिये।

२१. भवन का मुख्य द्वार ब्राह्मणों को पूर्व में, क्षत्रियों को उत्तर में, वैश्य को दक्षिण में तथा शूद्रों को पश्चिम में बनाना चाहिये। इसके लिये ८१ पदों का वास्तुचक्र बनाकर निर्णय करना चाहिये।

२२. द्वार की चौड़ाई उसकी ऊँचाई से आधी होनी चाहिये। बरामदा घर के उत्तर या पूर्व में ही बनाना चाहिये।

२३. खिड़कियाँ घर के उत्तर या पूर्व में अधिक तथा दक्षिण या पश्चिम में कम संख्या में होनी चाहिये।

२४. घर के ब्रह्मस्थान को खुला, साफ तथा हवादार होना चाहिये।

२५. गृहनिर्माण में ८१ पद वाले वास्तुचक्र में ९ स्थान ब्रह्मस्थान के नियत किये गये हैं।

२६. चारदीवारी के अन्दर सबसे ज्यादा खुला स्थान पूर्व में रखना चाहिये। उससे कम उत्तर में, ठससे कम पश्चिम में तथा सबसे कम दक्षिण में छोड़ना चाहिये। दीवारों की मोटाई सबसे ज्यादा दक्षिण में, उससे कम पश्चिम में, उससे कम उत्तर में तथा सबसे कम पूर्व दिशा में होनी चाहिये।

२७. घर के ईशान कोण में पूजाघर, कुआँ, बोरिंग, बच्चों का कमरा, भूमिगत वाटर टैंक, बरामदा, लिविंग रूप, ड्राइंग रूम अथवा बेसमेन्ट बनाना शुभ होता है।

२८. घर की पूर्व दिशा में स्नानघर, तहखाना, बरामदा, कुआँ, बगीचा व पूजाघर बनाया जा सकता है। घर के आग्नेय कोण में रसोईघर, बिजली के मीटर, जेनरेटर, इन्वर्टर व मेन स्विच लगाया जा सकता है। दक्षिण दिशा में मुख्य शयनकक्ष, भण्डार-गृह, सीढ़ियाँ व ऊँचे वृक्ष लगाये जा सकते हैं। घर के नैर्ऋत्य कोण में शयनकक्ष, भारी व कम उपयोग के सामान का स्टोर, सीढ़ियाँ, ओवरहेड वाटर टैंक, शौचालय व ऊँचे वृक्ष लगाये जा सकते हैं।

२९. घर के वायव्य कोण में अतिथिघर, कुँआरी कन्याओं का शयनकक्ष, रोदन कक्ष, लिविंग रूम, ड्राइंग रूम, सीढ़ियाँ, अन्नभण्डारकक्ष व शौचालय बनाये जस सकते हैं।

३०. घर की उत्तर दिशा में कुआँ, तालाब, बगीचा, पूजाघर, तहखाना, स्वागतकक्ष, कोषागार व लिविंग रूम बनाये जा सकते हैं।

३१. घर का हल्का सामान उत्तर या पूर्व या ईशान में रखना चाहिये।

३२. घर के नैर्ऋत्य कोण में किरायेदार या अतिथियों को नहीं ठहराना चाहिये।

३३. सोते समय सिर पूर्व या दक्षिण की तरफ होना चाहिये अथवा मतान्तर से अपने घर में पूर्व दिशा में सिर करके सोना चाहिये। ससुराल में दक्षिण की ओर एवं परदेश में पश्चिम की ओर सिर रखकर सोना चाहिये।

३४. दिन में उत्तर की ओर तथा रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मूत्र का त्याग करना चाहिये। घर के पूजास्थान में बड़ी मूर्तियाँ नहीं होनी चाहिये।

३५. घर में दो शिवलिंग, तीन गणेश, दो शंख, दो सूर्यदेव की प्रतिमा, तीन देवी-प्रतिमा, दो गोमतीचक्र व दो शालिग्राम नहीं रखना चाहिये।

३६. घर में भोजन सदैव पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके ही करना चाहिये।

३७. सीढ़ियों के नीचे पूजाघर, शौचालय व रसोईघर का निर्माण नहीं कराना चाहिये।

३८. धन की तिजोरी का मुख उत्तर दिशा में रखना चाहिये।

●●●